आनन्दाथमसंस्कृतग्रन्थावाले:।

ग्रन्याङ्कः ६१

गौतमप्रणीतधर्मसूत्राणि।

एवत्पुस्तर्क

हरदचकुतामिताक्षरावृत्तिसहितानि ।

कै॰ तळेकरोपाद्वनरहरशाखिभिः संशोषितम् ।

तच्च

रावबहादूर इत्युपपदचारिभिः

गङ्गापर नापूराव काळे,

जे. पी.

इत्येवैः

पुण्याख्यपवने

श्रीमद ' महादेव चिमणाजी आपटे १

इत्यमिषेयमहामागमाविष्ठापिवे

आनन्दाश्रमगुद्रणालये

आयसाक्षरेर्नुद्रायित्वा

१८८८ शकान्दस्याक्षण्यतृतीयाया ५

(स्निस्तान्दः १९६६)

चतुर्यमुद्रणावृत्तिः

(अस्य सर्वेऽधिकारा राजशासनानुसारेण स्वायची हताः 💛

आदर्पुस्तकोल्लेखपात्रका ।

अस्य गौतमपणीतधर्मसूत्रस्य पुस्तकानि येः परहितेकपरतय।
पदत्तानि तेषां नामादीनि पुस्तकानां संज्ञाश्च पदर्थने ।
क. इति संज्ञितम्—आनन्दाश्चमस्थम् ।
ख. इति संज्ञितम्—आनन्दाश्चमस्थम् । अस्य लेखन हालः इति संज्ञितम्—डेक्कनकालेजस्थम् ।
घ. इति संज्ञितम्—डेक्कनकालेजस्थम् ।
ङ. इति संज्ञितम्—डेक्कनकालेजस्थम् ।
च. इति संज्ञितम्-आनन्दाश्चमस्थं मूलम् ।
च. इति संज्ञितम्-आनन्दाश्चमस्थं मूलम् ।
छ. इति संज्ञितम्-अनन्दाश्चमस्थं मूलम् ।
समाप्तेयमादर्शपुस्तकोल्लेखनि ः ।

गौतमप्रणीतधर्मसूत्राणां विषयानुक्रमः।

| | | | 1 |
|------------------------------------|---------------|------------------------------------|---------------------|
| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषया: । | पृष्ठाङ्काः |
| धर्भ प्रमाणम् | ່ 9 | भाणायामः | . 9 |
| यत्र श्रुतिसमृत्योः परस्परवि | रोधरा- | गुरोः पादोपसंग्रहणम् | . 90 |
| द्विषये निर्णयः | ٠ ۶ | , o | |
| बाह्मणस्योपनयनकालः | , | धनकलारान्तरामध्ये गामधि | त्तम |
| क्षत्त्रियवैश्ययोरुपनयनका ल | : 3 | | ं १ , , । रागमने |
| आपद्युपनयनकालावाधिः | | , पायश्चित्तम् . | |
| उपनीतानां मेखलाः | 8 | | ·• |
| ,, अजिनानि | • • • | अथोपनीत्रम झेनान्यनीत्रध | ±f• , |
| ,, वासांसि . | , | अनपनीतस्य इत्योष्ण्यान | पं: ,, पंबः १२ |
| ं, दण्डाः | | बहा चर्येणावस्थानम् | • |
| अथ द्रव्यशुद्धिस्तत्र तैजसा | दीनां | शौचविषये न दिवस्थानानिया | ' |
| द्रव्याणां शुद्धिः . | ٠ نو | शरीरशद्धिः | 77. |
| पाषाणादीनां शुद्धिः | ••• | उदक्यादिस्पृष्टस्यापि स्पृष्टीस्पृ | । इ |
| रज्वादीनां शुद्धिः | ' | ्र दाषाभावः | . 93 |
| शौचाचार: | ••• | पित्र्यकर्मणोऽन्यत्र वेदोच्चारण | - |
| आचमनविधिः . | ••• | ानषधः | " |
| उपस्पर्शनम् . | | | થા- ″ |
| द्भिराचमननिभित्तानि | ••• • | नम् | 98 |
| दन्तिसष्टेषूचिछष्टलेषेषु दन्त | वनाशु- | पत्यहं समिद्धोमभैक्षचरणे क | र्तव्ये " |
| चित्वम् | ••• , | सत्यवचनम् | ۰۰ ,۰ |
| हस्तपादादेरमेध्यलिप्तस्य शं | | स्नानम् | , |
| विधिः | | संध्योपासनाविधिः . | 94 |
| गुरूपसदनविधिः | , | , आदित्यदर्शननिषेधः | ,, |
| | | • • | |

| विषयाः । | पृष्ठाङ् | ्काः । | विषयाः । | पृष्ठा ड़ | हकाः । |
|------------------------------|----------------------|--------|---------------------------------|------------------|------------|
| अथ वर्ज्यानि | ••• | 94 | राक्षसः | ••• | ,, |
| गुरुसंनिधावाचारः | ••• | १७ | पैशाच: | ••• | ,, |
| पूज्य विद्यादिभिरधिके | चाऽऽचारः | ٠, | अनुलोमाः | • • • | 3 - |
| गुरुवत्तद्भार्यापुत्रेषुं चा | ऽऽचार: | 96 | प्रतिलोमाः | ••• | ٠, |
| अस्यापवादः | • • • | " | अनुलेामजातानां पितृ | द्वारा स- | • |
| म्बासं गत्वा प्रत्यागते | न गुरुभार्या- | | प्तमपुरुषादुत्कृष्टवर्णान्त | रमाप्तिः, | |
| णामुपसंग्रहणं कार्यम् | ••• | 99 | मातृदारा पश्चमपुरुषाद | | |
| भिक्षार्टनानियमः | • • • | ,, | न्तरपाप्तिकथनम् | | 3 9. |
| भोजनम् | ••• | ,, | पतिले।मानां धर्महीनत्वः | ۲ | ३२ |
| शिष्यशासनप्रकार: | • • • | | आनुलोम्येनापि शूदाय | - | ` ` |
| गुरुकुछे वासः | | | धर्महीनत्वम् | | _ |
| ब्रह्मचारिणो वक्ष्यमाणा | श्रम- | " | पुत्राणां प्रशंसा | ••• | "; " |
| विर्कल्पः | | 29 | गर्भाधानकालः | ••• | ३ ३ |
| आश्रमाः | | २२ | पश्च महायज्ञाः | ••• | 38 |
| | ··· | | तत्र ब्रह्मयज्ञः | •••, | , , |
| गृहस्थस्य प्राधान्याभिष् | ווחת | ;; | पितृयज्ञः | ••• | 34 |
| ब्रह्मचारिधर्माः | ••• | " | देवयज्ञस्याभिकाय म् ळत्य | ादाभेपारे- | |
| भिक्षुधर्माः | ••• | २३ | यहकाल: | ••• | |
| वानप्रस्थधमाः | ••• | २५ | देवयज्ञः | ••• | ,, ३६ |
| गृह स ्थधर्माः | B • • | २७ | वैश्वदेवपयोगः | ••• | |
| तत्र विवाहमेदाः । बाह | स विवाहः | २८ | भूतयज्ञबलिहरणम् | | ,, |
| पाजापत्यविवाहः | | j | मनुष्ययज्ञः | ••• | 7) |
| | ••• | / / | दानस्य फलम् | • : • | ३७ |
| आर्षीववाहः * | | - 1 | यत्रावश्यदेयं तत्राद्वि प | ्र शिक्षा | 97 |
| देवाविवाह: | ••• | 7 | | । .भभ। | ३८ |
| गान्धर्वविवाहः | • • • | | दानापवादः सन्दर्भावीभोज्याः | ••• | , , |
| आ सुरः | • • • | " | गृहस्थपूर्वभोज्याः | ••• | રૂ જ |

| | · weeks d | | | —, |
|-----------------------------|-------------------|-------------|---|-----|
| विषयाः। | पृष्ठाङ्का. | 1 | विषयाः। पृष्टाङ्का | : |
| ऋत्विगादिषु गृहमागते रु म | युपर्क · | 1 | वैश्यवृत्त्युपजीविनो ब्राह्मणस्याप - | |
| दानम् | | ,, | ण्यानि | ४ ९ |
| श्रोतियस्य राज्ञः पूजापक | | • | विनिमयेऽनुज्ञा | 40 |
| अश्रोतियस्य राज्ञः पूजाम | कारः | - 1 | प्रतिषिद्धविनिमयः | , |
| सामर्थ्याभावे पूजापकारः | | - 1 | • | |
| विद्यारहितसाधुवृत्ताातेथिवि | षिये | | आपद् तीरवीऽऽपद्वृत्तावेव रममा- | 7 |
| पूजापकार: | • • • | 77 | णस्य निवारणाधिकारिणौ | 49 |
| आत्मसदृशातिथिविषये पूर | नापकारः ४ | | बहुशुतबासगस्य सक्षणम् | ५२ |
| आत्मना किंचिद्नातिथिवि | षये | | आपद्वृत्तौ रममाणस्य निवारणो | |
| पूजापकार | ••• | , | | ч |
| अतिथिलक्षणम् | ••• | - 1 | चत्वारिंशत्संस्काराः | પુક |
| अतिथिपश्नः | ••• | " | • | ५६ |
| मात्रादीनां पूजापकारः | 8 | 2 | एषामुत्कर्षः | • |
| अभिवादनविधिः | 8 | 3 | गृहस्थवताधिकारी | 41 |
| भ्रातृभार्याणां पूजापकार | 8 | 8 | स्नातकस्यापि गृहस्थवतानष्ठानम् | |
| यवीयस'मृत्विगादीनां पूजा | ापकारः ४ | 4 | गृहस्थव्रतानि । तत्र वस्त्रधारणविषये | , |
| नामग्रहणनिषेधः | • • • | ,, | 2 6 | 40 |
| भे भवाचिति व्यवहार्याः | | , | अकारणाद्रुढश्मश्रुत्वनिषेधः | , |
| विचादीनामुचरोचरबळीयः | स्वम ४ | દ્ | अग्न्युदकयोर्युगपद्मारणे निषेध: | 40 |
| सर्वेभ्योऽपि श्रुतस्य बलीय | • | , | तिष्टत अ।चमननिषेधः | , |
| ताद्वषये भमाणम् | | " | वाय्वाद्याभिमुख्येनामेध्यकरणे निवेध | |
| | | 9 | पर्णादिभिर्मृत्रपुराषाद्यपकर्वणे निषेधः | ६ |
| ब्राह्मणादेव विद्याऽधिगन्त | व्या | ,, | भस्माद्याक्रमणे निषेधः | , |
| तद्भाव आपत्कल्प | • • • | " | म्लेच्छ।दिाभैः सह संभाषणे ।निषेधः | , |
| आपद्वृत्तयः | 3 | 6 | संभाषणपकारः | Ę |
| गहितयाजनादिवृत्त्यभावे । | क्षत्त्रवृत्तिः 🕆 | ,, | स्त्रीसंगमनानिर्णयः | |
| तद्भावे वैश्यवृत्तिः | ••• | , , | रजस्वलागमने निषेधः | હ્ |
| • 6 | | * | | • |

| विषया: । पृष्ठाड् | र्काः । | विषयाः। पृष्ठाङ्ख | ाः |
|------------------------------------|------------|--------------------------------------|------------|
| अथ वर्जनीयानि | ६२ | ज्योतिर्विदादिवचनेषु विश्वासः कार्य | ાં:૮૩ |
| पथ्याक्रमणानियमाः | ६३ | शानि पुण्याहादीनि शालामी | , |
| मूत्रपुरीषोत्सर्गनियमाः | ٠, | कार्याणि | < 8 |
| अभिवादनादि कुर्वतः सोपान क | ŕ | राज्ञो व्यवहारविषये प्रमाणानि | 64 |
| स्य निषेधः | ६४ | देशधर्मादीनां प्रमाणत्वम् | ,• |
| नमयोषिद्दीननिषेध: | •, | कर्षकादिषु धर्मविमातेपत्तौ व्यवस्थ | , T < E |
| िशश्नादिचापछानिषेध: | ६५ | दण्डेनादान्तानां दमनम् | 60 |
| अकारणच्छेदनादिनिषेध: | `, | स्वतणाश्रमधर्माननुष्ठितवतां फल- | |
| भोजनानियमाः | ६६ | | |
| रात्रौ नग्नस्वापनिषेधः | ,, | विपरीतानां नाशः | 19 |
| नमस्नानांनषेधः | ६७ | | ८९ |
| आनन्त्यादाचाराणां संक्षेपतः | • | अार्यस्त्र्यभिगमने दण्डः | CK |
| कथनम् | 19 | आसनादिषु द्विजातिाभे सःम्यमि | ,,, _ |
| अथ वर्णधर्माः | ६९ | च्छतो दण्डः | ९० |
| ब्रा सणधर्माः | ,1 | वासणाकोशे क्षात्रियस्य दण्डः | , |
| राजधर्माः | ७० | बाह्मणाकोशे वैश्यस्य दण्डः | |
| युद्धे हिंसाया दोषाभावः | ७२ | कियाकोशे बासणस्य दण्डः | •, |
| तद्पवादाः | ", | वैश्याकोशे बाह्मणस्य द्ण्डः | •7 |
| संग्रामलब्धद्रव्यविषये निर्णयः | ", | | •7 |
| राज्ञे देयानि | ७३ | शालणराणायया परस्पराक्षाश्च | - 6.60 |
| पनष्टस्वामिकं द्वयमार्धगम्य राज्ञः | • | त्क्षत्त्रियवैश्ययोः परस्पराकाशे दणः | इ:९१ |
| | | अथ स्तेयदण्डः | 97 |
| कर्तव्यता | | फलादीनां स्तेये दण्डः | 97 |
| निध्यधिगमे निर्णयः | | पशुमिरुपहते सस्यादी दोषः | ,* |
| वैश्यधर्माः | ૭ ૭ | पशुभिरुपहते सस्यादी पशुस्वामिन | 1 |
| शूद्रधर्मीः | , ° | दण्डपरिमाणम् | -, |
| पुनश्च राजधर्माः | 69 | अदत्तादाननिषेधविषयेऽपवादः | ९३ |
| वर्णाश्रमाणां न्यायेनाभिरक्षणम् | ८२ | धम्या वृद्धिः | 9,8 |
| ब्राह्मणस्य पौरोहित्येन स्वीकरणम् | ८३ | आपदि चक्रवृद्धिः | ९५ |

| विषया । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|-------------------------------|---------------|---------------------------------|----------------|
| कारितादिवृद्धिमकाराः | ९५ | वेश्यस्याऽऽशोचानिर्णयः | . 22 |
| पश्वादिवृद्धिविषये निर्णयः | ९६ | ूद स् याऽऽशौचनिर्णयः | 990 |
| अजडापीगण्डयोईशर्वपुत्त | स्य | आशीचसंपाते निर्णयः | 7 |
| धनस्य निर्णयः | 7- | तत्र रागिशेषे निर्णयः | 9997 |
| तस्यापवादः | ९७ | द्शाहादौ व्यंतीते संगवे यद्य | न्यदा- |
| मुक्तपथा।दैविनये निर्णयः | , | पतेत्तत्र निर्णयः | |
| ऋणद्।नविषये ।निर्ण्यः | .7 | गोत्रासणार्थे हतानां सपिण्ड | ा नां ' |
| निध्यादिवषये निर्णयः | 9: | विषये निर्णयः | , , |
| सुवर्ण स्तेयक्टइण्डः | ९९ | आत्मघातिनामाशीचनिर्णयः | 992 |
| चोरसाचिब्यं कुर्वतश्चोरवद्द्य | ाडः १०० | जननाशौचम् | 993 |
| साक्षिपकरणम् | 909 | अतिकान्ताशीचानिर्णयः | 998 |
| साक्षिस्वरूपवर्णनम् | 9 : 3 | अस्पिण्डाद्याशीचानि र्गयः | 994 |
| साक्षिणाऽनृतवचने दोषः | 9 6 3 | मेतनिहर्रण आशौचनिर्णयः | 998 |
| दिव्यकरणम् | 308 | आचार्यादीनां मरण आशीच | • |
| पधाद्यनृतवचने साक्षिणो दे | ोष: | निर्णयः | 990 |
| भूम्याधनृताविष्ये दोपः | 904 | विजातीयपेतानि रणविषय | आशौं |
| दृष्टविषयेऽनृतवचने साक्षिणं | ो दण्डः १०६ | चनिर्णयः | ,• |
| तद्पवाद: | ,, | पतितःदिस्पर्शन आशौचनिष | यिः ११८ |
| जाडचाद्युपेतत्वात्साक्षिणः | कालदा | श्वानुगंपन आशीचनिर्णयः | |
| नम् | 900 | श्वीपहत आशीचनिर्णयः | 998 |
| धेन्वादिविषये शीष्रविवाद | ., | उद्कद्दानानिर्णयः | . 9 3 0 |
| आत्यायिक शीष्ट्रविवादः | | आशीचकाले ज्ञातीनामाचार | ,, |
| अथाऽऽशौचम् । तत्र शाव | | अस्टतचूडदेशान्तरिताद्याशीः | |
| • | 1401414- | र्णयः | 129 |
| र्णयः | ,, | राजादीनामाशी चनिर्णयः | 922 |
| ज्ञातिमरणे क्षत्त्रियस्याऽऽशौ | चिति - | श्राद्भपकरणम् | 923 |
| र्णयः | 906 | तत्र बासणानां संख्या | 324 |

| विषयाः। पृष्टा | ङ्काः । | विषयाः। पृष्ठाः | ङ्काः । |
|--|---------|-----------------------------------|----------|
| श्राद्धभोक्तॄणां ब्राह्मणानां स्रक्षण | म् १२५ | किसलयादीनामभक्ष्यत्वम् | १ ४६ |
| श्रादे वर्ज्यबासणाः | | आपद्यभक्ष्यापवादः | ,, |
| कुण्डाश्यादीनां वर्जनम् | | अथ स्त्रीधर्माः | 980 |
| शिष्यादीनां वर्जनम् | 926 | भर्तुरातिक्रमणे निषेधः | 986 |
| श्राद्धभोकु नियमाः | | पत्यो मृते देवराद्षि सुतात्पत्तिः | |
| श्वादिभिरवेक्षितस्यात्रस्य दुष्टत्व | | देवराभावे सापिण्डादिभ्यः सुतो- | |
| कथनम् | •• | त्पत्तिः | 989 |
| पङ्किपावनाः | | एवमुत्पादितः पुत्रः क्षेत्रिणो वा | |
| श्रवणाकर्म | 939 | | ,, |
| अध्ययनकाल: | | विद्याधिगमार्थं मोवितस्य मर्तुः | , |
| अथानध्यायाः | , , , | पतीक्षा | 940 |
| बाणभेयीदिशब्दश्रवणेऽनध्यायः | 133 | | |
| गुरु शुक्रादिपरिवेषणेऽनध्यायः | | | |
| आक लिकानध्यायाः | | कन्यादानसमय: | 949 |
| चोरादिभिर्यामाद्युपदवेशमेर हारौ | | विवाहासिद्यर्थे शूदादिभ्यो | |
| चानध्यायः | 934 | दृव्यादाने दोषाभावकथनम् | ٠, |
| कार्तिक्यादिगौर्णमासिष्वनध्यायः | | भोज्यालाभेनाभुक्तवाऽनार्यस्या- | , |
| श्राद्धकर्त्राद्दीनायनध्यायः | | प्यादाने दोवाभावः | 947 |
| भक्ष्याभक्ष्यपकरणम् | | प्रायश्चित्तंपकरणम् | 943 |
| तस्यापवादः | | पायश्चित्तस्य निर्गितानि | 948 |
| पशुपासादयोऽत्यन्तापत्कास्रे | • • • | प्रायाश्चेत्तस्य विचारः | . 10 |
| भोज्याचाः | 9 0 | जपपकाराः | भ १५६ |
| अथाभोज्यानि | 989 | जपे पवृत्तस्याऽऽहारनियमः | • |
| उत्सृष्टादीनामभोज्या ज त्वम् | | | 940 |
| वृथानः{दीनामभोज्यत्वम् | | | 945 |
| | | भथ देयानि | ,, |
| अपेयक्षीर िर्णयः सरकारितामभूष्यस्य | | नपादीनां काल: | 949 |
| क किादीनामभक्ष्यत्वम् | 10 7 | 4 11 12 15 July 6 | 380 |
| | | | |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः। पृष्ठा | ङ्काः । |
|--|---------------|---|-------------|
| रुच्छ्रा ^{द्} पायश्चित्तानां ब्यव | स्था १६० | राजन्यवधे पायश्चित्तम् | 904 |
| पायश्चित्तमकुर्वतां त्यागः | 9 6 9 | वैश्यवधे पायश्चित्तम् | १७६ |
| त्यागमकार: | ,, | शूद्रवधे पायश्वित्तम् | -, |
| त्यक्तेन सह संभाषणे पाया | धत्तम् १६२ | आनेयीव्यतिरिकाया वधे पाय | -, |
| पायश्चित्तेन शुद्धस्य स्वीकरः | | श्चित्तम् | |
| | 9 6 3 | गोवधे पायश्चित्तम् | 900 |
| यस्य पाणान्तिकं पायश्चित्तं | तस्य | मण्डूकादीनां समुदितानां वधे | |
| मरणादेव शुद्धिः | 958 | पायश्चित्तम् | 960 |
| अथ पतिताः | | क्रकलासादीनां सहस्रं हत्वा | |
| पिततः सह संवत्सरं समाचर | (भे | पायश्चित्तम् | 77 |
| पातित्यम् | 944 | | "; |
| पतितत्वस्वरूपकथनम् | 988 | प्रायश्चित्तम् | |
| ब्रह्महत्यादिषु त्रिषु पायश्चिर | ताभावः | षण्ढवधे गायाश्चित्तम् | 969 |
| स्त्रीपतनहेतुः | १६७ | सर्पवधे पायाश्चित्तम् | 77 - |
| महापातकसमानि | •. | वराहवधे पायश्चित्तम् | ,,, |
| उपपातकम् | ., | ब्रह्मबन्धुवधे पायश्चित्तम् | • |
| ऋत्विगाचार्ययोः पतनहेतुः | 986 | भार्यादिलाभेषु विघ्ने पायश्वितम् | ग १८२ |
| शिष्यस्य पतनहेतुः | ٠, | परदारगमने पायश्चित्तम् | |
| नासणाभिशंसनादौ दोषः | 149 | श्रोवियदारगमने पायश्चित्तम् | ?; ?? |
| वसहपायश्चित्तम् | 300 | पातितादिभिः सह मन्त्रयोगे | |
| ब्रह्मझः पायश्चित्तमन्तरा पक | • | पायश्चित्रम् | 963 |
| | | अग्न्युत्साद्यादिषु पायश्चित्तम् | . 77 |
| न्तरेण शुद्धिकथनमू | १७२ | व्यभिचारिण्याः पायश्चित्तम् | 968 |
| ब्राह्मणवधोद्यक्तस्य ब्रह्मह्मा | | महिवादिस्त्रीषु गमने पायश्चित्तम् | 964 |
| श्चित्तम् | | सुरापस्य ब्राह्मणस्य मायश्चितम् | १८६ |
| आवेच्या हनने बसहपायिश्व | . , | अमत्या सुराषाने पायश्चित्तम् | 960 |
| अविज्ञातगर्भहनने बसहपा | 4 | अनत्या सुराषान मापारपणा मूत्रादिमाश्चने मायश्चित्तम् | |
| श्चित्तम् | • •• | Jan 2 1 2 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 | 77 |

| विषयाः। पृष्ठ | ाङ्काः । | विषया:। | पृष्ठाङ्काः । |
|-------------------------------------|----------|-------------------------------|------------------------|
| व्याघ्रादिगांसभक्षणे पायश्चित्तर | १ १८८ | चान्द्रायणाविधिः | २ 9६ |
| सुरागन्धाघाणे पायश्चित्तम् | .• | चान्द्रायणस्य फलम् | २१९ |
| गुरुंतल्पगमने पायश्चित्तम् | 969 | अथ दायविभागः | 229 |
| सल्यादिगमने पायश्चित्तम् | 999 | पि । रूध्वें जीवाते च तसि | गन्दिभाग- |
| पायश्चित्तमकुर्वतीनां स्त्रीणां द | ण्ड: | पकारः : | २२२ |
| | 992 | तत्र पशुविषये विशेषः | २२३ |
| रेतःस्कन्दनादिषु पायश्चित्तम् | | तस्यापवादः | ••• |
| सूर्याभ्युदितपायश्चित्तम् | | अनेकपातृकाणां दायपका | ₹: ,, |
| अशाविद्शेने पायश्वित्तम् | 190 | ऋषभोऽधिको ज्येष्ठस्येत्यस | , |
| अभोज्यभोजनादिषु पायश्चित्तम् | ,,, | वादः | ,, |
| आकौशादिषु पायश्वित्तम् | २०१ | अथापुत्रविषये विचारः | २ २४ |
| विवाहादिष्वनृतोकौ दोषाभावः | | अनपत्यस्य दायादाः | २२५ |
| तस्यापवादः | २०३ | स्त्रीध विषये निर्णयः | २२६ |
| अन्त्यावसायिनीगमने प्रायश्चित्त | ाम् ् | विभक्तभातृणां मृतानां वि | भक्तव्य- |
| उद्क्यागमने पायश्चित्तम् | , | धनादिविषये निर्णयः | २२७ |
| रहृस्यपायाश्वंत्तम् | २०४ | मेतानामविभक्तभातॄणां वि | भागः २ ८ |
| ब्राह्मणवधे रहस्यम् | | विभागोत्तरमुत्पन्नपुत्रस्य वि | ग्राम• |
| अवकीर्णिनिन्दा | | मूर्खभातॄणां विभागः | , भाग. ३ २ ९ |
| अवकीर्णिमायश्चित्तम् | | औरसादयः षट्पुत्रा रिक्श | यभाज: |
| त्रिरु षस्थानस्यार्थवादः | | कानीनादयो गोत्रभाजः | ", |
| अनार्जवादिषु पायश्चित्तम् | २०९ | औरसाद्यधावे कानीनादीन | २३० गंपितः |
| क्रच्छू।दिस्वरूपम् | २१० | वनस्य चतुर्थीशभाक्तवकृश | Tan |
| अतिंकुच्छ्रे विशेषः | २१४ | असव गीपुत्रविभाग: | ··· २३२ |
| ऋच्छ्रातिऋच्छ्र स्वरूपम् | २१५ | अन्यायवृत्तस्य सवर्णापुत्र | स्यापि |
| कृच्छ्राद्याचरणे कलम् | | विभागाभावः | २३३ |
| | | | ,14 |

| विषदाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः। | पृष्ठाङ्काः । |
|---------------------------|---------------|------------------------|---------------|
| अनपत्यस्य बालणस्य वि | भागः २३३ | संदिग्धविषयनिर्णयः | ••• |
| अनपत्यानां क्षत्तियादीनां | विभागः , | गरिष छक्षणम् | २३५ |
| जडक्रीबयोर्भरणम् | २३४ | शिष्टवचनस्य कर्तव्यत् | ममाणम् ,, |
| प्रतिलोगानां विभागः | 37 | धर्मशास्त्रविदां मशंसा | २३६ |
| उदकादिषु विभागाभावः | ۰۰۰ ٫۶ | इति धर्मः | ••• 99 |

॥ इति गौतमप्रणीतधर्मस्त्राणां विषयानुकाः॥

गौतमप्रणीतधर्मसूत्राणि

हरदत्तकतामिताक्षरावृत्तिसहितानि ।

तत्र मथमप्रश्ने प्रथमोऽध्यायः । नेमो रुद्राय यद्धर्मशास्त्रं गौतमनिर्मितम् । कियते हरदत्तेन तस्य वृत्तिर्मिताक्षरा ॥ १ ॥

ॐ वेदो धर्ममूलम् ॥ १ ॥

कर्मजन्योऽभ्युद्यानिःश्रेयसहेतुरपूर्वाच्य आत्मगुणो धर्मः । तस्य मूर्खं प्रमाणम् । वेदो मन्त्रब्राह्मणात्मकः । जातावेकवचनम् । चत्वारो वेदा ऋग्यजुः- सामात्मकास्त एव धर्मे प्रमाणम् । न योगिपत्यक्षं नानुमानं नार्थापत्तिनं श्रोक्यान् द्यागमः । तेन तन्मूला एवोपनयनाद्यो धर्मा वक्ष्यन्ते न चैत्यवन्दनकेशोल्लुञ्च नाद्य इति । धर्मप्रहणमुपलक्षणम् । अधर्मस्यापि प्रतिषेवात्मको वेद एव मूल्ण् । निषेधविधयो हि ब्रह्महत्यादौ विषये प्रवृत्तं निवर्तयन्ति । न च रागद्दे पादिना विषये प्रवृत्तस्ततो निवर्तयितुं शक्यः । यद्यसौ विषयोऽनुष्ठितः प्रत्य- वायहेतुनं स्यादिति निषेधविधिरेव प्रत्यवायहेतुनां गमयति ॥ १ ॥ अथ यत्र प्रत्यक्षो वेदो मूल्भूतो नोपपद्यते तत्र कथम् –

ताद्विदां च स्मृतिशीले ॥ २ ॥

तिहदां वेदिवदां मन्वादीनां या स्मृतिस्तत्मणितं धर्मशास्त्रं यच तेषां श्रीलमनुष्ठानं ते स्मृतिश्रीले अस्मदादीनां प्रमाणम् । न च तेषामनुष्ठानं निर्मलं संभवति । संभवति च वैदिकानामुत्सन्तपाठे वेदानुभव इति । तेषां तु तदानिं विद्यमानत्वेन संपदायाविच्छेदाच वैदिकानुष्ठानं वेदम्लभेव । यथाऽऽहाऽऽपस्तम्बः –

तेषामुत्सन्ताः पाठाः पयोगादनुमीयन्त इति ॥ २ ॥

यादि शीलं पमाणम् , आतिपसङ्गः स्यात् । कथम् , कतकभरद्वाजौ व्यत्यस्य भार्ये जग्मतुः । वसिष्ठश्रण्डालीमक्षमालाम् । प्रजापतिः स्वाः

१ क. स. तमस्ते रुदाय ध । २ क. स. घ. शास्त्राद्या । ३ ग. पाठवे ।

दुाहितरम् । रामेण पितृवचनादिवचारेण मातुः श्चिरिकञ्चमित्यादि साहसमपि भमाणं स्यात् । नेत्याह-

दृष्टो धर्मव्यतिक्रमः साहसं च महताम्॥ ३॥

महतामेतादृचं साहसमापि धर्मव्यातिकम एव दृष्टो न तु धर्मः । रागद्वेषानि-बन्धनत्वात् ॥ ३ ॥

न च तेषामेवंविधं दष्टमित्येतावताऽस्मदादीनामापि पसङ्गः । कुतः-

अवरदौर्बल्यात् ॥ ४ ॥

अवरेषामस्मदानीनां दुर्बछत्वात् । तथा च श्रूयते-

तेषां तेजाविशेषेण पत्यवायो न विद्यते ।

🔐 १९८८ । तदन्विक्ष्य प्रयुद्धानः सीदत्यवरको जनः ॥ इति ॥ ४ ॥

अथ यत्र दे विरुद्ध तुल्यबले प्रमाणे उपनिपततः । यथाऽतिरात्रे षोड-शिनं गृह्णाति, नातिरात्रे षोडाशिनं गृहणाति । उदिते जुहोत्यनुदिते जुहोतिति श्रुतिः । नित्यमभोज्यं केशकीटावपनामिति गौतमः—

े पिक्षजम्धं गवाद्यातमवधूतमवक्षतम् ।

किशकीटावपनं च मृत्यक्षेपेण शुध्यति ॥ इति मनुः ।

ा तत्र कि कर्तव्यम्-

🦊 🖟 तुल्यबलविरोधे विकल्पः ॥ ५ ॥

तुल्यममाणमापितयोरेवंजातीयकयोरथीयीर्विकल्पः । तद्देदं वेत्यन्यतरस्वी-कारः । न समुच्चयोऽसंभवात् । + मकर्षबोधने तु श्रुतिस्मृतिविरोधे स्मृत्यथौँ नांडऽदरणीयः । अतुल्यबल्पत्वात् । अत एव जाबालिराह-

ी 📑 🚉 अशिस्मृतिविरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी ।

िक्षा कार्य स्मार्त वैदिकवत्सदा ॥ इति ॥ ५ ॥

अथेदानीं धर्मान्वक्ष्यन्नुपन्यनपूर्वकत्वात्तेषामुपन्यनं तावदाह्—

उपनयनं बाह्मणस्याष्टमे ॥ ६ ॥

ंडपनयनानन्तरभाविनि बालणत्वेऽत्र [बालणग्रहणम्]। बालणग्रहणं तु बालणस्य सत एवोपनयनं न तूपनयनादिसंस्कारजन्यबालण्यभिति ज्ञापनार्थम् ।

म इत आरम्य वैदिकवत्सदेत्यन्तो यन्थो ग. पुस्तक एव वर्तते।

किंच ब्राह्मणो न हन्तन्यः । ब्राह्मणो न सुरां पिवेदिति निषेधश्रुतिरनुपनीतविषये(या) न स्यात् । ब्राह्मणस्याष्टमं वर्षं मुख्यमुपनयनकालः । प्रथमभाविनो
गर्भाधानादिन्संस्कारानुङ्कङ्कचोपनयनं न्याचक्षाणस्तस्य प्राधान्यं दर्शयति । तेन देवानुपपत्त्या गर्भाधानादेरकरणेऽज्युपनयनं भवति । तस्याकरणे तु विवाहादिष्वः
निधकार इति सिद्धम् ॥ ६ ॥

नवसे पञ्चमे वा काम्यम् ॥ ७ ॥ १००० । सम्बन्ध

कामानिमित्तं काम्यम् । तन्त्रवमे पश्चमे वा भवति । नवभे तेजस्कीमिमित्याः ।

गर्भादि संख्या वर्षाणाम् ॥ ८ ॥

वर्षाणां संख्या गर्भादिरेव भवति । न जननादिः ॥ ८॥

वर्षाणां संख्या गर्भादिरेव भवति । न जननादिः ॥ ८॥

ताद्वितीयं जन्म ॥ ९॥

तदुपनयनं द्वितियं जन्म । अत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्यः । तेन दिजन्मत्वाताद्वेः ॥ ५॥

> तद्यस्मात्स आचाँर्यः ॥ १० ॥ तदुपनयनं पितुरभावे यस्मात्पुरुषाद्भवति स आचार्यः ॥ १० ॥

्रिक्षान तु केवछादुपनयनात् । कस्मात्तर्हि—

वेदानुवचनाच्च ॥ १५॥

अनुवचनमध्यापनम् । अत्र मनुः -

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः । सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं पचक्षते ॥ इति ॥ ११ ॥ एक(दशद्वादशयोः क्षात्त्रियवैश्ययोः ॥ १२ ॥

नित्योध्यमनयोः कल्पः । काम्यस्तु मनुना दर्शितः-

राज्ञो बलार्थिन: षष्ठे वैश्यस्यार्थाथिनोऽष्टमे ॥ इति ॥ १२ ॥ अथाऽऽपरकल्पानाह-

आपोडशाद्बाह्मणस्यापातिता सावित्री ॥ १३॥

अभिविधावरकारः । आषोडशाद्वर्षाद्वासणस्य सावित्र्यपातिताऽपच्युता। । सावित्रीशब्देन तदुपदेशानिमित्तमुपनयनं छक्ष्यते । तदुपनयनस्य कालं इत्यर्थः ॥ १३ ॥

द्वाविंशते राजन्यस्य द्वचिकाया वैश्यस्य ॥ १४ ॥

उभयत्राप्याङ्नुवर्तते । पूरणपत्ययस्य छोपो द्रष्टव्यः । आद्वाविंशाद्वर्षा-द्राजन्यस्याऽऽचतुर्विशाद्वेश्यस्यापतिता सावित्री ॥ १४॥

मौजीज्यामौर्वीसौत्र्यो मेखलाः क्रमेण ॥ १५॥

मुद्धो दर्भविशेषस्तद्दिकारो मौद्धा । मूर्वा ऽरण्योषाधिविशेषः । (÷सर-लीति द्रविडभाषायाम्) । तद्दिकारो मौर्वी । ज्या चासौ मौर्वी चेति कर्मन् धारयः । ज्याशब्देन धनुषो ग्राह्मेति यावत् । सौत्री सूत्रविकारः । एता वर्णं क्रमेण मेखला भवन्ति ॥ १५॥

क्रव्णरुरुवस्ताजिनानि ॥ १६॥

रुष्णः रुष्णसारः । रुरुर्विन्दुमान्मृगः । वस्तश्छागः । एतेषामाजिनान्यु-त्तरीयाणि कमेण । अजिनं त्वेवोत्तरं धारयेदित्यापस्तम्बीये दर्शनात् ॥ १६ ॥

वासांसि शाणक्षौमचीरकुतवाः सर्वेषाम्॥ १७॥

राणविकारः शाणः । क्षुमाऽतसी तद्दिकारः श्लीमम् । श्वेतपद्द इत्यन्ये । दर्भादिनिर्मितं चरिम । ऊर्गानिर्मितः कम्बलः कृतपः । चत्वार्येतानि वासांसि सर्वेषाम् ॥ १७ ॥

कार्पासं वाऽविकतम्॥ १८॥

अविकतं कापांसं वासः सर्वेषाम् । कुसुम्भादिरागद्रव्येर्वर्णान्तरकल्पनं विकतिस्तद्रहितम् ॥ १८ ॥

अनुमतान्याह-

काषायमण्येके ॥ १९॥

एके त्वाचार्याः कषायेण रक्तमपि धार्यं मन्यन्ते ॥ १९ ॥

÷ धनुश्चिह्नान्तर्गतो यन्थो ग. पुस्तके वर्तते ।

१ क. ख. घ. ङ, च, तित्सा।

तत्रापि नियमः-

वार्क्षं बाह्मणस्य माञ्जिष्ठहारिद्रे इतस्योः॥ २०॥

वृक्षकषायेण रक्तं वार्क्षम् । तद्त्राह्मणस्य । मिख्किष्ठया रक्तं मा खिष्ठम् ।

हरिदया रक्तं हारिदम् । ते इतरयोः । क्षत्त्रियवैश्ययोरिति यावत् ॥ २०॥

वैल्वपालाशो बाह्मणदण्डौ ॥ २१ ॥

बैल्वः पालाशो वा बाह्मणस्य दण्डो न पुनः समुन्चितौ ॥ २१ ॥

अश्वत्थपैवालै शेषे ॥ २२ ॥

पीलुर्वृक्षाविशेषः। उता(?) उता इति पसिन्दः। शेषे क्षत्त्रियवैश्याविषये ॥२२॥

यिज्ञयो वा सर्वेपाम्॥ २३॥

सर्वेषामुकालाभे याज्ञियो याज्ञियवृक्षो वा दण्डः स्यात् ॥ २३ ॥

अपीडिता यूपवकाः सञ्चल्काः ॥ २४ ॥ 🕟

अपीडिताः कीटादिभिरदूषिताः । यूपवका यूपवद्ये वकाः । सञ्चल्काः श्राल्कासहिताः सत्वचः । एवंविधा दण्डाः सर्वेषाम् ॥ २ ॥

मूर्धललाटनासात्रप्रमाणाः ॥ २५ ॥

यथासंख्यमनेष्यते । मूर्धपमाणो बाह्मणस्य दण्डः । छछाटावाधिः क्षात्ति । यस्य । नासावधिर्वेश्यस्येति ॥ २५ ॥

मुण्डजिटलाशिखाजटाश्च ॥ २६॥

अत्र न यथासंख्यम् । मुण्डा लुप्तसर्वकेशाः। जटिलाः केशधारिणः। जटा केशसंहतिः। शिखामात्रैव जटा येषां ते शिखाजटाः । सर्वेषामयं सामा-न्यधर्मः। छन्दोगोपेक्षया मुण्डशब्दग्रहणम्॥ २६॥

द्रव्यहस्तश्चेदुच्छिष्टोऽनिधायाऽऽचामेत्॥ २७॥

मूत्रपुरीषयोः कर्म, भोजनादि चोच्छिष्टत्वनिमित्तम् । द्रव्यहस्तः सन्नु-च्छिष्टश्चेत्तद्द्रव्यमनिधायाऽऽचामेत् । उच्छिष्टः सन्द्रव्यहस्तश्चेद्द्रव्यं निधायाऽऽ-चामेत् । तथा च मनुः—

उच्छिष्टन तु संस्पृष्टो द्रव्यहस्तः कथंचन । आनिधायैव तद्द्रव्यमाचान्तः शुचितामियात् ॥ इति । किंच भक्ष्यभोज्यादिद्रव्यविषये तदद्रव्यं निघायेव मूत्रपुरीषयोः कर्म कृत्वा पुनंस्तत्पात्रं निधायाऽऽचामेत् । वस्त्रद्ण्डादिविषये त्वनिधायेवाऽऽचामेत् ॥२०॥
अथ द्रव्यशुद्धिरुच्यते—

द्रव्यञ्चाद्धिः परिमार्जनप्रदाहतक्षणानिर्णेजनानि तैजसमार्तिकदारवतान्तवानाम् ॥ २८ ॥

तैजसादीनां द्रव्याणां यथाकमं परिमार्जनादिशुद्धयः । तेजसं कांस्यादि । मार्तिकं मृन्ययादि । दारवं दारुपयादि । तान्तवं तन्त्ययादि । तेषां क्रमेण परि मार्जनम् । तत्र भस्पना कांस्यस्य । शक्ता सौवर्णराजतयोः । आम्छेन तामस्य । इदमुच्छिष्टिष्ठानाम् । तेजसानामवंभूतानां भस्पादिभिरिति कण्वः । रजस्वछाच ण्डालादिस्पृष्टानामकदिनं पञ्चगञ्यं निक्षिप्यकाविंशातिक्रत्वो मार्जनाच्छुद्धः । मार्तिकानां पदाहः । पक्षधो दाहो वर्णान्तरापतिर्यथा स्यात्त्याविधो दाहः शोध-नम् । इदं स्पर्शोपहतानाम् । अत्र विस्थः—

मद्यमूत्रपुरी÷षरेतु श्लेष्मपूयाश्रुशोणितैः। संस्पृष्टं नेव शुध्येत पुनर्दाहेन मृन्मयम् ॥ इति ।

दारवाणां तक्षणाच्छुदिः । इदमभेष्यादिव सितानाम् । अन्तत्र प्रोक्षण पक्षालनादि । तान्तवानां निर्णेजनाच्छुदिः । इदं स्पर्शदूषितानाम् । मलादिदूषि-तानां धावनं तन्मात्रच्छे दनं वा । स्पर्शदूषितानां बहूनां प्राक्षणाच्छु।द्विरिति ॥ २८॥

तैजसवदुपलमणिशङ्खमुक्तानाम् ॥ २९ ॥

उपलादीनां तैजसवच्छुद्धिः परिमार्जनामिति ॥ २९ ॥

दारुवदस्थिभूम्योः॥ ३०॥

अस्थि हस्तिद्-तादि । भूमिर्गृहादि । तयोद्गिरुवच्छु ख्रिस्तक्षणामिति । दारववदिति वक्तव्ये दारुवदिति निर्देशादिकारस्य या शुद्धिर्विकारिणोऽि सेव शुद्धिरित्युक्तम् ॥ ३०॥

÷ ग. पुस्तके समासे-षेश्व ष्ठीवनैः पूयशोिणौः । इति पाउा-तरम् ।

१ क. ख. घ. नरुपात्त नि । २ ख. घ. म्। अते । ३ क. ख घ नामुत्स में इति । ४ क. ख. घ. ङ्खशुक्तीनाम् ।

r Trib.

आवपनं च भूमेः ॥ ६१ ॥ आवपनमन्यत आनीय पूरणमधिका शुद्धिर्भूमेः । अत्र वसिष्ठः -

W.

Ĵ۳

5

खननाइहनादाद्भिगोभिराक्रमणेन च ।

चतुर्भिः शुध्यत भूमिः पश्चमात्त्र्यत्रेपनात् ॥ इति ॥ ३१ ॥ चैलवद्गज्जुविदलचर्भणाम् ॥ ३२ ॥

विद्छं वेत्रवणु विद्छादिनिर्मितम् । पिच्छनिर्मितमप्यन्ये । रज्ज्वादीनां त्रयाणां चैछवद्वस्त्रवच्छु िर्निणेजनामीति । पैठीनासिस्तु –

रज्जुविदल वर्मणामस्पृश्यस्पृष्टानां प्रोक्षणा च्छुद्धिरिति ॥ ३२ ॥

उत्सर्गो वाऽत्यन्तोपहताना 🚎 ॥ ६३ ॥

हदं वासिष्ठेन समानाविषयं मद्यनूत्रपुरीषैरित्यादिना । वादाब्दः पक्षव्या वृत्ती ॥ ६३ ॥

प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा शौचमारभेत ॥ ६४ ॥

इच्छाता विकल्प आरभेताति वचनात्पाद्मक्षा छनप्रभृतिदिङ्नियमः । आपस्तम्बस्तु प्रत्यक्पादावनेजनिमत्याह । श्रीचग्रहणमाचमन एव मा भूनमूत्र-पुरीषादिशोचेऽपि दिङ्गिनयमज्ञापनार्थम् ॥ ३४ ॥

शुचौ देश आसीनो दाक्षणं बाहुं जान्वन्तरा कृत्वा यज्ञोपवीत्यामणिबन्धनात्पाणी प्रक्षाल्य वाग्यतो हृद्यरुपृशास्त्रिश्चतुर्वाऽप आचामेत् ॥ ३५ ॥

इदमेकं वाक्यम् । आचमनकाले शुची देशेऽनुपहत आसीन इत्युपलक्षणमासीनस्तिष्ठन्मह्नी वेति । जान्वन्तरा जानुनोर्मध्ये दक्षिणबाहुं कृत्वा ।
दक्षिणं बाहुमित्युक्तत्वाद्वामहस्तस्य नावश्यंभावः । यज्ञोपवीतिति पूर्व
स्वस्थानस्थमपि यथास्थानानिवेशनार्थम् । अथवात्तरीयविन्यासार्थम् । तथा
चाऽऽपस्तम्बः— उपासने गुळणां वृद्धानामतिथीनां होमे जव्यकर्माणि
भोजन आचमने स्वाध्याये च यज्ञोपवीती स्यादिष वा सूत्रमेवोपवीतार्थः १ इति । आमणिबन्धाद्यस्मिन्देशे मणिबंध्यत आ तस्मात्पाणी
पक्षाल्य । वाग्यतः शब्दमकुर्वन् । हदयस्पृशः परिमाणार्थामदं यावत्यः पति।

हृद्यं स्पृशान्ति यासु माषो मज्जिति तावतीरप आचामेत्त्रिश्चतुर्वा । यत्र मन्त्रवदा-चमनं विहितं तत्र तेन सह चतुः । अन्यत्र त्रिरिति विकल्पः ॥ ३५ ॥

द्धिः परिमृज्यते ॥ ३६ ॥

प्रतियोगं सोदकेन पाणिनौष्ठयोः परिमार्जनम् ॥ ३६ ॥ पादौ चाभ्युक्षेत् ॥ ३७॥

चकारान्छिरश्च ॥ ३७॥

सानि चोपस्पृशेच्छीर्षण्यानि ॥ ३८॥

शीर्षे भवानि शोर्षण्यानि । शिरोभवानीति यावत् । खानीन्द्रियाणि । तान्युपस्पृशेत् । अत्र चकारः पतीन्द्रियोपस्पर्शनार्थः ॥ ३८ ॥

मूर्धानि च द्धात् ॥ ३९ ॥ चकारानामे मूर्धानि च सर्वाभिरङ्गुलीभिरुपस्पृशोदित्यर्थः ॥ ३९ ॥

सुप्त्वा भुक्त्वा श्रुत्वा च पुनः ॥ ४० ॥

स्वापादिनिमित्ते पुनिर्द्विराचामोदिति यावत् ॥ ४० ॥

दन्तिश्ठिष्टेष् दन्तवद्नयत्र जिह्वाभिमर्शनात् ॥ ४१ ः॥ दन्तिश्चिष्ट्वेष्टेषेषु जिह्वाभिमर्शनाद्नयत्र दन्तवचाशुनित्वम् ॥ ५॥ तत्रापि—

प्राक्च्युनेरित्यंके ॥ ४२ ॥

सत्यि जिह्वायिमर्शने यावह्नेपाः स्वस्थानान च्यवन्ते तावनाशुचित्व-मिति ॥ ४२॥

च्युतेष्वास्राववद्विद्यान्निगिगन्नेव तच्छुचि ॥ ४३॥

आस्राव आस्यजलम् । निगरणमःतःपवेशनम् । च्युतेषु निगिरन्नेव तच्छु-चिरिति वक्तव्य आस्नावविद्यादिति वचनमास्रावे च निगरणादेव शुचिरिति सूचनार्थम् ॥ ४३ ॥

न मुख्या विप्रुष उच्छिष्टं कुर्वाति । न चेदङ्गे निपतन्ति ॥ ४४ ॥

मुखे भवा मुख्याः । विमुष आस्नाविन्दवः । भूम्यादिषु पतिता नोान्छ -ष्टतां नयन्ति ॥ ४४ ॥

ġ

लेपगन्धापकर्षणं शौचमभेध्यस्य ॥ ४५ ॥ वसा शुक्रमसुङ्गज्जा मूत्रविट्कर्णाविण्नखाः।

श्लेष्माश्रु दूषिका स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ॥ इति मनुः ।

एतत्सर्वममेध्य शब्देन विवक्षितम् । अस्य यावता गन्धो छेपश्चापक्रव्य-तेऽपनीयते तावता शौचिमिति । तत्र यस्य मलस्य गन्धमात्रं तस्य तद्पकर्षणम् । यस्य गन्धो छेपश्च तस्य तदुभया कर्षणम् ॥ ४५ ॥

तद्द्धिः पूर्वे मृद् च ॥ ४६ ॥

तत्पूर्वं गन्धवन्मलापकर्षणमाद्भिलेपेगन्धवन्तल।पकर्षणं मृदा चाद्भिश्चेति । इदं हस्तपादादेरमेध्यालिप्तस्य शौचण् । तेजसादिषु विशेषस्य पूर्वमुक्तत्वात् ॥ ४६॥

मूत्रपुरीषस्त्रहविस्नंसनाभ्यवहारसंयोगेषु च ॥ ४०॥

चकारः पूर्वोक्तसमुच्चये । स्नेहो रेतः मूत्रपुरीषस्नेहानां विसंसनं निरस-नम् । अभ्यवहारमः यवहायद्रव्यं तेन सयागः । एषु निमित्तेषु पूर्ववन्मृदा चाद्भिः शौचामीति ॥ ४७ ॥

यत्र चाऽऽम्नायो विद्ध्यात् ॥ ४८ ॥

यत्र विषये यच्छौचमाम्नायो विद्ध्यात्तत्र तदेव भवति । यथा चमसा गा-मुच्छिष्ठछिमानां मार्जाछीयाद्भिः पक्षाछनामिति ॥ ४८॥

अथ गुरूपसदनाविधि:-

पाणिना सन्यमुपसंगृद्ध नङ्गुष्ठमधीहि भो इत्या मन्त्रयेद्गुरुं तत्र चक्षुर्मनःप्राणोपस्पर्शनं दुर्भैः ॥ ४९ ॥

पाणिना स्वेन दक्षिणेन । सन्यमिति विशेषग्रहणादक्षिणेनोति गम्यते । गुरोः सन्यं पादमनङ्गुष्ठमङ्गुष्ठवर्जं गृहीत्वाऽधीहि भो इति गुरुमामन्त्रयेत् । तत्र गुरौ मनश्रक्षुषी च निधायाविहतः स्यादिति । पाणाः शीर्षण्यानीिन्द्रयाणि । तेषामात्मीयानामाचमनोकिक्रमेण दभैरुपस्पर्शनं कर्तन्यं माणवकेन ॥ ४९॥

> प्राणायामास्त्रयः पश्चद्शमात्राः ॥ ५० ॥ कार्ण इति शेषाः । जानुपार्धतः परिमृज्य तुटिमेकां कुर्यात्सैका मात्रा ।

N

39

ताः पश्चद्श पूर्यन्ते यावता कालेन तावन्तं कालं प्राणवायुं धारयेत्स एकः प्राणायामः । ते त्रयः कार्याः ।

मनु:--सव्याहतिकां सपणवां गायत्रीं शिरसा सह ।

त्रिः पठेदायतपाणः पाणायामः स उच्यते ॥ इति ॥ ५० ॥

प्राक्कूलेष्वासनं च ॥ ५१॥

भागग्रेषु दर्भेष्वासनं चकारात तव्याभिति शेषः ॥ ५१ ॥

ॐ पूर्वा व्याहृतय. पश्च सत्यान्ताः ॥ ५२ ॥

व्याहातेसाम भूर्भुवः स्वः सत्यं पुरुष इति पश्च । अत्र तु पुरुषव्याहाति-श्रतुर्थी सत्यव्याहति, पश्चभी वक्तव्या । ताश्च प्रत्येकं पणवपूर्वा वक्तव्याः ॥ ५२ ॥

गुरोः पादोपसंत्रहणं प्रातः ॥ ५३ ॥

अहरहः पातगुरीः पादीपसंग्रहणं कार्यम् ।

मनु:- - ज्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः ।

सन्येन सन्यः स्पष्टन्यो दक्षिणेन तु दक्षिणः ॥ इति ॥ ५३ ॥

ब्रह्मानुवचने चाऽऽद्यन्तयोः॥ ५४॥

ब्रस वेदः । अनुवचनमध्यापनम् । तत्राऽऽद्यन्तयोश्च गुरुपादोपसंग्रहणं कार्यम् ॥ ५४ ॥

अनुज्ञात उपविशेत्प्राङुमुखो दक्षिणतः

शिष्य उदङ्गुखो वा ॥ ५५ ॥

आचार्येणानुज्ञातस्तद्क्षिणतः पाङ्मुख उदङ्मुखो वोषविशेत् । कार्यानुगुणो विकल्पः ॥ ५५॥

सावित्री चानुवचनम् ॥ ५६॥

तत्सवितुर्वरेण्यमित्येषा नत्वन्या सवितृदेवत्या । सा वाऽनुवर्चनं पत्यध्य यनं पठनियति ॥ ५६ ॥

आदितो ब्रह्मण आदाने ॥ ५७ ॥

पाणिना सञ्यमुपसंगृह्यत्यादि सावित्र्यनुवचनान्तं यदुक्तं तदिदं ब्रह्मणो वेदस्य गुरोः सकाशादादित आदानकाले कर्तव्यम् । उपनयनादनन्तरं

Ξ.

सावित्र्युपदेशकाले च, पत्यहं तु तत्र चक्षुर्मनस्त्वम् । पातरध्ययनाद्यन्तयोश्य गुरोः पादोपसंग्रहणमनुज्ञातोपवेशनं च कर्तव्यम् ॥ ५७ ॥

ॐ कारोऽन्यत्रापि । ५८॥

सावित्र्यनुवचनाद्न्यत्राप्योंकारो वक्तव्यः । पत्यहमध्ययनकाल इत्यर्थ 11 46 11

अन्तर गमने पुनरुपसद्नम् ॥ ५९ ॥

गुरो: शि॰यस्य च मध्ये गमनमन्तरागमनम् । यस्य कस्याप्यन्तरागमने पुनरुपसद्नं कृतेव्यम् । पाणिना सव्यमित्याद्योकारोऽन्यत्रापित्यन्तमुपसद्नम् 11 49 11

रवनकुलसर्पमण्डूकमार्जाराणां त्र्यहगुपवासो विप्रवासश्च ॥६०॥ श्वादीनामन्तरागमने त्र्यहमुपवासो विषवासश्च कर्तव्यः । विषवास आचा-^९कुलादन्यत्र वासः । मनुस्त्—

पशुमण्डूकमाजीरश्वसर्पनकुलेषु च ।

अन्तरागमने विद्यादनध्यायमहार्निशम् ॥ इति । तद्धारणाध्ययनविषयम् । गौतमियं तु ग्रहणाध्ययनविषयम् ॥ ६० ॥ प्राणायामा घृतप्राज्ञानं चेतरेषाम् ॥ ६१ ॥

इतरेषां श्वादिव्यतिरिक्तानां पश्चादीनामन्तरागमने पाणायामास्त्रयः कार्या घृतपाशनं च कार्यम् । एतत्सर्वे शिष्यस्य पायश्चित्तं न गुरोः । उभयोरित्यपरे 11 69 11

इमशानाभ्यध्ययने चैवम् ॥ ६२ ॥

अभिरुपरिभावे श्मज्ञानस्योपर्यध्ययने चैवं पायश्चित्तम् । पाणायामा घृतपाशनं नेति । द्विरुक्तिरध्यायपारिसमाप्त्यर्था ॥ ६२ ॥

इति श्रीगौतमीयवृत्तौ हरदत्तविरचितायां मिताक्षरायां प्रथमप्रश्ने प्रथमोऽध्यायः॥

अथ दितीयोऽध्यायः ।

उपनीतपसङ्गेनानुपनीतधर्मा उच्यन्ते-

प्रागुपनयनात्कामचारः कामवादः कामभक्षः ॥ १ ॥

आषोडचाद्ब्राह्मणस्येत्यापत्कल्पोपनयनविषयम्। कामचार इच्छाचरणम्। अपण्यान्यपि विकीणीयाच्छ्ववृत्त्याऽपि जीवेदिति । कामवादोऽस्त्रीलानृतादिवच -नम् । कामभक्षो छत्रानपर्युषितान्तादिभक्षणं चतुः पश्चक्रत्वो वा भोजनिमत्येताव द्यस्य स तथाकः । न तु ब्रह्महत्यासुरापानाद्यातेपसङ्गः ॥ १ ॥

अहुतात् ॥ २ ॥

हुतशेषं पुरोडाशादि । तदचीति हुतात् । तद्विपरीनोऽहुतात् । अनुपनीनो हुतं नाद्यादिति ॥ २ ॥

ब्रह्मचारी ॥ ३ ॥

कामचारादेरयमपवादः । आषोडशादित्युक्तत्वात्स्त्रीषु पसङ्गयोग्यताऽस्त्यतो बसचारी जितेन्द्रियः स्यादिति । तथा च स्मृत्यन्तरे-

पायाश्चित्तं विलुष्तमवकीणिवतेन शुद्धमुपनयेन सप्तद्शमत अर्ध्वं वात्याव[®] कीर्णिवताभ्यामिति ॥ ३ ॥

यथोपपादितमूत्रपुरीषो भवाति ॥ ४ ॥

मूत्रपुरीषे यथोपपद्येते यस्य स तथोकः पाङ्मुखादिराप कुर्यात् । न भूमावनन्तर्धायेत्यादिस्थाननियमोऽपि नास्ति ॥ ४ ॥

नास्याऽऽचमनकल्पो विद्यते ॥ ५ ॥ ,

कल्पनिषेधादाचमनमनुज्ञातं स्त्रीशूदवत् ॥ ५ ॥

अन्यत्रापमार्जनप्रधावनावोक्षणेभ्यः ॥ ६ ॥

अपमार्जनादीनि वर्जयित्वाऽऽचमनकल्पो नास्ति । अपमार्जनादिकमस्तीति यावत् । यद्यप्यपमर्जिनादीन्याचमनकल्पे नान्तर्भवन्ति तथाऽपि पर्युदासमुखेन तानि विधीयन्त । अत्र (त्राप) मार्जनं सोद्केन पाणिना परिमार्जनमुच्छिष्टादि-स्त्रिप्तस्य । प्रधावनममेध्यादिस्त्रिप्तस्याद्भिर्मृदा च क्षास्त्रनम् । अवोक्षणं रजस्व लादिस्पृष्टस्य । इदमत्यन्तबालविषयम् । षड्वर्षादूर्ध्वे स्नानःमेच्छन्ति । अस्या-नुपनीतस्यैतावदुक्तमात्रकामचारादिव्यतिकमे पायश्चित्तमास्ति । तत्र समृत्यन्तरे-

ler'c

अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाः प्यूनषोडशः । पायश्चित्तार्धमहीन्ति स्त्रियो व्याधित एव च ॥ ऊनैकाद्शवर्षस्य पञ्चवर्षात्परस्य च । चर्य्गुहः सुहच्चैव पायश्चित्तं विशुद्धये ॥ अतो बालतरस्यास्य नापराधो न पातकम् । राजदण्डश्च तस्यातः पायश्चित्तं च नेष्यते इति ६ ॥

न तदुपस्पर्शनादशौचम्॥ ७॥

तदुपस्पर्शनात्तस्याक्रतोपनयनस्योद्क्याद्दिसृष्टस्याप्युपस्पर्शनादशोचं न
स्यात् । स्पृष्टास्पृष्टिरुपस्पर्शनप् । तेन स्नानं न कर्तव्यम् । भुकोच्छिष्टस्य क्रतः
मृत्रपुरीष[स्य] स्पर्शनादपि नाऽऽचमनम् । इदमपि षड्वर्षात्पागे । किमर्थं तार्हे
तस्य शौचं विहितम् । न तावदनुष्ठानार्थं नापि स्पर्शयोग्यतार्थम् । अक्रतशौचः
स्यापि स्पर्शयोग्यत्वात् । रक्षणार्थमिति ब्रूमः । तथा च स्मृत्यन्तरम्—

बालस्य पञ्चमाद्वर्षाद्वक्षार्थं शौचमाचरेत् । इति ॥ ७ ॥

नत्वेवैनममिहवनवलिहरणयोनियुञ्ज्यात्॥ ८॥

एनमनुपनीतमिमहवन औपासनहोमादी बिह्नहरणे वैश्वदेवादी न नियु-ज्ञान नियुक्जीतिति यावत् । तुश्चद्यदुक्ताद्न्यज्ञापि समन्त्रके कर्माणि न नियुक्जीतिति एवकारोऽवधारणे । अधा अधहायनः— - पाणिग्रहणादि गृह्यं परिचरेत्स्वयं पत्न्यपि वा पुत्रः कुमार्थन्तेवासी वा " शित । छन्दोगाश्च पत्नी जुहुयादिति पत्नीकुमार्याद्यनुद्वातेऽस्निन्पक्षे नत्वेवैनामित्यर्थः॥ ८॥

न ब्रह्माभिव्याहारयेदन्यत्र स्वधानिनयनात् ॥ ९॥

बस वेदः । एनमनुपनीतं ब्रह्म नाभिव्याहारयेन् । किमविशेषे गिति नेत्याह । अन्यत्र स्वधानिनयनात् । पित्र्यस्य सर्वस्य कर्भण उपलक्षणम् । अन्यत्रोदककर्मस्वधापितृसंयुक्तेम्य इति वासिष्ठे दर्शनात् । अगृहीताक्षरः पुत्रः पित्रोः संस्कारमहैतीत्यादि च । अन्यस्यातंभवे सर्वे पित्र्यं कर्मे तदानीं मन्त्रा न्याहियत्वाऽसौ कारियतव्यः ॥ ९ ॥

१ ग. नुज्ञानादस्मिन्पक्षे भवतीति ज्ञापनार्थम् । २ ग, में समाचरेतत्र मन्त्रा-न्वाचित्वाऽसौ ।

浬

उपनयना दिनियमः ॥ १०॥

अम्रीन्धनादियों नियमा वश्यते स उपनयनादिरेव । अनुपनीताधिकारेण विच्छिन्नत्व।दुपनीताधिकारार्थमिदम् ॥ १०॥

उक्तं ब्रह्मचर्यम् ॥ ११ ॥

अनुपनीतस्य यदुक्तं ब्रह्मचर्यं तदुपनीतस्यापि समानम् । ननु च स्त्रीभेक्ष-णालम्भेने इति निषेधो वक्ष्यते । तथाऽपि स्मरणकीर्तनादिनिषेधार्थमिदम् ॥११॥

अझान्धनभैक्षचरणे ॥ १२ ॥

अभीन्धनं समिद्धोगः । भिक्षाणां समूहो भैक्षम् । तदर्थं प्रतिगृहं चरणं भैक्षचरणम् । ते प्रत्यहं कर्तव्ये । तत्र मनु —

दूरादाहत्य सामिधः संनिद्ध्यादिहायासे । सायं पातश्च जुहुयात्ताभिराग्निमतिद्दतः ॥ अकृत्वा भक्षत्ररणमसामिध्य च पावकम् । अनातुरः सप्तरात्रमवकाणित्रतं चरेत् ॥ इति ।

आपस्तम्बस्तु-सायमेवाशिपूजेत्येक इति ॥ १२ ॥ सत्यवचनम् ॥ १३ ॥

उपनीतेन सत्यमेव वक्तव्यम् ॥ १३॥

अपामुपस्पर्शनम् ॥ १४ ॥

उपस्पर्शनं स्नानम् । तदेप्यहरहः कर्तव्यम् ॥ १४॥

एके गोदानादि ॥ १५ ॥

गोदानं नाम षोडशे वर्षे कर्तव्यं वर्तम् । तन्वतेषु द्वितीयम् । छन्दो-गानामेक आचार्या गोदानादि स्नानिमच्छन्ति न ततः पाग्दीक्षितवद्स्यापि ब्रह्मचर्यदक्षिमानियुक्तत्वात् । नित्यस्नानस्यायं पतिषेधः । नैमित्तिकं तु कर्तव्यं, तत्र दण्डवदाप्छवनम् । नाप्सु स्थायमानः स्नायादित्यापस्तम्बरमरणात् ॥ १५ ॥

बहि संध्यत्वं च ॥ १६॥

सायंपातर्द्वे संध्ये यस्य ग्रामाद्धहिर्भवतः स बहिःसंध्यस्तस्य भावः। ग्रामाद्धहिरेव संध्योपासनं कर्तव्यामिति ॥ १६ ॥

तत्कदा कथं चेत्याह-

तिष्ठेत्पूर्वामासितोत्तरां सन्योतिष्याज्योतिषो दर्शना गग्यतः ॥१%।

पातः संघ्यां तिष्ठत्सायं संघ्यामासीत । अत्यन्त संयोगे द्वितीया । स्थानासनः योरुपक्रमोपसंहारी कथयात-सज्योतिषि काले समारम्याऽऽज्योतिरन्तरदर्शनात् । पातर्नक्षत्रज्योतिरारभ्याऽऽसूर्यज्योतिर्दर्शनात्सायमादित्यज्योतिरारभ्याऽऽ**नक्षत्रदर्श** नादिति । तावन्तं कालं वाग्यतश्च स्यात् । तथा च मनुः -

पूर्वी संध्यां जपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमाऽईद्रशैनात् । पश्चिमां तु समासीत सम्यगृक्षाविभ वनात् ॥ इति ॥ ३७ ॥ नाऽऽदित्यभीक्षेत ॥ १८ ॥

ब्रह्मचारिणोऽयं सदाऽऽदित्यदर्शने पतिषेधः । स्नातकस्य तु-मानवी -नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तं यान्तं कदाचन ।

नोपरक्तं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतम् ॥ इति ॥ १८ ॥ वर्जयन्मधुमांसगन्धमाल्यदिवास्वप्राभ्यञ्जनयानो पानच्छत्रकामकोधलोभमोहवाद्वादनस्नानदन्त-धावनहर्षनृत्यगीतपरिवादभयानि ॥ १९ ॥

मध्वादीनि वर्जियेत् । मधु माक्षिकम् । मांसं मृगादेः । गन्धश्रन्दनादिः । माल्यानि पुष्पाणि । दिवास्वमो दिवानिद्रा । अञ्चनमक्ष्णोः तैलाम्यङ्गः । यानं शकटादि । उपानच्छत्रे प्रसिद्धे । कामः स्निसङ्गः । क्रोधः कोषः । छोभो द्रव्याभिलाषः । मोहो विवेकशून्यता । वादो बहुजल्पः । वादनं वीणादीनाम् । स्नानं सुलार्थमुज्जातोयादिना कण्ठाद्धः पक्षालनम् । दन्तथावनं दन्तमलापकर्षणम् । हर्षोऽभिमतलाभाचिचतोद्रेकः । नृत्यगिते प्रसिद्धे । परिवादः परदश्वकथनम् । भयं भयहेतुः कान्तारप्रवेद्यादिः । ईदं हर्षेऽपि दश्व्यम् ॥ १९॥

गुरुदर्शने कण्ठप्रावृतावसक्थिकापा श्रयणपादप्रसारणानि ॥ २० ॥

गुरवः पित्राचार्याद्यः । तेषां दर्शनयोग्ये देशे कण्ठपावृताद्यनि वर्जयेत् । कण्ठपावृतं कण्ठपावरणं वस्त्रादिना । अवसाविथका, गु(ऊ री पादमारोप्यावस्था-नम् । अपाश्रयणं कुडचस्तम्भाद्याश्रित्याऽऽसनम् । पादपसारणं प्रसिद्धम् । गुरुजनसकाशे विनयसंकोचेन । तष्टेदित्यर्थः ॥ २०॥

निष्ठीवितहासिताविष्क(जृ)म्मितावरूफोटनानि ॥२१॥

वर्जयदिति । निष्ठीवितं कण्ठाच्छ्लेष्मणः सदाब्दं बाहिर्निरसनम् हसितं हासः । विजृम्भितं जृम्भिका । अवस्फोटनमङ्गुलीनां सदाब्दमुपमर्दनम् ॥३१॥ स्त्रीप्रेक्षणालम्भने मैथुनञ्ज्काणम् ॥ २२॥

स्राणां मेक्षणमव नवशो निरूपणं न यादाच्छ हं दर्शनम् । आलम्भनं स्पर्शनं ते आनि वर्जयेत् . मैथुनशङ्कायामिति वचनाद्वालवृद्धातुरासु स्वयं च तथावि नस्य न दोषः ॥ २३ ॥

यूतं हीनसेवामदत्तादानं हिंसाम ॥ २३॥

द्यूतं वर्जयेदिति । द्विवितं [द्यूतम्] पाण्यपाणि भेदात् । पाणिद्यूतं मेषयुद्धाद्यपाणियुतमक्षकीडादि । हीनसेवां हीनस्य सेवामबोजातिमभूतेः । हीना चासौ सेवा च शौचादिजछाहरणम् । अदत्तादानं केनाप्यदत्तस्योतसृष्टस्याप्यस्वानिकस्याऽऽदानम् : िंसा पाणिपीडा ॥ २३ ॥

आचार्यतत्पुत्रस्त्रीदीक्षितनामानि ॥ २४ ॥

आचार्यस्य तत्पुत्रस्य तात्स्रया दाक्षितस्य नामानि वर्जयेत् । परोक्षेऽध्यो, पाधिकनामग्रहणं कर्तव्यामिति ॥ २४॥

मधुमं साद्येतत्पर्यन्तं वर्जयेदिति कियान्वयं ऽस्यापि सूत्रस्य-

शुंक्लव चौ मद्यं नित्यं बाह्मणः ॥ २५॥

ब्राह्मणः शुँक्छा परोद्देगकारिण्यः । मद्यं मद्करं दृष्यम् । ताश्च तच्च नित्यं वजयेत् । नित्यं ब्राह्मण इति वचनात्क्षत्त्रियवैश्ययोर्गृहस्थयोः पैष्टव्यिति-रिक्तमद्योपयोगे न पत्यवाय इति ॥ २५ ॥

१ ग. प्यौपचारिक । २ ग. भुका वा । ३ ग. भुकाः ।

अधःशय्यासनी पूर्वोत्थायी जघन्यसंवेशी ॥ २६ ॥ अस्यार्थो मानवे स्पष्टः-

नीचं शय्यासनं चास्य नित्यं स्याद्गुरुसंनिधौ ।

उत्तिष्ठेत्मथर्मं चास्य चरमं चैव संविद्योत् ॥ इति ॥ २६ ॥ न्ह

वाग्वाहूद्रसंयतः ॥ २७॥

वाक्संयमो बहुपछापविरहः । बाहुंसयमो लेष्टमर्दनाद्यभावः । उद्रसंयमो मितभोजनम् ॥ २ ।॥

नामगोत्रे गुरे: समानतो निर्दिशेत् ॥ २८ ॥

आत्मनो नामगोत्रे गुरोः समानतो निर्दिशेत् । समानतो यथावदपर्छापर-हितमित्यर्थः । अपर आह-गुरोर्नामगौत्रे समानतः सम्यगानतः पह्वो भूत्वा निर्दिशोदिति ॥ २८ ॥

अर्चिते श्रेयास चैवम् ॥ २९ ॥

अर्चितो लोके पूजितः । श्रेयान्विद्यादिभिराधिकः । तयोरप्येवमेव सम्यगानत हाते । अत्र स्मृत्यन्तरम्

> आचार्यं चैव तत्पुत्रं तद्भायां दीक्षितं गुरुम् । पितरं वा पितृब्यं च मातुरुं मातरं तथा ॥ हितैषिणं च विद्वांसं धशुरं पतिमेव च ।

न ब्र्यान्नामतो विद्वान्मातुश्च भगिनीं तथा ॥

अर्चिते श्रेयासि चेत्येवंशब्दो यच्च गुरावुक्तं तत्सर्वमतिदिश्वति । तेन श्राय्यासनादिकमापि तयोः सांनिधौ निर्चं भवतीति ॥ २९ ॥

श्च्यासनस्थानानि विहाय प्रतिश्रवणम् ॥ ३०॥

गुरावाज्ञापयाति साति प्रतिश्रवणं प्रतिवचनं कुर्वञ्चाय्यासनस्थानाान् विहायाभिगच्छन्कुर्योत् ॥ ३०॥

अभिक्रमणं वचनाद्दष्टेन ॥ ३१ ॥

यदि बहिः स्थितो गुरुरपश्यन्तेव शिष्यं नवीति तदी शिष्येणार्भिकमणमु प्रमर्पणं कर्तय्यं न पुनरदृष्टोऽस्मीत्यनाद्रः कर्तव्यः ॥ ३१॥

अधःस्थानासनंस्तिर्यग्वातसेवायां गुरुद्र्शने चोत्तिष्ठेत् ॥ ३२ ॥ यदा गुरुनीचैः स्थानमासनं चाधितिष्ठाते स्वयमुच्चेःस्थानासनस्थस्तद्।

):_

गुरुं दृष्ट्वोत्तिष्ठेत् । तिर्यग्वातसेवायां मूत्रपुरीषोत्सर्गादौ च गुरुं दृष्ट्वोत्तिष्ठेत् । चकारः पूर्वापेक्षया समुच्चयार्थः ॥ ३२ ॥

गच्छन्तमनुवजेत्॥ ३३॥

गच्छन्तं गुरुमनुगच्छेत् ॥ ३३ ॥

कर्म विज्ञाण्याऽऽख्याय ॥ ३४॥

यन्किचिदस्य शिष्यस्य कर्तव्यं तस्य निष्कितिरिदं करिष्यामीत्याचार्यायः विज्ञाप्य यच्चाऽऽचार्यो (यौँ)पायकमुदकुम्भहरणादि तत्स्वयमेव ज्ञात्वा कृत्वा च तस्मै कृतमित्याख्याय वर्तितव्यमित्यर्थः ॥ ३४ ॥

आंहुतोऽध्यायी ॥ ३५ ॥

गुरुणाऽ हुतेः सन्वर्धायीत न तु स्वयं चोद्येदिति ॥ ३५॥

युक्तः प्रियहितयोः ॥ ३६ ॥

आचार्यस्य यात्रियं हितं च तत्र युक्तस्तत्परः स्यात् । प्रियं तत्कालुमाित्
करम् , हितं कालान्तरे () तत्करम् ॥ ३६ ॥

्तद्भार्यापुत्रेषु चैवम् ॥ ३७ ॥

तस्याऽऽचार्यस्य भार्यापुत्राश्च तेषु चैवमाचार्यवद्दतितव्यम् ॥ ३७॥ अस्यापवाद –

नोच्छिष्टाशनस्त्रापनप्रसाधनपादप्रक्षालनो न्मर्दनोपसंग्रहणानि ॥ ३८ ॥

उच्छिष्टाशनं भुक्तशेषाश्चनम । स्नापनं स्नानीयादिभिः शिरोङ्गमर्द्नपूर्वक मभिषेकः । मसाधनमर्छकरणम् । पादमक्षालनं मसिख्म् । उन्मर्दनमभ्यङ्गश्चारीरसं-वाहनादि । उपसंग्रहणं व्यत्यस्तपाणिनेत्यादि पूर्वोक्तम् । एतानि गुरोभिर्यापुत्रेषु च न कर्तव्यानि । अत एवाऽऽचार्ये कर्तव्यानीति सिद्धम् ॥ ३८॥

अथोपसंग्रहणस्य पतिपसवः-

() ग. पुस्तके समासे-भियकरम्।

A

विप्रोष्य पसंत्रहणं गुरुभार्याणाम् ॥ ३९॥

विमोध्य पवासं गःवा पत्यागतेन गुरुभायांणामुपसं ग्रहणं कार्यम् ॥३९॥ तत्रापि -

नैके युवतीनां व्यवहारप्राप्तेन ॥ ४० ॥

एके त्वाचार्या युवतीनां गुरुभार्याणां व्यवहारप्रक्षिन पेडिशवर्षप्रायेण शिष्येण विषोष्याप्युपसंग्रहणं न कार्यामिति मन्यन्ते ॥ ४० ॥

अग्नीन्धनभैक्षचरण इत्युक्तम् । तत्राग्नीन्धनस्य प्रतिगृद्यं व्यवेस्थितत्वात्सा-धारणभैक्षचरणे विधिमाह-

सार्ववर्णिकभैक्ष्यचरणमभिशस्तपतितवर्जम् ॥ ४१ ॥

सर्वेषु वर्णेषु भवं सार्ववाणिकम् । अभिशस्तान्पतितांश्च वर्जयित्वा सर्वेषु वर्णोषु मैक्ष्यं चरितव्यम् । अभिशस्ता उपपाताकेनः ॥ ४१ ॥

आदिमध्यान्तेषु भवच्छब्दः प्रयोज्यो वर्णानुक्रमेण ॥ ४२॥

भिक्षां देहीति पदद्वयस्याऽऽदिमध्यान्तेषु वर्णक्रमेण भवच्छब्दः संबुद्धयन्तः पयोक्तव्यः । स्त्रीषु स्त्रीलिङ्गः । बालणस्य भवन्भिक्षां देहि । बालण्यां भवति भिशांदेहि । क्षत्त्रियस्य भिक्षां भगन्देहि : भिक्षां भवति देहि । वैश्यस्य भिक्षां देहि भवन् । भिक्षां देहि भवति ॥ ४२ ॥

आचार्यज्ञातिगुरु[स्वे]ष्वलामेऽन्यत्र ॥४३॥

आचार्य उक्तः । ज्ञातिः पितृव्यादिः सापिण्डः । गुरुर्गातुलादिः । स्वमात्मीयग्रहणम् । अन्यत्र भिक्षाया अभावे, आचार्यादिगृहेषु मैक्ष्यं चरितन्यम् ा। ४३॥

तेषां पूर्वं पूर्वं परिहरेत् ॥ ४४ ॥

तेषामाचार्यादीनां यो यः प्रथमानिर्दिष्टस्तं तं परिहरेत्। अन्य गलाभे स्वगृहे, तत्रालामे गुरुष, तत्रालामे ज्ञातिषु, तत्रालाम आचार्यगृह इति ४४॥

निवेच गुरवेऽनुज्ञातो भुर्जीत । ४५॥

इद्यानीतं भैक्ष्यामिति गुरुवे निवेद्य तद्नुज्ञातो भुद्धीत । यदि गुरुः स्वेपं गृहणीयात्ततोऽन्य शहरेत् । ४५ ॥

असंनिधौ तद्धार्यापुत्रसब्धचारिभ्यः॥ ४६॥ आचार्यासंनिधाने तद्धार्यादिभ्यो यथासंभवं निवेद्य तैरनुज्ञातो भुद्धीत ॥४६॥ वाग्यतस्तृष्यञ्चलोलुष्यमानः संनिधायोदकम् ॥ ४७॥

यावद्भक्ति वाचंयमः । तृष्यचन्यदर्शनेन हृष्यन् । अलोलुष्यमानोऽतिसप्ट-हामकुर्वन् । सांनिधायान्तर्भावितण्यर्थः । सांनिधाप्येति । उदक्रमुद्कभाजनामिति ॥ ४७॥

शिष्यशासनप्रकारमाह-

शिष्यशिष्टिरवधेन ॥ ४८ ॥

् वधस्ताडनम् । अताडचता गुरुणा यत्र्सनादिभिः शिष्यः शास्यः ॥४८॥

💯 🗝 अशक्तौ रज्जुवेणुविदलाभ्यां तनुभ्याम् ॥ ४९ ॥

यदि भत्सैन दिभिः शासितुमशक्यस्ततो रज्ज्वा तन्वा, तनुना वेणुविदलेन वेति । दंदानिर्दिष्टयारपि विकल्पो रज्ज्वा वेणुदलेनं वेति मानवे दर्शनात् । ताभ्यां दुर्बलाभ्यां ताडयित्वाऽपि शासनीयः ॥ ४९ ॥

अन्येन ध्नन राज्ञा शास्यः ॥ ५० ॥

हस्तादिना कोधवशेन ताडयन्राज्ञा शास्य आचार्यः । एवं शिष्यस्य गुरुकुछे वास उक्तः ॥ ५० ॥

कियन्तं कालमित्यत आह-

द्वादश वर्षाण्यकवेदे बहचर्यं चरेत्।। ५१॥

यद्यप्येकैकस्य वेदस्य बह्व्यः शाखाः । एकविंशतिधा बह्वृच एकशतं यजुःशाखाः सहस्रवर्ता सामवदो-नवधाऽन्थर्वणा वेद इति । तथाऽपि वत्र तत्र वेद पूर्वेरध्ययनानुष्ठानाभ्यां परिगृहीता यावती शाखा तावत्यत्र वेदशब्देन विवक्षिता। य एकं वेदमधीते स द्वादश वर्षाणि गुरुकुले ब्रह्मचर्यं चरेत् ॥ ५१॥

प्रतिद्वादश वा सर्वेषु ॥ ५२ ॥

यस्तु चतुरो वेदानध्येतुं शक्तः स प्रतिद्वादश प्रतिवेदे द्वादश वर्षाणीत्यर्थः । यथाऽऽहाऽऽपस्तम्बः - 100

A

秀

13

उपेतस्याऽऽचार्यकुले ब्रह्मचारिवासोऽष्टाचत्वारिंशद्वत्सराणीति ॥ २ ॥ ग्रहणान्तं वा ॥ ५३॥

यावता कालेनैको वेदो दी त्रयश्चतुरी वा ग्रहीतुं शक्यास्तावन्तं काल मिति ॥ ५३ ॥

विधान्ते गुरुरर्थेन निमन्त्र्यः ॥ ५४ ॥

विद्यातमाप्ती गुरुरर्थेन पयोजनेन निमन्ज्यः पष्टव्यः । गुरो, इदं धनमाह-राणीति ॥ ५४ ॥

६ त्वाऽनुज्ञातस्य वा स्नानम् ॥ ५५ ॥

तत आहरेत्याचार्योक्तं कृत्वा स्नानं कर्तव्यम् । वत्स त्वद्गुणैरेवाहमास्म तोषितो धनेनालमिति तेनानुज्ञातस्य वा, स्नानं समावर्तनं कर्तव्यमिति ॥५५॥

आचार्यः श्रेष्ठो गुरूणां मातेत्येके [मातेत्येके]॥ ५६॥

गुरूणां पित्र।दीनां मध्य उक्तलक्षण आचार्यः श्रेष्ठः । स हि विद्यातस्तं जनयति तच्छ्रेष्ठं जन्म । तेनानेकगुरुसमवाये स एव प्रथमं पूज्यः । एके त्वाचार्या माता श्रेष्ठोति मन्यन्ते । तथा च वसिष्ठः -

उपाध्यायाद्दशाऽऽचार्य आचार्याणां शतं पिता । पितुर्दशगुणं माता गौरवेणातिरिच्यते ॥

आपस्तम्बोऽपि-

माता पुत्रत्वस्य भूयाँसि कर्माण्यारभते तस्याँ शुश्रूषा नित्या पतितायामपि ि रुक्तिरध्यायपरिसमाप्त्यर्था ॥ ५६ ॥

इति श्रीगौतमीयवृत्तौ हरदत्तविरचितायां मिताक्षरायां

प्रथमप्रश्ने द्वितीयोऽध्यायः॥

अथ तृतीयोऽध्यायः।

तस्याऽऽश्रमविकल्यमेके बुवते ॥ १ ॥ तस्यैवमंधीतवेदस्य वसचारिणो वश्यमाणाश्चत्वार आश्रमा विकल्प्यन्ते

९ य. रोरिदं । २ क. ख. घ. मधिगतस्य वे ।

1777

इत्येक आचार्या बुवते । अन्ये तु समुच्चीयन्त इति । तत्राऽऽपस्तम्बः-

तेषु सर्वेषु यथोपदेशमः ययो वर्तमानः क्षेमं गच्छतीति । बुद्ध्वा कर्माणि यत्कामयेत तदारभेतेति च । तथा च बसचर्याश्रममुक्त्वा " अत एव बसचर्यन् वान्मवजाते " इति बौधायन ।

मनुना तु समुच्चयो दर्शितः—

ऋणानि त्रीण्यपारुत्य मनो मोक्षे निवेशयत् । अनपारुत्य मोक्षं तु ब्रजमानः पतत्यधः ॥ सर्वेशि कमशस्त्वेते यथाशास्त्रं निष्विताः । यथोक्तकारिणं विषं नयन्ति परगां गतिम् । इति ॥ १ ॥ के पुनस्त आश्रमाः—

ब्रह्मचारी गृहस्थो भिक्षवैँवानसः ॥ २ ॥

यद्यप्यसौ पूर्वमिन वह्नचर्याश्रम उक्तस्तथाऽपि १पित्सितनैष्ठिकब्रह्मचारि त्वभन विवाक्षितम । भिक्षुः संन्यासी । वैखानसो वानप्रस्थः । वैखानसपोक्तिन मार्गेण वर्तत इति । तेन स आश्रमः पाधान्येन दक्षितः । शास्त्रान्तरेषु वैखा-खानसस्तृतीयो भिक्षुश्चतुर्थं आश्रमः । इह तु क्रमभेदः पागुक्तास्त्रय आश्रमिण इत्यन वैखानसवर्जनार्थः ॥ २ ॥

तेषां गृहस्थो योनिरप्रजनत्वादितरेषाम् ॥ ३ ॥

तेषां चतुर्विंग्याश्रमेषु वर्तमानानां गृहस्थो योनिरुपस (त्प) तिस्थानम - गृहस्थोनेवोत्पादिताश्रतुर्भिराश्रमेरिधिकियन्ते । गृहस्थव्यातिरिकाश्रमस्थानां प्रजो। त्पादनस्य निषिद्धत्वात् । तत्र शातातपः –

चण्डालाः पत्यवंसिताः परित्राजकतापसाः ।

तेषां जातान्यपत्यानि चण्डालैः सह वासयेत् ॥ इति ॥ ३ ॥

इरानीमाश्रमधर्मान्वस्यन्प्रथमानिर्दिष्टस्य ब्रह्मचारिण आह्-

तत्रोक्तं ब्रहमचारिणः ॥ ४॥

तत्र तेषां मध्ये ब्रह्मचारिणो नैष्ठिकस्य यदुपकुर्वाणस्योपनयनादिर्निषम इत्यारभ्योकं तदेवास्यापियुक्तं भवति ॥ ४ ॥

३तृतीयोऽध्याय] हरदत्तकृतमिताक्षरावृत्तिसहितानि ।

तत्र विशेष:-

(C)

T.

आचार्याधीनत्वमान्तम् ॥ ५ ॥

आन्तमादेहपातम् । आचार्यकुरु एव तच्छुश्रूषया वर्तेत ॥ 🖰 ॥ 🖰 🦠

गुरोः कर्मशेषेण जपेत् ॥ ६॥

आचार्ये प्रकृते गुरुशन्दः वित्रोरिष ग्रहणार्थः । ततश्वाऽऽचार्यं पितरी च शुश्रूषमाणस्तद्व्यतिरिके काले जपेद्देदमधीयीत । न तु स्वाधीनो भवेत् ॥६॥ गुर्वभावे तद्वत्यवृत्तिस्तद्भावे वृद्धे सब्रहमचारिण्यसौ वा ॥ ७ ॥

आचार्ये या वृत्तिरिमहिता सा तद्भाव तत्पुत्रे तत्पुत्राभावे वृद्धे विद्यया वयसा वाडिके, वृद्धाभावे तथाभूते सब्बचारिणि, सब्बचार्यभावेऽश्री वा कर्तव्या । सिनदाधानादिभिरशो वृत्तिः ॥ ७॥

एवंवृत्तो ब्रह्मलोकमवाप्नोति जितेन्द्रियः ॥ ८ ॥ स्पष्टोऽर्थः । जितेन्द्रियत्वं मनुना दर्शितम् -

श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घरात्वा च यो नुरः । न हृष्याति ग्रुपाति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥ ८ ॥ उत्तरेषां चैतदविरोधि ॥ ९ ॥

उत्तरेष।मन्याश्रमाणामस्मिन्वृत्ते यैद्विरुद्धं तत्सर्गांनम् । यथा द्यूतादिवर्जनम् । विरुद्धं यथा –अभिकार्थं पत्रीजतस्य, गुरुकुछवासा वैखानसस्य, ब्रह्मचर्यं गृहुः स्थस्येत्यपरा वृत्तिः । उत्तरेषां चाऽऽश्रमाणां धर्मजातमेतस्य दृष्टव्यम् । किमवि - शेनेण । न । एतः।विरोधि । एतदाश्रमधर्माविरोधि न म्डेच्छा गुच्यवार्मिकैः सह संभाषेतेत्यवमाद्यस्यापि भवति ॥ ९ ॥

बहुवक्तव्यत्वात्क्रमपाप्तमपि गृहस्थमुझङ्घ्य भिक्षोधर्मानाह-

अनिचयो भिक्षः ॥ १० ॥ निचयो द्रव्यसंग्रहस्तद्गहितः स्यात् ॥ १० ॥ ऊर्ध्वरेताः ॥ ११ ॥

उत्तरेषां चैतद्विरोधीति जितिन्द्रयत्वे सिद्धेऽपि पुनरूर्ध्वरेता इति रेतसः स्रोतोभङ्गो यथा भवेत्तथा प्रयतेतेत्येवमर्थम् ॥ ११ ॥

१ क. ख घ वं भिक्षी । ङ. वंत्रतो २ ग. श्लाघित । ३ क. ख.घ. वेद् । ४ ग. माननीय यथाऽकतादिवर्जितं वि ।

धुवशीलो वर्षासु ॥ १२ ॥

वर्षाशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः । वर्षतौँ साते ध्रुवशीलः स्यादेकत्र तिष्ठे-दिति ॥ ३१२ ॥

मिक्षार्थी ग्रामियात् ॥ १३॥

भिक्षाकाल एव यामं पविशेत् । शेषकालं देवालयादौ वृक्षमूलेषु बा वसेत् ॥ १३ ॥

जघन्यमेनिवृत्तं चरेत् ॥ १४॥

भिक्षाकाले यद्गृहमनुषपत्त्या विलाम्बतं न तद्भ्यस्तद्हः पविशेत् । तत्र मनु:-

> िधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारेऽभुकवज्जने । वृत्ते शरावसंपाते भिक्षां नित्यं यातिश्चरेत् ॥ १४ ॥ निवृत्तांशीः ॥ १५॥

अधिक भिक्षालाभार्थं गृहेव्वाशीर्वाद्परो न स्यात् ॥ ३५॥

वाकचक्षुःकर्मसंयैतः ॥ १ - ॥

वाक्संयमो मौनम् । च अः सयमः पादावि नेपपदेशादन्यत्र चक्षुषोरपवर्तनम् । कर्मसंयमा भिक्षोश्चोदितकर्मानतिकमः । अत्र वाक्संयंगिरोधे तु स्मृत्यन्तरम्-धर्मयोगं पश्चिमश्चं स्वाध्यायं च तथैव च ।

मिक्षार्थं देहिवचनं न निन्दति यतेरि । इति ॥ १६ ॥ कौपीनाच्छादनार्थे वामो विभृयात्॥ १७॥

कार्पीनाभिति गुह्मपदेशस्य नाम तदाच्छा छते यावता तावदेव वासी बिभुयाः । अधिकं तु पावरणादि न बिभुयात् ॥ १७ ॥

प्रहीणमेके निर्णिज्य ॥ १८॥

एके मन्यन्ते तद्भि कौपीनाच्छ।दनं प्रहीणं जीर्णं तथाऽन्यैस्त्यक्तं पञ्चालय बिभूयात्॥ १८॥

१ क, मभिवर्षं च । २ क, ङ. क. शीथ । ३ क. यम: ॥१६॥ ४ ग. यमा वि । ५ ग. मोक्ष्य ।

नाविप्रयुक्तमापधिवनस्पतीनामङ्गमुपाददीत ॥ १९ ॥ विकास के प्रति विकास के प्रति विकास के स्वादिक के स्वादिक के प्रति यात् स्वयं पातितं तु गृहणीयात् ॥ १९॥

न द्वितीयामपर्तु रात्रिं आसे वसेत्॥ २०॥

यत्र वर्षती ध्रुवशीलतोका तमृतुं वर्णियता, ऋत्वन्तरेषु यत्रैकां रात्रिमु-षितस्तत्र ग्रामे न द्वितीयां वसेत् । ग्रामैकरात्रः स्यादिति ॥ २०॥

मुण्डः शिखी वा ॥ २१॥

सर्वानेव केशान्सह शिखया वापयेत्। शिखावर्जं वापयेदा । मुण्डः शिखी वेति विकल्पेनैकदण्डत्रिदण्डयहणविकल्पोऽप्युक्तः। अत्र श्रुतिस्मृती-

अमेरिव शिखा नान्या यस्य ज्ञानमयी शिखा । सं शिखीत्युच्यते विद्वाचेतरे केशधारिणः ॥ इति । साशिखं वपनं छत्वा बहिः सूत्रं त्यजेद्बुधः । एकदण्डं गृहीत्वा च भिक्षधर्म समाचरेत् ॥ शिखी यज्ञोपवीती च यद्दो सम्यवमबोधितः । विद्ण्डयहणं कत्वा भिक्षुधर्मं समाचरेत् ॥ २३ ॥ महाराष्ट्रिक वर्णयेद्वीजवधम् ॥ २२ ॥ । १६६०

बीजानि बीह्यादीनि तेषां वधो मुसलादिना अचातस्तं न कुर्यात् । तेन तण्डुलस्यौद्नीकरणमप्युपलक्षितम् । पक्वानस्यैव स्वामित्वादस्य ॥ २२ ॥

समो भूतेषु हिंानुग्रहयोः॥ २३॥

हिंसायामनुग्रहे च भूतेषु समो यो हिनस्ति यो वाऽनुगृह्णाति तत्र तत्र निर्विकार इति ॥ २३॥

अनारम्भी ॥ २४ ॥

ऐहिकं पारतिकं च न कंचिदारम्भं कुर्यात् । यथाऽऽहाऽऽप्स्तम्बः-अनिहोऽनमुत्रश्वरोदिति ॥ २ ॥

अथ वैखानसस्याऽऽह-

वैखानसो वने मूलफलाशी तपःशिलः ॥ २५ ॥

वैखानसो वानमस्थो वने वसन्मूलानि फलानि च पक्वानि वाऽश्रीयाच पुनरोदनम् । तपः कायपरिशोषणम् । ततश्य मूलकलान्यपि स्वल्पान्येवाश्रीयाः दिति ॥ २५ ॥

श्रावणकेनात्रिमाधाय ॥ २६॥

श्रावणकं नाम वैखानसं शास्त्रम् । तदुक्तेन पकारेणाश्रिमाधाय सायं मा-तर्जुहुयादिति शेषः ॥ २६ ॥

अग्राम्यभोजी ॥ २७ ॥ फलमूलान्यपि ग्राम्याणि न भुद्धीत ॥ २७ ॥

देवापितृमनुष्यभूतर्षिप्जकः ॥ २८ ॥

वन्येरेव फलमूलैरहरहः १श्च महायज्ञानकुर्यात् । अत्र मनुः-

आरण्यैर्विविधेर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा ।

एतानेव महायज्ञानिवंपेद्विधिपूर्वकम् ॥ इति ॥ २८ ॥

सर्वातिथिः प्रतिपिद्धवर्जम् ॥ २९ ॥

य एनमुपागछन्ति ते सर्वे वेंऽ रियातिथयः । न पुनर्ज्ञासगस्यानातिथिरे-वासण इत्ययं नियमोऽस्ति । तत्रापि स्तेनपातितादीन्वर्जयत्प्रतिषिद्धवर्जम् ॥२९॥

वेष्कमप्युपयुक्षीत ॥ ३० ॥

विष्का दृष्टमृगा व्याघादयस्तै हैतं मांसं विष्कं तद्प्युपयुद्धीत । अपिशब्दों गौगार्थः । फल्रमूलाद्यमावे तद्पि भक्ष्यामिति । तत्रापि पञ्च पञ्चनसा भक्ष्या इत्येतद्वाऽतिरिक्तं वर्जियत्वा । प्रतिषिद्धवर्जामिति पदं काकाक्षिन्यायेनोभयत्र संबध्यते ॥ ३०॥

न फालक्षष्टमधितिष्ठेत् ॥ ३१ ॥

अरण्ये वसन्हलेन कष्टं पदेशं नाधिवसेत्॥ ३१॥

ग्रामं च न प्रविशेत् ॥ ३२ ॥ वने वसतौऽपि यादच्छिकोपग्रामपवेशो निषिद्धः ॥ ३२ ॥

जाटिलश्वीराजिनवासाः॥ ३३॥

जिटलः केशश्मश्रुलोमनखधारी । चीरं दर्भादिनिर्मितं वासः । अजिनमुत्त-रीयम् । तथा च स्मृत्यन्तरे व्यवस्थादर्शनात् ॥ ३३ ॥

नातिसंवत्सरं भुञ्जीत ॥ ३४ ॥

संवत्सरमातिकान्तमतिसंवत्सरं तदारण्यमि नाश्रीयात् । अत्र मनुः-

त्यजेदाश्ययुजे मासि ह्यत्पन्नं प्रवंसाचितम्।

जीर्णानि चैव वासांसि पुष्पमूलफलानि च ॥ इति ॥ ३४ ॥ उक्ता आश्रमास्तेषां विकल्पसमुचयावि दर्शितौ । तेषां पाधान्यं

दर्शयाते-

ेऐकाश्रम्यं त्वाचार्याः प्रत्यक्षविधानाद्वाईस्थस्यं

🕾 💯 💎 गार्हस्थस्य ॥ ३५॥

तुशब्दो विशेषवाची । सर्वेषु वेदशास्त्रेतिहासपुराणेषु गृहस्थधर्मा एवाप्रि-होत्रादयः पाचुर्येण विधीयन्ते । ततः सर्व एवाऽऽचार्या गाईस्थस्यैकाश्रम्यं पाधान्यं मन्यन्ते । तत्राद्यकानामितराश्रमधर्मा विधीयन्ते । पत्यक्षविधानादितराश्रमाणाः पत्यक्षेणो । जीव्यत्वात् । द्विरुक्तिव्यीख्याता ॥ ३५ ॥

इति श्रीगौतमीयवृत्तौ हरदत्तविरचितायां मिताक्षरायां प्रथमप्रश्ने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः।

गृहस्थधर्मा उच्यन्ते-

गृहस्थः सदृशीं भार्यी विन्देतानन्यपूर्वी यवीयसीन् ॥ १ ॥

गृहस्थ इति भाविसंज्ञाव्यपरेशः । अथवा गृहस्थस्य थे उधर्मास्ते विवाहात्पागि स्नातकस्यापि समा इति दर्शनार्थं च । जात्या कुछेन च स्रदशीम् । अन्यस्मे वाचाऽप्यदत्ताम् । अवरवयसिवंभूतां भार्यां विन्देतोद्वहेत् ॥ १ ॥

असमानप्रवरेविंवाहः ॥ २ ॥ ः

समान एकः पवरो येषां तैः सह न विवाहः । तद्यथा हरितकृत्सिपङ्ग-राङ्खदर्भहैमकभवानामाङ्गिरसाम्बरीषयौवनाथोति । हारीतः कौत्सीं नोद्वहेदित्या-दिमवरमपश्च आपस्तम्बीये दृष्टव्यः ॥ २ ॥

ऊर्ध्वं सप्तमारिपृत्वन्धुभ्यो वीजिनश्च मातृवन्धुभ्यः

प्रश्चमात्॥ ३॥ भू ।

पितरमारभ्य तद्धन्धुवर्गे गण्यमाने सप्तमाच्छिरस ऊर्ध्व जातां कन्यकामुद्दहेत् । मातरमारभ्य तद्दन्धुवर्गे गण्यमाने पश्चमाच्छिरस ऊर्ध्व जातामुद्दहेत् ।
बीजिनश्च सप्तमाद्ध्वामिति चकारात्सिध्यति । यथा क्षेत्री वध्न्यो रुग्णो वा
देवरं पाथयते मम क्षेत्रे पुत्रमुत्पाद्योति । यद्दा संतानक्षय विधवां गुरवो नियुद्धते,
दृष्टं विचित्रवीर्यक्षेत्रे सत्यवतीवाक्याद्वचासो धृतराष्ट्रादीनुत्पादितवानिति । तथाऽऽह
याज्ञवलक्यः-

अपुत्रेण परक्षेत्रे नियोगोत्पादितः सुतः । उभयोरप्यसौ रिक्थी पिण्डदाता च धर्मतः ॥ इति । तदिषयमेतद्गीजनश्चेति ॥ ३॥

अथ विवाहभेदाः-

बाहमो विद्याचारित्रवन्धुशीलसंपन्नाय द्यादाच्छाद्यालंकताम् ॥४॥

विद्या वेदविद्या । चारित्रं चोदितकर्मानुष्ठानम् । बन्धवो ज्ञातयो मातुला द्यश्च । शीलं विहितेषु श्रद्धा ' एतेर्गुणैः संपन्नाय वस्त्रयुगुलेनाऽऽच्छाद्य यथावि-भवमलंकतां कन्यां द्यात् । एवंविधस्य विवाहस्य बाह्मसंज्ञा ॥ ४ ॥

संयोगमन्त्रः प्राजापत्ये सह धर्मश्चर्यतामिति ॥५॥

पाजापत्यसंज्ञके विवाहे सह धर्मश्चर्यतामिति पदानपन्तः । यद्यपि ब्राह्मा-दिष्वपि सह धर्मचर्या भवति तथाऽप्याऽन्तादनया सह धर्मश्चरितव्यः । नाऽऽश्रमा-

Ã

A.

尔

न्तरं प्रवेष्टब्यं नापि स्त्र्यन्तरमुपयन्तव्यामिति मन्त्रेण समय कियते । एष बालादेः पाजापत्यस्य विशेषः । आच्छाद्यासंस्रतामिति समानम् ॥ ५ ॥

आर्षे गोमिथुनं कन्यावते द्यात् :॥ ६ ॥

आर्षसैज्ञके विवाहे गोमिथुन स्त्रीपुंरूपं कन्यावते दद्याद्वर तब्दन्धुर्वी कश्चित्। आच्छाद्यालंकतामिति समानम् ॥ ६ ॥

अन्तर्वेद्यत्विजे दानं दैवोऽलंकृत्य ॥ ७ ॥

अन्तर्वेदि, वेद्या दक्षिण।काल ऋत्विजे कर्म कुर्वते यदलंकत्य कन्याया दानं स दैवो विवाहः । आच्छाद्यालंकतामिति । पक्ते पुनरलंकत्येति वचनं वरस्य।प्यङ्गुछीयकादिभिरछंकारार्थम् ॥ ७ ॥

इच्छन्त्याः स्वयं संयोगो गान्धर्वः ॥ १ ॥

इच्छन्त्या वध्वा इच्छतो वरस्य संयोगो गान्धर्वो विवाहः । स्वयामीत वचनाद्वरेच्छा गम्यते ॥ ८॥

वित्तेनाऽऽनतिः स्त्रीमतामासुरः ॥ ९ ॥

यत्र स्त्रीमतां कन्यावतां पित्रादीनां वित्तेन धनपदानेनाऽऽनितरार्जनं क्रियते स आसुरो विवाह: । अत्र याज्ञवल्क्य:-

आसुरो दविणादानादिति । मनुश्र-

ज्ञातिम्भे द्रविणं दत्त्वा केन्याये च स्वशाक्तिः। कन्यापदानं स्वाच्छन्यादासुरो धर्म उच्यो ॥

स्त्रीमतामिति वचनान्त केवलं कन्यायै धनपदानमासुरत्वानिबन्धनम् । तथा च स्मृत्यन्तरम्-

यासां नाऽऽद्दते शुल्कं ज्ञानयो न स विक्रयः ।

अईणं तरकुपारीणामानृशंस्याच केवलम् ॥ इति ॥ ९ ॥

प्रसह्य ऽ'दानाद्राक्षसः॥ १०॥

बलात्कारेण ५ न्यांवतो निर्जित्य यदादानं स राक्षसो विवाहः ॥ १० ॥

असंविज्ञातापमंगमात्पेशाचः ॥ ११ ॥

सुप्ता मत्ता प्रमत्ता वा यत्रासंविज्ञातनुपगम्यते स पैशाचो विवाहः ॥११॥

१ क. ख. घ. कन्यां चैव । २ क. ख. घ. न्याद्त्रेय ।

Jest.

3

एवमष्टौ विवाहा उक्तास्तेषु-

चत्वारो धर्म्याः प्रथमा । १२॥

आदितश्चत्वारो विवाहाः सर्ववर्णानां धर्म्या धर्माद्नपेताः प्रशस्ता भवन्ति ॥ १२॥

षाडित्येके ॥ १३ ॥

एके स्मर्तारः षड् धर्म्या इत्याहुः । गान्धर्मासुरयोरिप धर्मादनपेतत्विम-च्छिन्ति । १३॥

कयविवाहे क्षत्त्रियादिषु स्त्रीषु ब्राह्मणादिभ्यो जातानां पुत्राणां शास्त्रेषु संकेतितं संज्ञाभेदमाह-

अनुलोमानन्तरैकान्तरद्व्यन्तरासु ज्ञाताः सवर्णा-

म्बष्ठोत्रानिषाददौष्मन्तपारश्वाः॥ १४ ॥

बाल्लणस्यानन्तरा क्षत्त्रिया तस्यां जातः सवर्ण । क्षात्त्रियस्य वैश्वा तस्यां तस्मादम्बष्ठः । वैश्यस्यानन्तरा श्रुदा तस्यां तस्नादुन्नः । ब्राह्मणस्यकान् रा वैश्या तस्यां तस्मान्त्रिषादः । क्षात्त्रियस्यकान्तरा श्रुदा तस्यां तस्माद्दीष्टमन्तः । बाल्लणस्य द्व्यन्तरा श्रुदा तस्यां तस्मात्पारशवः । प्रपञ्चो जातिनिर्णयस्य स्मृत्य न्तरे दृष्टच्यः ॥ १४ ॥

पातिसोम्येन जातानाह—

प्रतिलोमास्तु सूतमागधायोगवछतवैदेहकचण्डालाः ॥ १५॥

अनन्तरैकान्तरद्व्यन्तरासु जाता इत्यनुवर्तते । क्षत्त्रियस्यानन्तरा ब्राह्मणी तस्यां तस्मात्सूतः । वैश्यस्यानन्तरा क्षत्त्रिया तस्यां तस्मान्मागधः । श्रूदस्या नन्तरा वेश्या तस्यां तस्मादायोगवः । वैश्यस्येकान्तरा ब्राह्मणी तस्यां तस्मात्कतः। श्रूदस्येकान्तरा ब्राह्मणी तस्यां तस्मात्कतः। श्रूद्वस्यकान्तरा क्षाह्मणी तस्यां तस्माद्वेदेहकः । श्रूद्वस्य द्व्यन्तरा क्राह्मणी तस्यां तस्माद्वण्डास्र इति ॥ १५॥

अन्येषां मतेन तेषामेव पतिवर्णं संगृह्य संज्ञाभेदानाह-

ब्राह्मण्यजीजनत्पुत्रान्वर्णेभ्य आनु रूर्वाद्ब्राह्मणस्तुत-मागधचण्डालान् ॥ १६ ॥

स्पष्टोऽर्थः । अत्राऽऽनुपूर्विग्रहणं वर्णकमिववक्षापरम् । नत्वनुद्धोमपरम्

6

b.

16

तेभ्य एव क्षात्त्रिया मूर्धावसिक्थक्षात्त्रियधीवरपुल्कसां-स्तेभ्य एव वैश्या भूज्जकण्ठमाहिष्यवैश्यवेदहान्पारशः वयवनकरणञ्जूदाञ्कूद्वेत्येके ॥ १७॥

एके स्मर्तार इत्युक्तकमेण ब्राह्मण्यजीजनादित्यारभ्य ब्राह्मणीक्षत्तियावै-श्याज्ञादासु ब्राह्मणादिवर्णेभ्य' क्रमेण जातानां संज्ञाभेदान्मन्यन्ते ॥ १७॥ वर्णान्तरगमनमुत्कर्षापकर्षाभ्यां सप्तमे पश्चमे वाऽऽ

चार्याः ॥ १८॥

मन्यन्त इति वाक्यशे : तेषामेव सवर्णादीनामनुस्नेमजातानामुत्कर्षेण पितृद्वारा सममपुरुषादुत्स्वष्टवर्णान्तरप्राप्तिर्भवित । अपकर्षेण मातृद्वारा पश्चमपुरुषा-दपस्वष्टवर्णान्तरपाप्तिर्भवित । तद्यया - न्नास्नणेनोढायां श्चात्त्रयायामुत्पादिता सवर्णा साऽपि न्नास्नणेनोढा तस्यामुत्पादिता चेत्येवमा सप्तम्याः सप्तमी तु न्नास्नणेनोढा यद्पत्यं स्ते तद्नासणजातीयमेव भवित । एवं न्नास्नणेन श्वात्त्रयायामुत्पादितः पुत्रः सवर्णः सो पि श्वात्त्रयामुद्वास पुत्रमृत्पाद्यित सोऽपि श्वात्त्रयामित्येवमापश्च मौत्पश्चमस्तु श्वात्त्रयायां यद्पत्यमृत्पाद्यित तत्श्वात्त्रयजातीयमेव भवित । विकल्प - स्यैवं चार्थः । तत्रापि वर्णान्तरगमने वृत्तस्वाध्यायबाहुल्ये सित पश्चमेनोत्स्रष्टं भवित । हिनवृत्त्या पश्चमेनापस्त्रष्टं च भवतीति । एवं श्वात्त्रयस्य वैश्यायां वेश्यस्य शूद्वायामिपि दृष्टव्यम् ॥ १८ ॥

सृष्ट्यन्तरजातानां च ॥ १९॥

चातुर्वण्यमनन्तरेण चानुलोमजातानां सवर्णाम्बष्ठादीनामण्युत्कर्षापकर्षाभ्या मन्योन्यव र्गन्तरगमनं भवति । तद्यथा—सवर्णेनोढायामम्बष्ठचामुत्पादिता दुहिता पुनः सवर्णेनोह्यते । तस्यामण्युत्पादिषा सवर्णेनत्यासण्तमात्सप्तमी तु सवर्णेनोढा यद्पत्यं हे एव भवति । एवं सैवाम्बष्ठेनोढायां दुहितरं सूते साऽप्यम्बष्ठेनेति सप्तमी त्वम्बष्ठेनोढा यद्गत्यमुत्पाद्यति सोऽम्बष्ठ एव भवति । (?) एवमं म्बष्ठयोराप दृष्टव्यम् ॥ १९ ॥

्रप्रतिलोमास्तु धर्महीनाः ॥ २०॥

पतिलोगाज्जाताः सूताद्यो धर्महीना उपनयनाद्धिर्महीनाः । तत्र सूतस्ये-कस्योपनयनमात्रं शास्त्रान्तरेऽङ्गीकृतम् ॥ २०॥

जूदायां च ॥ २१॥

आनुलोम्येनापि शूदायामुत्पनाः पारशवादिवर्महीनः । एवं च सवर्णादी-नामनुखोमानां सिद्धो धर्माङ्गिकारः । तथा च मनु:-

> स्वजातिजात्यन्तरज्ञाः षट् सुता द्विजधर्मिणः । बूदाणां तु सधर्माणः सर्वेऽपध्वंसजाः स्मृताः ॥ २ १ ।।। असमानायां तु ज्ञाद्वात्पतितवात्तिः ॥ २२ ॥

त्रुद्रादसमानायां वेश्यादिःश्चियामृत्यादित आयोगवादिः पतितवृत्तिः पति-तबहरी।स्पर्शनपतियहादौ वर्जनीयः। एवं च वैश्यात्क्षत्तिय यां क्षत्तियाद्त्राः सण्यां जातो न पवितवृत्तिः ॥ २२॥

अन्त्यः पापिष्टः ॥ २३ ॥

शूदादसमानाज्जानितेषु तेषु योऽन्त्यो बास्रायां जातश्रण्डासः पापिष्ठोऽ-त्यन्तं वर्जनीयः । तथा च स्मृत्यन्तरम्-

चण्डासमाजंगोवासञ्यजनानपरिहरेदिति ॥ २३ ॥

अथ पक्रतान्विवाहान् स्ताति -

पुनन्ति साधवः पुत्राः ॥ २४ ॥

अंच्छा अस्मा)सु जाताः साधवः साधुवृत्तयः पुत्रा जनियतुः कुरुः पुनन्ति ॥ २४ ॥

तत्र विशेषः-

त्रिपुरुषमार्पात् ॥ २५ ॥

आर्षविवाहोढायां गातः पुत्रस्तीन्पुरुवान्पुनाति नरकादुद्धराति ॥ २५ ॥ दश दैवादशैव प्राजापत्यात् ॥ २६ ॥

उपैसमस्तमपि पुरुषपद्मत्र दशशब्देन संबध्यते । एवकारी निर्धारणपरः ॥ २६ ॥

१ क. ख. जनो गो। २ क. ख. आच्छा सु। ग. एते सु। क. ख. घ. पसूत्रगतम् ।

द्श पूर्वान्दश परानात्मानं च ब्राह्मीपुत्रो ब्राह्मीपुत्रः ॥२०॥ ब्राह्मविवाहेनोढा ब्राह्मी तस्यां जातः पुत्रः पित्रादीन्दश पूर्वान्दश परान्भ विष्यतः पुत्रादीश्च दशाऽऽत्मानं चैकविंशं पुनाति । तस्माद्ब्राह्मो विवाहः प्रशस्त-तमः ॥ २७ ॥

रति श्रीगौतमीयवृत्तौ हरदत्ताविरचितायां मिताक्षरायां प्रथमप्रश्ने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पश्चमोऽध्यायः।

गर्भाधानकालं पस्तौति-

ऋतावुपेयात् ॥ १ ॥

रजोदर्शनादारभ्य षोडशाहोरात्रा ऋतुः स्त्रीणां गर्भग्रहणकालस्तत्रोपग-च्छेद्भार्याम् । तत्राऽऽपस्तम्बीये विशेषः—

चतुर्थिमभृत्याषोडशीमुत्तरामुत्तरां युग्मां प्रजानिःश्रेयसमृतुगमनामित्युपदि-शन्ति ।

मानवं तु-

Ç

4

焦

ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडरा स्मृताः । चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सिद्दगिर्हितैः ॥ तासामाद्याश्वतस्रस्तु निन्द्या एकाद्शी तु या । त्रयोद्शी च शेषास्तु पशस्ता दश रात्रयः ॥ अमावास्यामष्टमीं च पौर्णमासीं चतुर्दशीम् । ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमण्यृतौ स्नातको द्विजः ॥ इति ।

याज्ञवल्क्यस्तु –

एवं गच्छिन्स्रियं क्षामां मघां मूलं च वर्जयेत् ।

() युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ॥ इति च ।
तिहरू षोडशसु रात्रिष्वादितास्तस्यः सर्वथा वर्ष्याः । इतरासु गच्छेदिति
सर्वस्मृतिचोदितनिषेधान्परित्यच्य गच्छन्तुत्स्रष्टं पुत्रं जनयति । द्वेषादिना ऋतावनुपयन्पत्यवेयादिति । तथा च देवस्रः—

⁽⁾ मुद्रितयाज्ञवल्क्यस्मृतौ—सुस्थ इन्दौ सक्तत्पुत्रं लक्षण्यं जनयत्पुमान् । इति पाठो दृश्यते ।

यः स्वरारानृतुस्नातान्स्वस्थः सन्नोपगच्छति । भ्रूषणहत्यामवामोति गर्भे पाप्तं विनाश्य सः ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरं च-

ऋतुस्नातां तु यो भायां संनिधौ नोपगच्छाति । तस्या रजासि तं मासं पितरस्तस्य शेरते ॥ इति ।

अयं तु रागतः पाप्तत्वे सत्यप्यकरणे पत्यवायश्रवणाद्विधिश्च भवति । कतावेवापेयादेवेति कस्यचिन्मतेन नियमश्च भवति ॥ १ ॥

आचार्यस्तु परिसंख्यानं च पितपादयाति— सर्वत्र वा प्रतिषिद्धवर्जम् ॥ २ ॥

सर्वेषु वा कालेषूपेयादतावनृतौ च मतिषिद्धदिवसान्वर्जयित्वा । यथाकामी भवेद्वाऽपि स्त्रीणां वरमनुस्मरन् । इति ॥

वरश्य-काममा विजानितोः संभवामेति । यद्प्यात्मनो जितेन्द्रियत्वे सत्यिप धर्मदाराः सर्वदा रक्षणीया इति स्मर्यते । अपमत्ता रक्षत तन्तुमेनं मा वेः क्षेत्रे परबीजानि वाप्सुरिति ॥ २ ॥

अथ पश्च महायज्ञा:-

देवपितृमनुष्यभूतर्षिपूजकः ॥ ३ ॥

अत्र पूजकरान्दो देवादिषु पत्येकं संबन्यते । द्वंद्वान्त्यं श्रूयमाणं पत्येक मभिसंबन्यते । गृहस्थो नित्यं देवादिपूजकः स्यात् । तत्र देवपूजा वैश्वदेवसक छहोमाद्यक्षिकार्यं च । पितृपूजां मनुराह—

> एकमप्याशयोद्धेमं पित्रथें पाश्चयाज्ञिके । न चैवात्राऽऽशयेत्कंचिद्धैश्वदेवं मित द्विजम् ॥ इति । दद्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनीदकेन च । पयोमूलफलैर्वांऽपि पितृभ्यः मीतिमावहन् ॥ इति च ।

मनुष्यपूजाऽतिथिपूजा । भूतपूजा बलिहरणम् । ऋषिपूजा ब्रह्मयज्ञः । ऋषियज्ञो ब्रह्मयज्ञ इति पर्यायः ॥ ३ ॥

ेत च प्रतिपाद्यन्ते । अत्र क्रमो न विवक्षितः । ब्रह्मयज्ञस्तु — नित्यस्वाध्यायः ॥ ४ ॥

बहुवीहिरयम् । तत्पकारश्च ब्रह्मयज्ञेन यक्ष्यमाण इत्यारम्य तीत्त

रीयकेऽभिहितः। अत्र नित्यशब्दाद्बसयज्ञब्यतिरिक्तकालेऽपि यथावसरमधीयितिति द्शिंतम् ॥ ४ ॥

षित्रयज्ञस्तु—

पितृभ्यश्चोदकदानं यथोत्साहमन्यत् ॥ ५ ॥ 🔻 📑

पितृभ्यो नित्यमुद्कं द्यात् । अन्यद्गोजनफलमूलादि यथोत्साहं यथाराकिः द्यात् । अत्र चकारानित्यं देवर्षीणामपि तर्पणं कर्तव्यामिति द्वितम् । तत्र मनुर्बसचारिणं पेकत्याऽऽह-

नित्यं स्नात्वा शुँचिः कुर्याद्देविषितृतर्पणम् ॥ इति ।

कात्यायनः-

देवतानां पितृणां च जले दद्याज्जलार्ञ्जलिम् । असंस्कृतपमीतानां स्थले द्याज्जलां अलिम् ॥ इति ।

नोद्केषु न पात्रेषु न करुद्धो नैकपाणिना । नोपतिष्ठति तत्तोयं यद्भूम्यां न पदीयते ॥

उशना-

आपो देवगणाः सर्व आपः पितृगणाः स्मृताः । तस्माद्द्सु जलं देयं पितृणां दत्तमक्षयम् ॥ इति ।

भगः पकारान्तरमाह-

नाभिमाने जले स्थित्वा चिन्तयन्नूर्ध्वमानसः । ्आगच्छन्तु मे पितर इमं गृहणन्त्वपोऽञ्जलिम् ॥ विर्श्विरञ्जालेमाकाशमुच्चैरुच्चतरं बुधः ।

उक्त्वा चोक्त्वा क्षिपन्वारि वाग्यतो दक्षिणामुखः ॥ इति ॥५॥ देवयज्ञस्याभिकार्यभूलत्वादाभिषारिग्रहकालं तावदाह —

भार्यादिरामिर्दायादिर्वा ॥ ६ ॥

भार्याशब्देन विवाहो छक्ष्यते । यस्मिन्नश्रौ भार्योद्यते तमिनगरभ्य वा यस्मिन्नहनि पितृभ्रात्रादिभिर्दायविभागः कियते तदहरारम्य वा सायमुपकम

९ ग. पकम्याऽऽह। २ क. ख. घ. द्विजः । ३ ग. ञ्चलीन्। ४ ग. झुडीन्। ५ क, स, च्छ त्वमेव पि ग. च्छ त्वं मे पि। ६ ग. त्रींस्विनि इत ।

B

Ti

मिं परिचरेत् । दायविभागात्पूर्वं पितुज्येष्ठभ्रातुर्वा केर्मण्युपजीवतो न पत्यवाय

तास्मन्गृह्याणि कर्माणि ॥ ७॥

तस्मिन्नेवंपरिगृहीतेऽशौ गृंहो मनुष्यभूतानि णुंसवनादीनि कर्माणि कर्त-व्यानीति ॥ ७ ॥

देवपितृमनुष्ययज्ञाः स्वाध्यायश्च बालिकर्म ॥ ८ ॥

तस्मिनित्यनुवैतिते । तत्र देवयज्ञस्याग्निसंबन्धः प्रतिद्धः । पितृमनुष्यभूत - यज्ञानां तु तद्रथैमन्त्रमिस्मन्गृद्धाभौ पच्यत इति । ब्रह्मयज्ञस्याग्निसंबन्ध उज्ञानसा पक्षे दर्शितः - अग्निसमीप इत्येकेषामिति । अपार्गृहीताभेरपि पश्चमहायज्ञाविधाना - देते लौकिकेऽभौ कर्वन्याः ॥ ८ ॥

अथ देवयज्ञवैश्वदेवपयोगमाह-

असावासिर्धन्वन्तारीविश्वे देवाः प्रजापितः स्विष्टकृदिति होमः ॥९॥

अत्र ' जुहोतिचोदनाः स्वाहाकारपदानाः ' इत्यापस्तम्बस्मरणाखोमशब्देन स्वाहाकार उक्तः । अग्न्यादिभिः स्वाहाकारान्तेरग्नौ जुहुयात् । स्वष्टकच्चाग्न्युप पदो दष्टःयः । हो त्वादेवाभिसिद्धावग्नाविति वचनं बिछहरणवद्भूमौ न कर्तव्य पिति वैचनार्थम् । तस्माद्धोमधर्मः स्वाहाकारो बिछहरणेष्वपि भवति । तथा चाऽऽश्वरु।यनः—

स्वाहेत्यथ बिछहरणमिति . आपस्तम्बीयानां स्वाहाकारान्ता एव मन्त्राः पठिताः ॥ ९ ॥ अथ भृतयज्ञबाछिहरणमाह—

दिग्देवताभ्यश्च यथास्वम् ॥ १०॥

यस्या देवत या या दिक्तस्यां दिशि तस्यै देवतायै बालिईर्तव्यः इन्दाय स्वाहेतीशानपर्यन्तं प्रागादि पदक्षिणं कर्तव्यम् ॥ १०॥

> द्वार्षु महद्भ्यः ॥ ११ ॥ गृहस्य यावत्यो द्वारस्तासु महद्भ्यः स्वाहेति बलिहरणम् ॥ ११॥

१ क. ख, घ कर्माण्यु । २ ग. गृह्येषु म । ३ ग. नियमार्थम् । ४ ग. जॅऽपि ।

Ģ

A

纸

F.

गृहदेवताभ्यः प्रविश्य ॥ १२ ॥

अन्तः प्रविश्य गृहदेवताभ्यः स्वाहेति बिछहरणम्। प्रविश्येति वचनाद्दार बहिष्ठेन न कर्तव्यम् ॥ १२ ॥

ब्रह्मणे मध्ये ॥ १३ ॥

गृहस्य मध्ये ब्रह्मणे स्वाहोति बलिईर्तेव्यः । दिग्देवताभ्यश्चेति चकारात्पृ-थिवी वायुः प्रजापतिर्विश्वे देवा इति सूत्रकारोक्तदेवताभ्यश्च ब्रह्मणोऽनन्तरं बिहर्तिव्यः ॥ १३ ॥

> आकाजायेत्यन्ति स्थि बलिरुत्क्षेप्यः ॥ १४ ॥ विश्वेभ्यश्चेव देवेभ्यो बिलराकाश उत्किपेत् । दिवाचरेम्यो भूतेभ्यो नक्तंचारिभ्य एव च ॥ इति मनुः ॥१४॥ नक्तंचरेभ्यश्च सायम् ॥ १५॥

सायं बलिहरणेऽयं विशेषः । नक्तंचरेभ्यः स्वाहेति बलिईर्तेव्यः । चका रात्पुर्वोक्ताभ्यश्च भवति ॥ १५ ॥

स्वस्तिवाच्य भिक्षादानमप्पूर्वम् ॥ १६ ॥

बिहरणानन्तरं भिक्षादानं कर्तव्यम् । स्वस्त्यित्विति स्वस्तिवचनमुक्त्वा भिक्षोईस्ते पूर्वभयो द्रवा चेति । परिवाजके विशयः-

> यातिहस्ते जलं दत्त्वा भैक्षं दत्त्वा पुनर्जलम् । भैक्षं पर्वतमात्रं स्यात्तज्जलं सागगेपमम् ॥ इति ।

एति द्विक्षादानमितिथिपूजाभावे मनुष्ययज्ञः स्यात्। एते पश्च महा ज्ञा ब्रह्मयज्ञवर्जाः कर्तव्याः सायं पातश्च । कस्मात् ।

अथ सायं पातः सिद्धस्य हविष्यस्य जुहुयादित्याश्वलायनस्मरणात् । सायं पातर्भुतिभित्युक्त इत्यादिकात्यायनसूत्रवचनाच्च ॥ १६ ॥

ददातिषु चैवं धर्म्येषु ॥ १७ ॥

द्दातयो दानानि यानि दानानि धर्म्याणि न भयादिनिमित्तानि तेषु चैव-मप्पूर्वदानामिति ॥ १७॥

्दानपसङ्गात्फलविशेषमाह—

१ ग. मिति चान्द्रायणसू ।

AX.

समद्विगुण शहस्रानन्त्यानि फलान्यबाह्मणबाह्मण श्रोत्रियवेद्वार्गेभ्यः ॥ १८॥

अबासणः क्षत्त्रियादिः ब्रासगो जातिमात्रम् । श्रोतियोऽधीतवेदः । साङ्गः सकल्पं सरहस्यं चाधीतवेदो वेदपारगः । एभ्यो दत्तं यथाक्रमं समिद्विगुणसाहस्र-मानन्त्यं च फलं द्दााति ।

तथा च मनु:-

सममत्राहागे दानं द्विगुणं वाह्मणत्रुवे । श्रीत्रिये शतसाहस्रमनन्तं वेद्पारगे ॥ इति ॥ १८ ॥ दानमसङ्ग्राधनावश्यदेयमदाने च पत्यवायस्तं विषयमाह-गुर्वर्थनिवेशौषधार्थवृत्तिक्षीणयक्ष्यमाणाध्ययनाध्वसं योगवैश्वजितेषु द्रव्यसंविभागा वहिर्वेदि॥ १९॥

यज्ञे दक्षिणाकाले सदस्यभ्या यदानं तदन्तर्वेदि । ततोऽन्यत्र बाहवेंदि । द्रव्यसंविभागो हिरण्यादेदीनम् । तद्गुव दिविषयेऽवश्यं दानं कर्तव्यम् । अधीतः वेदस्य दक्षिणार्थं गुर्वर्थम् । निवेशाषधार्थं निवेशो विवाहः । स च प्रथमस्तदर्थमा औषधार्थं रुग्णस्य भेषजार्थम् । वृत्त्या तद्हर्जीवनेन हीनो वृत्तिक्षीणः । यक्ष्य-म.णो यज्ञं कारिष्यन् । अध्ययनाध्वसंयोगः । अध्ययनेन संयोगो यस्य साऽध्य-य- संयोगः । अध्वना संयोगो यस्य सोऽध्वसंयोगः । बहुवीहिः । वैश्वजितः कतिविधानिद्यागः । सर्वस्वदानेन निर्दृब्यः । एरैपिनितोऽवश्यं यथाशाकि हिर-ण्यादि दद्यात् । अद्दत्पत्यवेयादिति । बहिर्देदिग्रहणेन सदीक्षितविषयाभिद्गन्त-र्वेद्यन्येभ्योअपि देयम् ॥ १९ ॥

भिक्षमाणेषु कृतान्नामितरेषु ॥ २०॥

इतरेषूक्तव्यातिरिक्तेषु भिक्षमा गेषु कतानं पक्वान्तमवश्यं देयम् द्रव्याद्-रदाने न दोषः । कताचाविषयेऽ।प वसिष्ठः-

अनता सनधीयाना यत्र मैक्षचरा द्विजाः। तं ग्रामं दण्डयेदाजा चोरदण्डंत्रतो हि सः॥ इति॥ २०॥ अथ दानापवादः -

१ ग. णं त्राक्षणे वर्जेत् । २ ग. सहस्रं श्रोतिये विद्यादन । ३ ग. ण्डधरो हि ।

13

प्रतिश्वत्याप्यधर्षसंयुक्ताय न द्यात् ॥ २) ॥

दास्यामीति पतिश्रुत्या यथर्मसंयुक्तविषये न दद्यात् । यदि तेन दृः णाः धर्मसंयुक्तं वेश्यागमनाद्यसौ करिष्यतीति विजानियात् । अधर्मसंयुक्त इति वचना-दन्यत्र प्रतिश्रुतमद्दत्पत्यवेयादिति दर्शयति ॥ २१ ॥

पतिश्रवणावेषये विशेषमाह-

कुद्दृहृष्टभीतार्तलुब्धवालस्थविरमूढमनोन्म-त्तवाक्यान्यनृतान्यपातकानि ॥ २२ ॥

कुद्धादिवाक्यान्यनृतान्ययथार्थान्यप्यपातकानि न पापं जनयन्ति । कुद्धः कोधाविष्टः । इष्टो हर्षाविष्टः । भीतो भयाविष्टः । एतेषां गुणान्तरैराविष्टत्वाद्दा-क्यमप्रमाणम् । तस्पातप्रतिश्रुत्यादानेअपे तेवामदोषः ॥ २२ ॥

अथ गृहस्थपूर्वभोज्यानाह-

भोजयेत्पूर्वमतिथिकुमारव्याधितगर्भिणी-स्ववासिनीस्थविराञ्जघन्यांश्र्व ॥ २३ ॥

अतिथिर्वक्ष्यमाणः । कुमारा बालाः । व्याधितः संजातव्याविः । गर्भिण्यः पसिद्धाः । स्ववासिन्यो दुहितरो भागेन्यश्च । स्थविरा वृद्धाः । जघन्याः परिचा-रकाद्यः । एतानात्मनः पूर्वं भोजयेत्पश्चातःवयं भुर्ज्जीत । जघन्यानां पृथक्पदत्वं तेषामानन्तर्यसूचनार्थम् ॥ २३ ॥

आचार्यपितृसखीनां च निवेध वचनकिया ॥ २४ ॥

यदि भोजनकाल आचार्यादय आगच्छेयुस्तदा सिख्मनं तेभ्यो निवेद्य तदन्निया तदिच्छातः कर्तव्या । न तेषु सानिहितेषु स्वतन्त्रो भवेदित्यर्थः ॥२४॥

ऋत्विगाचार्यश्वज्ञारपितृब्यमातुलानामुषस्थाने मधुपर्कः ॥ २५ ॥ ऋत्विगादिषु गृहमागतेषु मधुपर्को देयः ॥ २५॥

संवत्सरे पुनः ॥ २६॥

पूजितास्ते यदि संवत्सरात्पुनरागच्छेयुः पुनरापे मधुपर्को देयो नार्वा-ागीते ॥ २६॥

यज्ञविवाहयारवांक् ॥ २०॥

संवत्सरादवींगापि यज्ञाविवाह ोरागतेभ्यस्तेभ्या मधुपर्को देयः । मधुपर्क विधिर्गृक्षोक्तो दृष्टन्यः ॥ २७ ॥

राज्ञश्च श्रोत्रियस्य ॥ २८॥

श्रोतियस्य सतो राज्ञश्चैवं मधुपर्को देयः॥ २८॥

अश्रोत्रियस्याऽऽसनोद्के ॥ २९ ॥

अश्रोतियस्य राज्ञ आसनोदकमात्रेण पूजनं मधुपर्कः ॥ २९ ॥ श्रोत्रियस्य तु पाद्यमर्घ्यमन्नाविशेषांश्च प्रकारयेत् ॥३०॥

तुरोब्दो न ब्राह्मणं व्यावर्तयति । श्रोतियस्य ब्राह्मणस्यातिथेः पाद्यं पादोदकम् । अर्घ्यं फलोपहारताम्बूलादि । अन्नविशेषाः पायसापूपादयस्तांश्च मकर्षेण कारयेत्समर्थः ॥ ३०॥

असमर्थस्तु—

नित्यं वा संस्कारविशिष्टम् ॥ ३१ ॥

यदस्य गृहे नित्यं विद्यमानं तदेव मरीचैजीरकादिसंस्कारविशिष्टं सावयेत् ॥ ३१॥

मध्यतोऽन्नदानमवैद्ये साधुवृत्ते ॥ ३२ ॥ यस्त्वतिथिर्विद्यारहितोऽिव साधुवृत्तो भवति वस्मिन्नुपास्थिते मध्यमेव संस्कारेणात्रं देयम् ॥ ३ २ ॥

> विपरीतेषु तृणोदकभूमिस्वागतम-न्ततः पूजाऽनत्याशरुच ॥ ३३॥

विपरीतां विशयुक्तांऽपि न साधुवृत्तः । तस्मिन्निहाऽऽस्यता।मिति भूमिं तृणमासनमुक्तं च दद्यात् । स्वागतमन्ततांऽनन्तरं स्वागतं च पयुङ्जीत । संभा-षणेन पूजा कर्तव्या । अनत्यादाश्च । अत्यादाः पायसापूपादिश्विदिष्टकमस्तद्नयो मध्यमरीत्या कर्तव्यः । आद्योऽद्यनमिति यावत् ॥ ३३ ॥

१ क. ख. घ. राब्देन ब्रा। २ क. ख. घ. चभर्जनादि । ३ क. ख. घ.

V.

श्य्यासनावसथानुबज्योपासनानि सद्दक्षेयमोः समानानि ॥ ३४ ॥

योऽतिथिविद्यावृत्तादिनाऽऽत्मना सहको यश्च श्रेयांस्तयोद्वेयोरप्यात्मना तुल्य।नि शय्यासनादीनि देयानि । आवसथो गृहे स्थानविशेषः । अनुवर्ज्यो-पासनयोरात्मन्यसंभवात्तुल्यत्वं न संभवति ते अपि कार्ये इत्यर्थः ॥ ३४ ॥

अल्पशोऽपि हीने ॥ ३५ ॥

आत्मना किंचिद् नेऽप्यतिथावागते समान्येव शय्यादीनि द्यानीत्येके। वयं तु त्रमः । हीनेअतिथावागतेऽल्पशोऽपि शय्यादीनि देयानि न तु हीन इति कृत्वाऽत्यन्तलोपः कर्तव्यः ॥ ३५ ॥

अतिथिलक्षणमाह-

असमानत्रामोऽतिथिरै रुरात्रिकोऽधिवृक्षसूर्योपस्थायी ॥ ३६ ॥ असमानग्रामोऽन्यग्रामवासी । ऐकरात्रिक एकां रात्रिं वसतित्यैकरात्रिक: । वृक्षाणामुपरि यदा सूर्यः सोऽधिवृक्षसूर्यः कालो मध्याहः । अथ वा वृक्षाणा नुपरि सूर्यरश्ययो यदा भवन्ति स कालः सायं वा । तस्मिन्काल उपास्थितोऽतिथिः सेर्वथा मान्यतमः ॥ ३६ ॥

कुशलानामयारोग्याणायनुप्रश्नः ॥ ३०॥

ब्राह्मणादिषु त्रिषु वर्णेषु पथ्यादिसंगतेषु कुश्रलादिनामानुपूर्वेण पशनः कर्तव्यः । अपि कुश्रस्रमायुष्मान्त्रिति ब्राह्मणः पष्टव्यः । अप्यनामयं तत्र भवत इति क्षत्त्रियः । अप्यरोगो भवानिति वैश्यः ॥ ३८ ॥

अन्त्यं जूद्रस्य ॥ ३८ ॥

कुशलादिषु यदन्त्यं तच्छूदस्य प्रयोक्तन्यमप्यरोगोऽसीति ३८॥ बाह्मणस्यानातिथिरबाह्मणः ॥ ३९ ॥

अबाह्मणः क्षत्त्रियादिबीह्मणस्यातिथिनं भवति । पूर्वोक्ता अतिथिधमस्तित्र न प्रयोज्याः । केवलमुद्कान्नदानादिनाऽङ्गीकार्यः ॥ ३९ ॥

यज्ञे संवृतश्चेत् ॥ ४० ॥

यज्ञकाल आहु(हू)तश्चेदातिथिवत्पूज्यः ॥ ४० ॥ तत्रापि –

भोजनं तु क्षत्त्रियस्योध्वं ब्राह्मणेभ्यः ॥ ४१ ॥
तस्यातिथिपक्षेऽपि ब्राह्मणेषु मुक्तवत्सु पश्चान्द्रोजनं देयम् ॥ ४१ ॥
अन्यान्भृत्यैः सहाऽऽनृशंस्यार्थमानृशंस्वार्थम् ॥ ४२ ॥
अन्यान्भृत्यैः सहाऽऽनृशंस्यार्थमानृशंस्वार्थम् ॥ ४२ ॥
अन्यान्भृत्यैः सहाऽऽनृशंस्यार्थमानृशंस्वार्थम् ॥ ४२ ॥
अन्यान्भृत्यैः वद्यापि तेषामतिथि वं न भवित तथाऽप्यानृशंस्यार्थम् । नृशं
सता प्रत्यक्षकीर्यं तद्याहित्याय । आनृशंस्यं परो धर्म इत्यानृशंस्यमपि परो धर्म
एवति (अभ्यासोऽध्यायसमाप्त्यर्थः)॥ ४२ ॥

इति श्रीगै तमीयवृत्तौ हरदत्ताविराचितायां मिताक्षरायां प्रथमप्रश्ने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ पष्ठोऽध्यायः ।

उक्ता तिथिपूजा । अन्येषामपि पूजापकारमाह -पदोपसंग्रहणं समवायेऽन्वहम् ॥ १ ॥ वक्ष्यमाणानां मात्रादीनां समवाये संगमे पतिदिनं पादोपसंग्रहणं कार्यम् ।

व्यत्यस्तपाणिना कार्यामिति पूर्वोक्तमकारेण ॥ १ ॥

अभिगम्य तु विश्राष्य । २ ॥

तुशब्दः पळतव्यावृत्तौ । विशोष्य स्वयं विभवासं छत्वा तेषां विभवासे वा ते मातृपित्रादयो यत्रः १०६१ यतास्तत्राभिगम्य पादोपसंग्रहणं कार्यामिति ॥२॥ तन्मातृपित्रादीनाह-

मातृपितृतद्धन्ध्रनां पूर्वजानां विद्यागुरूणां तद्गुरूणां च ॥३॥
मातापितरी पिसद्धौ । तद्दन्धवो मातुल्यातृष्वसृपितृष्यपितृष्वस्रादयः ।
पूर्वजा ज्येष्ठश्रातरः । विद्यागुरव आचार्योपाध्यायादयः । तद्गुरव आचार्यादयः ।
तद्दिषयं पूर्वसूत्रद्वयामिति ॥ ३ ॥

संनिपाते परस्य ॥ ४ ॥

मात्रादीनां युगपत्संनिपाते समागमे परस्योत्कष्टस्य प्रथममुपसंग्रहणं कार्यम् । आचार्यः श्रेष्ठो गुरूणां मातत्येक इंत्युत्कर्षः पूर्वोक्तः । आपस्तम्बैन तु—

आचार्यपाचार्यसंनिपाते पाचार्योपसंगृह्योपर्सजिघृक्षेदाचार्यामित्यादिनोपसंप-हणमुक्तम् ॥ ४ ॥

आभवादनविधिमाह-

À.

K

स्वनाम प्रोच्याहमयभित्यभिवादो ज्ञममवाये ॥ ५ ॥

यः पत्यभिवादनाभिज्ञस्तेन संगमे स्वनाम प्रोच्य ब्यावहारिकं प्रसिखं नाम प्रोच्याहमयामिन प्रकर्वेणोच्चैरुक्तवाठाभिवादः कार्यः । अभिवादोऽभिवादनं ण्यन्तादेरच् । एवं चांर्थज्ञानां ज्ञावरसमवायेऽभिवादनक्रमेणायमहामिति स्वनाम गुह्यं प्रोच्याभिवादनं कार्यम् । हीनैव्यितारिकाभिवाद्यविषयम् । तद्यथा—अभिवाद्ये हुग्दत्तदामी नामाहमस्मि भो इति । तत्र प्रत्यभिवादनविधिर्मनुना दिश्वतः—

आयुष्पान्भव सौम्येति वाच्यो विपोऽभिवादने ।

अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वीक्षरः प्लुतः ॥

अस्यार्थः । विषश्चन्देन ब्राह्मणविषयिषद्म् । अभिवाद्यिता विष आयु-ध्मान्भव सोम्येति वाच्यः । अस्य नाम्नोऽन्ते पूर्वाक्षरप्छतोऽकारश्च वाच्यः । पूर्वाक्षरप्छत इत्यकारस्य विशेषणम् । यस्मात्पूर्वमक्षरं प्छतस्वपं स तथोकः । अक्षरित्यचोऽभिधानम् । अकारात्पूर्वो योऽन्त्यः स प्छतो वाच्यः । तेन व्यञ्जन व्यवधानेऽपि भवति । आयुष्मान्भव सौम्य हरदत्ता ३ अ । व्यञ्जनव्यवधाने यथाऽऽयुष्मान्भव सौम्याग्निचि ३द । इति प्रयोगः ।

वसिष्ठस्तु संध्यक्षरे विशेषमाह-आमन्त्रिते योऽन्त्यः स्वरः स प्छवते संध्यक्षरमपगृर्समाहुः (इ) आउभावं चाऽऽपद्यत इति ।

ण्चोऽप्रगृह्यस्याद्राद्धृते पूर्वस्यार्धस्यादुत्तरस्येदुताविति वैयाकरणः ।

१ ग. इति पूर्वोक्तः क्रमः । आ० । २ ग. चार्थज्ञानात्यन्तवराणां स० । ३ ग. नवर्णातिरि । ४ ग. समाः । आत्र उभावं वा पठयत इ।

V

तत्रान्ते कारे पयुक्ते तये व्याविचि सांहितायापिति यकारवकारी । आयुष्मान्भव सौम्य पिनाकपाणा ३येति विष्णा ३वेति च पयोगः । अज्ञसमवाय इति पक्षे वायमभिवादनमकारः । तत्र स्पृत्यन्तरम्—

> आविद्वांसः पत्यभिवादे नाम्नो ये न प्लुतिं विदुः । कामं तेषु तु विपोष्य स्त्रीष्टियवायमहं वदेत् ॥ इति ।

यथा स्त्रीषूक्तमकारं विना तादात्मिकेन देशमाषादिना येन केनापि शब्दे नामिवादनं तद्दत्तेष्विष भवति । अभिवादनामिति सामान्योपलक्षणम् । पकारव-र्जितस्य स्त्रयादिपयुक्तस्याप्याभिधानात् । अभिवादनमकारे त्वापस्तम्बः-दिशणं बाहुं श्रोत्रसमं पसार्थं ब्राह्मणोऽभिवादयितोरःसमं राजन्यो मध्यसमं वैश्यो नीचैः शूदः पाञ्जिलिरिति ॥ ५॥

स्त्रीपुंयोगंऽभिवादतोऽनियममेके ॥ ६ ॥

स्त्रीपुंयोगे जायापितसमवायेऽभिवादतः सार्वभिभक्तिकस्तिः । अभिवादने माप्तेऽनियममेके मन्यन्ते । यद्यपि भर्ता प्रत्यभिवादज्ञस्तथाऽपि तद्भिवादने भार्याया नियमं नेच्छिन्त । अभिवादयेऽहिमयिमित्यादिक्रमो नियमस्तं नेच्छिन्ति । सामान्य मिवादनमात्रमेव । एवं च भार्यया भर्तुरहरहर्नमस्कारः कार्यः । एक इति वचना-द्रौतमस्य पक्षे नियम एव ॥ ६ ॥

नाविप्रोष्य स्त्रीणाममातृपितृब्यभार्याभागिनीनाम् ॥७॥

समवायेऽन्वहमित्यस्यापवादोऽयम् । मातृपितृव्यभार्याभागिनीव्यतिरिक्तानां स्त्रीणामविमोष्योपसंग्रहणमाभवादनं च न कार्यम् । किं तु विमोष्य प्रत्यागमन एव कार्यम् । मात्रादीनां त्वाविपाष्यापि प्रत्यहम् । तथाच स्मृत्यन्तरम् –

उपसंग्रहणं कुर्याद्भगिन्या मातुरव च । तथा पितृब्यभार्याणां सममायेऽन्वहं दिजः ॥ इति ॥ ७ ॥ नोपसंग्रहणं भ्रातृभार्याणां स्वेसृणाम् ॥ ८ ॥

विषोष्य प्रत्यागतेनाऽऽसामुपसंग्रहण न कार्यम् । अभिवादनं तु भवत्येव । तत्रात्यन्तगुरुस्थानीयानां मातुलान्यादीनामुपसंग्रहणमन्यासामभिवादनामीति ॥८॥

ऋत्विक्छ्वञ्चरपितृव्यमातुलानां तु यवीयसां प्रत्यु-त्थानमभिवाद्याः ॥ ९ ॥

ऋत्विगाद्गिनामात्मनो यवीयसां पत्युत्थानमात्रेण पूजा कार्या न पुनस्तेऽ-भिवाद्याः ॥ ९ ॥

तथाऽन्यः पूर्वः पौरोऽशीतिकावरः शृद्धोऽण्यपत्यसमेन ॥ १०॥ ऋतिगाइयो यथा पत्यत्थेया नाभिवाद्यास्तथाऽयमपि । अन्यस्तेभ्योऽन्यः। पूर्वी वयसाऽधिकः । पौरः पुरवासी । वयसाऽऽधिक्येऽपि पुरवासीदपकर्ष उकः । अशीतिरेवाशीतिका तयाऽवरोऽशीतिकावरैः । न्यूनाशीतिक इत्यर्थः । एवंविधः शूद्रोऽण्यपत्यसमेन पत्युत्थेयो नाभिवाद्यः । अपत्यसमेनेत्यन्तयवीयस्ता दर्शिता । शूद्रव्यहणमवरवणीपलक्षणम् । ततश्च शूद्र स्वाभिरिप वर्भे वैश्यो द्वाभ्यां क्षत्त्रियस्तु वाक्षणेनेति सिध्यति ॥ १०॥

अवरोऽप्यार्यः जूद्रेण ॥ ११ ॥

न्यूनाशीतिकेन श्रृद्रेणावराऽप्यायों यवीयानप्यार्यक्षेवाणिं कः पत्युत्थेयो नाभिवाद्यः । अत्रापि शूद्रग्रहणमवरवणीपछक्षणम् । ततश्च शूद्रेण त्रयो वर्णाः । वैश्येन द्वौ । क्षत्त्रियेण ब्राह्मण इत्यवरवयसः पत्युत्थेया नाभिवाद्या इति सिध्यति ॥ ११ ॥

नामं वाऽस्य वर्जयत् ॥ १२ ॥

अस्येत्यत्र वीप्सालोपः । अस्यास्योत्कृष्टोःकृष्टस्यापकृष्टो न नाम गृहणी-यात् । किं त्वौपचारिकं नाम गृहणीयात् ॥ १२ ॥

राज्ञश्चाजपः प्रेष्यः ॥ १३॥

अजपोऽश्रोत्रियः । पेष्यः पेषकरः । स उत्कृष्टवर्णो बाह्मणोऽपि राज्ञोऽ-भिषकस्य नाम वर्जयेत् ॥ ३३ ॥

भो भवन्निति वयस्यः स्मानेऽहनि जातः॥ १४॥

वयसा तुल्यो वयस्यः । समानेऽहानि जातः । अत्राहःशब्दः संवत्सरः वाचकः । एकस्मिन्संवत्सरे जातः स भो भवन्तित्यनयोरन्यतरेण शब्देन संभाष्यः ॥ १४॥

१ कः स्व. घः धिकोऽपि । २ गः सादपक्ठष्ट उ । ३ गः रः । अन्यू । ४ गः म चास्य ।

दशवर्षवृद्धः पौरः पञ्चिभः कलांभरः श्रोत्रियरचारणश्चिभिः॥ १५॥

पुरे वसन्गुणहीनो दशवर्षवृद्धश्च तत्रापि कछ।भरश्चतु षष्टिकछास्वन्यतमया जीवन्पर्श्वाभिवेषेँर्वृद्धश्च । श्रोत्रियोऽधीतवेदः । चारणः सहाध्यायी । एतं सर्वेऽपि भी भवन्त्रिति संभाष्याः । आपस्तम्बस्तु सर्वत्राभिवादनाभिच्छति –

द्शवर्षं पौरसरूयं पञ्चवर्षं तु चारणम् । त्रिवर्षपूर्वः श्रोत्रियोऽभिवादनमर्हति ॥ इति ॥ १५ ॥ राजन्यवैद्यकमां विद्याहीनाः ॥ १६ ॥

कर्मशब्दः पत्येकमभिसंबध्यते । राजन्यकर्मा वैश्यकर्मा । ब्राह्मणोऽपि राज-न्यक्रमणा वैश्यकर्मणा वा जीवन्नत्यन्तवृद्धोऽपि भो भवन्तिति संभाष्यः । विद्या-इनिश्च वृद्धोऽपि विद्याधिकेन तथा भाष्यः ॥ १६॥

द्धि क्षेत्रच प्रांकक्यात्॥ १५॥

वयस्यविषयमिदम् । दीक्षितश्च वयस्यः सोमकातपूर्वं तथा भाष्यः । तः भरं वृद्धवन्म न्यः । उत्तमाश्रमविषय उशना—श्रोत्रियवत्माशितः सर्वेषां गुरुर्भे वनीति ॥ १७ ॥

वित्तबन्धुकर्भजातिविधावयांसि मान्यानि पर्वलीयांसि ॥ १८ ॥

वित्तादीनां साक्षान्मान्यत्वासंभवात्तद्वन्तो मान्या इत्युपलक्ष्यन्ते । वित्त-वानाढ्यः । बन्धुमान्विशिष्टेः सोद्यादिभिर्युक्तः । कर्मवान्यथोककर्मकारी । जातिमानभिजनयुक्तः । विद्यावानधीतवेदशास्तः । वयस्वान्वयसाऽधिकः । एता-दशौ अताद्दशैर्मान्याः । परस्परसमयाये तु परः परो बलीयान्मथममान्यः । मान्ते-ऽभिवादनादिसंमानः ॥ १८ ॥

श्रुतं तु सर्वेभ्यो गरीयः ॥ १९॥

श्रुतं मन्त्रबास्नणविभागेन वेदार्थपरिज्ञानम्। तत्सर्वेभ्यो वित्तादिभ्यो गरीयो गुरुतरम्। पूर्वसूत्रे परवलीयांसीति श्रुषायपरमुपन्यसः तद्व्यावृत्त्यर्थे पृथकसूत्रम् ॥ १९ ॥

³ ग. लाघरः । २ क. ख. घ. चाविहाः ३ क. ख. घ. च. च. भाग्नूयातः ४ ग. रं द्रव्यव । ५ क. ख, घ. ङ. च सि सामा । ६क. ख. घ. शा एता । ७ क. ख. घ, श्रुतं प ।

कुतः पुनः श्रुतं सर्वेभ्यो गरीय इत्यत आह-तन्मूलत्वाद्धर्यस्य श्रुतश्च ॥ २० ॥

श्रुतमूलमनुष्ठानमनुष्ठानमूलो धर्म इति श्रुतेश्वाप्यनुच्छिनसंपदायो मूलम् । तस्माछ्रुतस्य गरीयस्त्वम् । श्रुतस्य गरीयस्त्वं छान्दोग्ये प्रतिपादितम् - त्रासणं शैशवं मवि शिशुर्वे आङ्गिरसो मन्त्रकतां मन्त्रकदासीदिति । मनुराप-

अध्यापवामास पितृ ज्ञिश्वशुरााङ्गिरसः कविः । पुत्रका इति हावाच ज्ञानेन परिगृह्य तान् ॥ इति ॥ ० ॥ चिकदशमीस्थानुत्राह्यवधूरुनातकराजभ्यः

पथो दानम् ॥ २१ ॥

चाकि चकवच्छकटादि । तत्स्थश्रकिःथः । दशम्यां दशायां स्थितो दश-मिस्थो वृद्धः अनुम्राह्मो रोगार्तः । वधूर्गिभिणी स्नातको विद्यात्रतस्नातः । राजाऽभिषिकः । पार्थ संगम एतेभ्योऽन्यैः पन्था देयः ॥ २ १ ॥

तत्र विशेष: -

राज्ञा तु श्रोत्रियाय श्रोत्रियाय ॥ २२ ॥ श्रोतियसमागमे राज्ञैव पन्था देयः। अभ्यासोऽध्यायसमाप्त्यर्थः ॥२२॥ इति श्रीगौतमीयवृत्तौ हरदत्तविरचितायां मिताक्षरायां प्रश्नमप्रश्ने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः।

श्रुतं तु सर्वेभ्यों गरीय इति विद्यापाधान्यमुक्तम् । सा विद्या बासणाद-धिगन्तव्येति प्रथमः कल्पः । तद्भावे विद्याया अवश्याधिगन्तव्यत्वादापत्कल्प-माह-

आपत्कल्पो बाह्मणस्याबाह्मणाद्विद्योपयोगैः । १ ॥ अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः । पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या सेताश्रतुर्दशः ॥

१ क, ख, घ, छ तद्धीनं श्रुत ।

उपयोगो नियमपूर्वकं ग्रहणम् । अब्राह्मणः क्षत्त्रिया वैश्यश्च तस्मा-द्ब्राह्मणेन विद्योपयोगः कार्यः स आपत्कलप । आपद्विधिक्रीह्मणस्यत्युपलक्षणम् । तेन क्षत्त्रियेणापि वैश्याद्विद्योपयोगः कार्य इति सिध्यति । आपत्कलप इत्यध्या-यपरिसमाप्तेरैधिकियते ॥ १ ॥

अनुगमनं शुश्रूषा ॥ २ ॥

तत्र यावद्ध्ययनकालमनुगमनमेव शुश्रूषा नान्यत्पाद्संवाहनादि ,। २ ॥ समाप्ते बाह्मणो गुरुः ॥ ३ ॥

समाप्ते त्वध्ययने ब्राह्मण एव गुरुः ॥ ३ ॥

याजनाध्यापनप्रतिश्रहाः सर्वेषाम् ॥ ४ ॥

याजनादयो ब्राह्मणस्य वृत्तयस्ता आपदि सर्वेषामनुज्ञायन्ते न तु ब्राह्म.
णस्यैनेति । अपर आह-आपदि सर्वे याजयितव्याः सर्वेऽध्याप्याः सर्वेतश्च
प्रतियासं न तु गर्हादोष्रोऽस्तीति । तथा च मनुः –

नाध्यापनाद्याजनादा गहिंतादा प्रतिब्रहात् । पोषो भवति विपाणां ज्वलनाम्बुसमो हि सः॥ इति ॥४॥

पूर्वः पूर्वो गुरुः ॥ ५ ॥

एतेषां याजनादीनां यो यः पूर्वनिर्दिष्टः स स उत्तरस्मादगुरुर्ज्ञेयः । आपदि पतिम्रहेण जीवेत्तदसंभवेऽध्याषनेन तदसंभवे याजनेनेति ॥ ५ ॥

तद्लाभे क्षत्त्रवृत्तिः ॥ ६ ॥

इदं त्रासणाविषयम् । गर्हितयाजनादेरप्यस्राभे क्षत्तवृत्तिः स्यात् । त्रासणः सेवादिना जीवेत् । आपादे निवृतायां नारदः—

आपदं ब्राह्मणस्तित्वी क्षत्त्रवृत्त्या भृते जने । उत्मुजत्क्षात्रवृत्तिं तां कृत्वा पावनमात्मनः ॥ इति ॥ ६ ॥

तदलामे वैश्यवृत्तिः॥ ७॥

क्षत्तवृत्तेरप्यलाभे वैश्यवृत्त्वाऽपि जीवेट्बासणः। अलाभग्रहणं वृत्तिसंकरो मा भादिति । क्षत्तियस्य वैश्यवृत्त्युपजीवनं दण्डापूपन्यायेन सिद्धम् ॥ ७ ॥

तस्यापण्यम् ॥ ८ ॥ 🖰

तस्य वैश्यवृत्तेर्ज्ञास्रणस्यापण्येन विक्रयं वक्ष्यते । तरयोति वर्चनात्क्षात्त्रयस्य वैश्यवृत्रयुपजािवनो वश्यमाणमः एयं न भवति ॥ ८ ॥

ा गन्धरसक्रतात्रातिलञ्जाणक्षामाजिनानि ॥ ९ ॥ 🔧 🚈

गन्धश्रन्दनादिः । रसस्तैलघृतलवणगुडादिः । कतान्तं मोदकाप्पादिः। तिलाः परिदाः । शाणं शणाविकारो गोण्यादिः । क्षौमं क्षमोद्भूतं पट्टवस्र विशेष: । आजिनं चर्म कटादि । एतान्याविकयाणि । शाणक्षौमयोर्विकारानिष-धात्मकतरमतिषेधः ॥ ९ ॥

- रक्तनिर्णिक्ते वाससी ॥ ३० ॥

रकं लाक्षादिना विकतम् । निार्णिकं रजकादिना धौतम् । एवंभूते अपि वाससी अपण्ये ॥ १० ॥

क्षरिं सविकारम् ॥,५० ॥ 🔻 🛂 🦠

दृष्यादिभिार्विकारैः सह क्षीरमपण्यम् ॥ ११ ॥

म्लफलपुष्पौषधमधुमांसतृणोद्कापथ्यानि ॥१२॥

मूलमाईकहरिदादि । फलं पूगादि । पुष्पं चम्पकादि । औषधं पिष्प-ल्यादि । मधु माक्षिकम् । मांसतृणोदकानि प्रसिद्धानि । अपथ्यं विषादि । एता-न्यपण्यानि । रसशब्देन पूर्वमेव निषिद्धेअपि पुनमधुम्रहणं सर्वथा वृत्तिरशकावि त्यादिपक्षे निषेधार्थम् ॥ १२ ॥

पश्वक्च हिंसासंयोगे ॥ १३ ।

पश्चवोऽजादयः । हिंसासंयोगे सौनिकादिभ्यो हिंसार्थे न विकेषाः ॥१३॥ पुरुषवशाकुमारीवेहतश्च नित्यम् ॥ १४ ॥

पुरुषा दासादयः । वद्या वन्ध्या गीः । कुमारी वत्सतरो । वेहदुर्भोपञ्चा-तिनी । एते नित्यमपण्याः । नित्यमित्युक्तत्वार्षिंसासंयोगादन्यत्रापि निषेधः । अपर आह-इह नित्यग्रहणात्पूर्वेषु तिलादिष्वनित्यः मौतिषेषं इति । तत्र वसिष्ठ:-

कामं वा स्वयमुत्पाद्य तिलान्विकीणीरन् । इति ।। १४ ॥

१ ग. णं पायश्चित्तगौरवार्थम् ।

भूमिनीहियवोजाच्यश्वक्रिषभधेन्वनडुहश्चेके ॥ १५ ॥
भूमिर्गृहम् । नीहियवाजाव्यश्वाः प्रसिद्धाः । कष्मैः सेचनसमर्थो गौः ।
धेनुः सक्रत्मसूता । अनड्वाननोवाहनयोग्यो बलीवरिः । एतं चापण्यो इत्येकं
मन्यन्ते । एकशब्दाद्वयं त्व्रनुजानीमः । अत्राण्डिजाविग्रहणं हिंसासंयोगविषयपरम्
॥ १५॥

भ्राक्ति विश्वास के **नियमस्तु ॥ अद्यो**ग राज्या विश्वासी विश्वासी

ि नियमो विनिमयः परिवर्तनं तुशब्देन नियमोऽनुज्ञायत इति ॥ १६ ॥ ि रसानां रसेः ॥१७॥

तेल्रघृतगुडादीनां रसेरेव विनिमयः कार्यकी तद्यथा— तैल्लं दत्त्वा घृतं ग्राह्ममिति रसे: समतो हीनतो वेति वसिष्ठः ॥ ३७॥ पञ्चानां च ॥१८॥

पश्नां चुष्पदां पशुभि वैनियमः कार्यः । १८॥

न लवणकृतात्रयोः ॥ १९ ॥ अवणस्य कृतात्रसः च विनिमपोऽपि प्रतिषिदः ॥ १९ ॥

ितिलानां च ॥ २०॥

तिलानां च् विनिमयो न कार्यः । लवणकतान्त्रतिलानां दृव्यान्तरस्वीका-रेण पदानं निषिद्धम् । समानद्रव्यविषये पवृत्त्यसंभवात् ॥ • ० ॥

समेनाऽऽमेन तु पक्वस्य संप्रत्यर्थे ॥ २ १ ॥

समेन समपारिमाणेना ऽऽमेन तण्डु होन संप्रत्यर्थे ता शात्मिकोपयोगार्थे पक्वा-नस्य नियमः कार्यः । मनुस्तु तिल्लं धान्येन तत्समा इति समेन धान्येन विलानां नियममनुजानाति । अपण्यमिति विक्रयनिषधात्सर्यत्र यावदुपयोगकये निषधो न स्यात् । रसोदीनामपि नियमशब्देन पदानमेव विवक्षितम् । अन्यथा त्वविद्यमानेनं रसान्तरादेदिव्याण्यावृत्त्यसंभवात् ॥ २०॥

> सर्वथां वृत्तिरशक्तावशौद्रेण ॥ २२ ॥ उक्तेन प्रकारण कुटुम्बधारणस्यासंभवोऽशक्तिः । तस्यां सर्वां सर्वथा

१ ग. धात्तत्रापि,यत्र याब्दुपयुक्तं निषेधा नास्ति । र । २ ग. न रसा-न्तराद्दिद्व्यस्य प्रवृ । ३ क. ख. घ. थाऽनुवृ ।

वृत्तिः । प्रकारवचने थाल् , उक्तेन सर्वप्रकारण निषिद्धनापि जावेत् । तत्रापि न शौद्रेण कर्मणा जीवेदिति ॥ २२ ॥

तद्प्येके प्राणसंशये॥ २३॥

एके त्वाचार्याः प्राणसंशये सति तद्पि शोदं कर्माप्यनुमन्यन्ते । यथाऽऽह व्यासः-

धर्मार्थकाममोक्षाणां पाणाः संस्थितिहेतवः । तानिच्नता किं न हतं रक्षता किं न रक्षितम् ॥ इति ॥२३॥ तद्वर्णसंकराभक्ष्यनियमस्तु ॥ २४

नियमो वर्णनम् । शूद्रवृत्तिस्थिननापि ब्राह्मणेन तेन शृद्रवर्णेन सहाऽऽस नाङ्ग-सँमेलनादिः संकरः। अभक्ष्यं च लगुनादि । तदुभयवर्जनं कर्तव्यं न तु शूद्रवृत्तिरस्माति यथाकाम्यमिति ॥ २४ ॥

प्राणसंशये बाह्मणोऽपि शस्त्रमाददीत ॥ २५॥

पाणसैराये सति ब्राह्मणोऽपि रक्षार्थ दास्त्रमाद्दीत । तद्छाभे क्षत्त्रवृत्ति । रिति शस्त्रग्रहण सिद्धे पुनरुपादानं ब्राह्मणवृत्तेः सतीऽप्यानिषेधार्थम् । अपिश-ब्दार्कि पुनर्वेश्यशूद्रौ ॥ २५ ॥

राजन्योः वैद्यकर्मः [वैद्यकर्मः ॥ हिद्या

अपि अभागसंदाये राजन्ये वैश्यकर्माऽऽद्दीतः। तेनाऽऽत्मानं रक्षेत् (अभ्यासोऽ* ध्यायसमाप्त्यर्थः) ॥ २ २ ॥

इति श्रीगैतिमीयवृत्ती हरदत्तविरचितायां मिताक्षरायां प्रथमप्रश्ने सप्तमाऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्ट्रमोऽध्यायः ।

आपद्वृत्तिमाश्रितो यदि तत्रैव रमेत केनासौ निवार्यत इत्याह-द्वी लोके धृतवती राजा ब्राह्मणश्च बहुश्रुतः ॥ १॥

लोको राष्ट्रम् । वीप्सालोश्यात्र द्रष्टव्यः । लोके लोक धृतवतौ वतानां कर्मणां धारायितारी द्वी राजा बहुश्रुतश्च त्राह्मणः । तौ सर्वस्य सर्वापदो दण्डो -५ देशाभ्यां निवासियतारो ॥ १ ।

तयोश्चतुर्विधस्य मनुष्यजातस्यान्तःसंज्ञानां चलन-पतनसर्पणानामायत्तं जीवनम् ॥ २ ॥

च ुर्विधस्य मनुष्यजातस्य चातुर्विण्यस्यान्तरमभा(भ)वास्त्वनुरुगेमाद्यस्त-न्मूल्यातपृथङ्नोक्ताः । अन्तःसंज्ञा वृक्षाद्यः स्थावरा वृद्धिक्षयवन्तः । येषामः न्तःसंज्ञा न बहिस्ते तथोक्ताः ।

तमर्सा बहुरूपेण चेष्टिताः कर्महेतुना । अन्तःसंज्ञा भवन्तथेते समदुःखसमन्विताः ॥ इति ।

चलनाः पश्चादयः । पतनाः पक्षिणः । सर्पणाः सरीमृपा भुजगादयः ।
एषां मनुष्यादीनां जीवनं तयो राजबासणयारायत्तं तदधीनम् । राजा तु
परिपन्थिनिग्रहादिना तेषां जीवनहेतुः । इतरस्तु कथं बहुश्चत इत्यत आह—

अग्नी पास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपातिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरचं ततः पजाः ॥ इत्यादिन्यायेन जीवने हेतुः ॥ २ ॥ न च जीवनमात्रमेव तद्धीनं किं तर्हि—

प्रस्तिरक्षणमसंकरो धर्मः ॥ ३॥

पस्तिरभिवृद्धि । दण्डोपदेशाभ्यां यथोक्तकारितया वृष्टचादिद्वारेण रोगा द्युपदवशान्त्या चाामिवृद्धिर्भवाति । चोरिनग्रहादक्षणमपि । दण्डमायश्चिकोपदे-शाभ्यां भवति वर्णानामसंकरोऽसंमेलनमपि । विहितोपदेशात्मतिषिद्धसेवायां दण्ड-धारणाच्च धर्मोऽपि भवति । एतत्सर्वं तयोरायक्तम् ॥ ३ ॥

बहुश्रृत इत्युक्तं मतिपाद्यति-

स एव (प) बहुश्रुतो भवति ॥ ४ ॥

स एष इति वक्ष्यमाणानिर्देशः ॥ ४ ॥

लोकवेदवेदाङ्गवित्॥ ५॥

छोकशब्देन छोकव्यवहारासिद्धा जनपदादिधर्मा उच्यन्ते । तेषां वेदाश्चत्वार ऋग्यजुःसामाथर्वाणः । अङ्गानि षट् । व्याकरणं शिक्षा छन्दो ज्योति । वेषां वेत्ता पाठतोऽर्थतश्च ॥ ५ ॥

वाकोवाक्योतिहासपुराणकुशलः ॥ ६ ॥

विद्यास्त्रोपयोगीनि तर्कोकिमत्युक्तिस्त्पाणि वाक्यानि । यथा महाभारते-कः स्विदेकाकीः चरति सूर्य एकाकी चरतित्यादीनि वाकोवाक्यम् । भारतरामायः णादीनीतिहासः । पुराणं विष्णुपुराणाशिवपुराणाद्यष्ठादशाविधम् । तेषु कुश्रस् समर्थः ॥ ६ ॥

तद्पेक्षस्तद्वात्तः॥ ७ ॥

यान्येतानि लोकादीन्यनूक्तानि तान्यपेक्षत इति । तद्वृत्तिस्तदाभिहिताना कर्मणोमनुष्ठाता ॥ ७ ॥

चत्वारिंशत्संस्कारैः संस्कृतः ॥ ८ ॥

ं कारू**चरवारिंशत्संस्कारा गर्भाधानादयो वक्ष्यन्ते । तैः संस्कृतः ॥ ८**ो॥ कार्यः

त्रिषु कर्भस्वभिरतः॥ ९॥

इंज्याध्ययनदानानि त्रीणि कर्माणि । तेष्वभिरतः । तेषां सातत्येनानुष्ठाता । तद्वात्तिरित्यनेनैव सिद्धे पुनर्वचनमतिदाढर्चार्थम् ॥ ९ ॥

षद्सु वा ॥ १०॥

याजनाध्यापनपतिग्रहेः सह षट् कर्नाणि तेष्वभिरतः। वाशक्देन पूर्वाकेष् नियमः ॥ १०॥

सामयाचारिकेष्वभिविनीतः ॥ ११ ॥

पौरुषेयी व्यवस्था समय: । तन्मूला आचाराः समयाचारास्तेषु भवाः सामयाचारिकाः स्मार्ता धर्मास्तेष्वभिविनीतः पित्रादिभिः सम्यक्त्रिक्षितः ॥११॥

सं एवं रूपो ब्राह्मण:-

षट्भिः परिहार्यो राज्ञा ॥ १२ ॥

षड्भिर्वक्ष्यमाणैर्वधादिभिः परिहार्यो राज्ञा भवति । परिहारो वर्जनम् 11 92 11

तान्वधा तीनाह-

अवध्यश्चाबन्ध्यर्चादण्डचरचाबहिष्कार्यर्चाप-रिवाद्यक्चापारिहार्यक्चेति ॥ १६ ॥

९ ग. न्यनुकान्तानि । २ क. ख. घ. मधिष्ठा । ६ क. ख. घ. विद्याष्य । ४ क. घ, नाधिष्ठा।

11 5 1

वधस्ताडनम् । बन्धो निगडनम् । दण्डोऽधीपहारः विविद्यक्तारो ग्रामादिभ्यो निरसनम् । परिवादो देशसंकितिनम् । परिहारस्त्यागः । पडेति वधादय एवंभूते बहुश्रुते बासणे सत्यनुि पूर्वापराधि राज्ञा वज्योः । बुद्धिपूर्वस्य तु पसङ्ग्रामावात् । इतिशब्दः पकारवचने । यज्ञान्यदेवंरूपसंभाषादि तदिष वज्यीमाते ॥ १ ३॥

चत्वारिंगत्संस्कारैरित्युक्तं तानाह-

गर्भाध(नपुंसवनसीयन्तोन्नयनजातकर्मनामकरणा-न्नप्राज्ञनचौलोपनयनम् ॥ १४॥

समाहारद्वंदः । गर्भाधानमृतावृषेयादित्यादिकालनियमेन सूत्रकारोकावि धानानिषेकः । गर्भाधानाद्यः संस्कारास्तत्त्वद्गृह्येषूक्ताः । इहं तु संस्कारगणनार्थं स्वरूपनिर्देशमात्रं कृतम् ॥ १४ ॥

चत्वारि वेदवतानि॥ १५॥ वर्षा

एतानि मतिवेदं पतिशाखं च गृह्येषूकानि ॥ १५ ॥ स्नानं सहधर्मचारिणीसयोगः॥ १६॥

स्नानं समावर्तनम् । सहधर्मचारिणीसंयागो विवाहः ॥ १६ ॥

पञ्चानां यज्ञानामनुष्ठानं देवपितृमनुष्यभूत-ब्रह्मणाम् ॥ ७ ॥

पश्चानां द्वानां यज्ञास्तेषामनुष्ठानम् । एतत्पश्चमहायज्ञानुष्ठानमहरहः कर्तव्यम् । न तु सक्तकृतेन संस्कारसिद्धिः । पश्चमहणात्पश्चेते प्रथक्संस्कारा न पुनः समुदितः एकः संस्कारः ॥ १७॥

एतेषां च ॥ ३८॥

वक्ष्यमाणानामष्टकादीनां च पाकयज्ञानामनुष्ठानं संस्कार इति ॥१८॥ तानाह -

अष्टका पार्वणः श्राद्धं श्रावण्याग्रहायणी चेत्र्याश्वयुजीति सप्त पाकयज्ञसंस्थाः॥ १९॥

ऊर्ध्वनायहायण्यास्त्रयोऽपरपशास्तव्वेकैकस्मिनेकाऽष्टकाः भवत्।ति च्छः -न्दोगाः । हेमन्तिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमविष्टक्केकस्यां चेत्याथः लायनः । या माध्याः पौर्णमास्या उपरिष्ठान्मध्याष्टेका तस्यामष्टमी ज्येष्ठया संपद्यते । तामेकाष्टकेत्याचक्षत इत्यापस्तम्बः । एवंभूताऽष्टका । पवैणि भवः स्थालीपाकः पार्वणः । आदं मासि आदम् । आवणां सपैवादः । आवण्यां पौर्णमास्यामस्त-पित स्थालीपाक इत्यापस्तम्बः । आयहायणी मार्गशिष्यां पौर्णमास्यामस्त-पित स्थालीपाक इत्यापस्तम्बः । आयहायणी मार्गशिष्यां पौर्णमास्यां कियमाणः सपैविष्ठिरुत्सर्गहोमः । हमन्ते पत्यवरोहणाख्यं च कर्मोऽऽयहायणीश्वब्देनोच्यते । विश्वी शुल्यवः । ईशानविलिरित्यापस्तम्बीयानां प्रसिद्धः स चैत्र्यां पौर्णमास्यां भवति । अथ गूल्यवः शर्मदे वसन्ते चेत्याश्वलायनः । आश्वयुणीं रुद्धाय स इति च्छन्दोगाः । आश्वयुण्यां पौर्णमास्यां तत्कर्मानिवेशनमलक्त्यं स्नाताः श्रुचि-वाससः पशुपतये स्थालीपाकं निरुप्य जुहुयुरित्याश्वलायनः । अनाहिताश्वराय-यणमि तत्रैवं भवति । तदिदं इयमाश्वयुजीशब्देन विविश्वरम् । पाक्यज्ञ इति गार्साणां कर्मणामाख्या । यथाऽऽहाऽऽपस्तम्ब लोकिकानां पाक्यज्ञशब्द इति । संस्थाविधाः पाक्यज्ञविधाः सप्तेत्यर्थः ॥ १ ।॥

अग्न्याधेयमासिहोत्रं दर्शपूर्णमासावात्रयणं चातुर्मास्यानि निरुद्धपञ्जबन्धः सौत्रामणीति

सप्त हाविर्यज्ञसंस्थाः॥ २०॥

अग्न्याधेयादयः श्रुतिसिद्धः संस्कारेषु गण्यन्ते । सप्तग्रहणादृर्शपूर्णमासाँ समुदायतयेकः संस्कारंः । सोमसंबन्धाभावाद्धवियज्ञा इति ॥ २० ॥ अभिष्टोमोऽत्याभ्रष्टोम उक्थ्यः षोडशी वाजपेयोऽतिरात्रोऽप्तोर्याम इति सप्त सो-मसंस्थाः ॥ २१ ॥

अभिष्टोमो राजन्यस्य । षोडाँराग्रहो गृह्यते यत्र सोऽत्यभिष्टोमः । बाह्य-णस्य कथमयं संस्कार इति चिन्त्यम् । अन्ये मसिद्धाः ॥ २१ ॥ इत्येते चत्वारिंशृत्संस्काराः ॥ २२ ॥

इत्युक्तोपसंहारः । चत्वारिंशद्ग्रहण'देव तावन्त एव संस्काराः । नान्यानि स्मार्तकर्माणि काम्यादीनि चेति ॥ २२ ॥

१ ग. ष्टकास्तस्याममी ज्ये । २ ग. आहि । ३ ग. व न म । ४ ग. रः। मौनवन्धाभा ।

अथाद्यावात्मगुणाः ॥ २३॥

वक्ष्यन्त इति शेषः । अथशब्दः समावनायाम् ॥ २३ ॥ द्या सर्वभूतेषु क्षान्तिरनस्या शौचमनायासो मङ्गलमकार्पण्यमस्पृहेति ॥ २४ ॥ आत्मवत्सर्वभूतेषु यद्धिताय शिवाय च । वर्तते सततं हष्टः कत्स्ना होषा दया समृता ॥ १ ॥ आकृष्टोऽभिहतो वाऽपि न कोरोन्न च ताडयेत्। अदुष्टो वाड्यनःकायैः सा तितिक्षा क्षमा समृता ॥ २ ॥ ो यो धर्ममर्थं कामं च लभते मोक्षमेव च । न दिष्यातं सदा पाज्ञः साऽनसुया स्मृता बुधै. ३॥ द्रव्यशोचं मनःशौचं वाचिकं कायिकं तथा। शौचं चतुर्वधं पोक्तमृषिभिस्तत्त्वद्शिभि: ॥ ४ ॥ यदारम्भे भवेत्शीडा नित्यमैत्यन्तमात्मनः । तद्वर्जथेद्धर्म्यमपि सोऽनायासः गकीर्तितः॥ ५ ॥ पशस्ताचरणं नित्यमपशस्ताविवर्जनम् । एति मझन्छै पोक्तं मुनिभिस्तत्त्वदादीभिः ॥ ६ ।। ्आपद्यपि च कष्टायां भवेद्दिनो न कस्यचित् । संविभागरुचिश्व स्यात्तदकार्पण्यमुच्यते ॥ ७ ॥ विवर्जयेदसंतोषं विषयेषुं सदा नरः। परद्रव्यामिलाषं च साऽस्पृहा कथ्यते बुधैः ॥ ८ ॥

इत्युक्तपकारेणाष्टावात्मगुणाः ॥ २ ४ ।।

एषामुत्कर्षमाह -

यस्यैते चत्वारिंशत्संस्कारा न चाष्टावात्मगुणा न स् स ब्रह्मणः सायुज्यं सालोक्यं गच्छति ॥ २५॥

सालोक्यं समानलोकवासित्वम् । एकदेशसयोगात्सालोक्यं समस्तयोगात्सा-युज्यामिति ॥ २५ ॥

यस्य तु खलु संस्काराणामेकदेशोऽप्यष्टावात्मगुणा अथ स ब्रह्मेणः सायुज्यं सालोक्यं च गच्छति ं (गच्छति)॥ २६॥

तुशब्दो विशेषवाची । खलु शब्दः पसिखौ । यस्य चत्वारिंशत्संस्कारेषु द्विजत्वमूलकतिपयसंस्कारसंबन्धेऽप्यष्टावात्मगुणाः सन्ति । अथ राब्दो निर्धारणे बैह्मणः सायुज्यं सालोक्यं च गच्छत्वेव (अभ्यासोऽध्यायसमाप्त्यर्थः)। इति श्रीगौतमीयवृत्तौ हरदत्तविरचितायां मिताक्षरायां प्रथमप्रश्नेऽष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

अथ नवनोऽध्यायः।

स विधिपूर्वकं स्नात्वा भार्यामधिगम्य यथोक्तान्गृहस्थधर्भान्त्रयुञ्जान इमानि वतान्यनुकर्षेत् ॥ १ ॥

तच्छब्देन पूर्वीध्यायोक्तराजा ब्राह्मणश्च परामृश्यते । वैश्यस्य तु स्नातक-विषये विशेषं वक्ष्यति । विधिपूर्वे विधिं पुरस्कृत्य स्नात्वा वेद्वतानि पारं नीत्वां समावर्तनं कत्वा भार्यामाधगम्य विवाहं कत्वा तदनन्तरं यथोकानातिथियुजााद गृहस्थधमीननुतिष्ठिनिमान्यपि वक्ष्यमाणानि वतान्यनुकैर्षेत् । आत्मानं पापयेदनुति-ष्ठेदिति ॥ १ ॥

स्नातकः ॥ २॥

चलोपो दृष्टन्यः । स्नातकश्चेतानि गृहस्थनतान्यनुतिष्ठेत् । नसचर्यानिवृ त्तत्वाद्गाईस्थ्यव्यातिरिकाश्रमान्तराभावाच्च भायाधिगमाद्ध्वीमिति पूर्वसूत्रमारब्धम् स्नातकस्य तु भार्याधिगमासंभवे यावज्जीवं गृहस्थयमां एवानुष्ठेया इति सूत्रान्त-रमारब्धम् । एतच्च राजब्राह्मणयोरेव स्नातकवतानुष्टानं तद्तिक्रमे पायश्चित्तं च विधीयते । तथा च स्मृत्यन्तरम् —राजब्रासणयोरेव नेतरेषां कथंचनेति ॥२॥

कानि पुनस्तानि वतानि-

१ क. ख. ग. ब्रालणः । २ क. ख. ग. ब्राह्णः । ३ ङ. च. नुकूर्यात् ।

- P

नित्यं ग्राचिः सुगन्धिः स्नानशिलः ॥ ३ ॥

आचमनादिना नित्यं शुचिः शक्तिविषये न मुहूर्तमप्यप्रयतः स्यात् । सुगन्धिश्रन्दनाद्यनुलिप्तेन सुरभिताङ्गः । यद्वा गन्धः शीठं सुश्रीलः स्यादिति । स्निमिशीलो नित्यस्नायी स्यात् । अत्र स्नातकविषये वसिष्ठः –

स्नातकानां तु तित्यं स्यादन्तर्वासस्तथोत्तरम् ।

यज्ञीपवीते देः यष्टिः सोद्कश्च कमण्डलुः ॥ इति ।

मनु:-

वैणवीं धारयेद्यार्धः सोदकं च कमण्डलुम् । यज्ञोपवीतं वेदं च शुभे रौक्मे च कुण्डले ॥ इति ।

वेदो दर्भमुष्टिः ॥ ३ ॥

साति विभवे न जीर्णमलबद्दासाः स्यात् ॥ ४ ॥ विभवेऽन्यस्य संभवे साति जीर्णं मलवच्च वासो न धारयेत् ॥४॥

न रक्तमुल्वणमन्यधृतं वासो विभृयात् ॥ ५ ॥

कुसुम्भादिरागमुक्तमुल्बणं बहुमूल्यमन्यधृतं गुरुवर्जमन्यैः पूर्वधृतमेवंविधानि वासांसि न यारयेत् । सति विभव इत्यनुवर्तते ॥ ५ ॥

न स्रगुपानहै। ॥ ६॥

स्नगुपानहावण्यन्यधृते न धारयेत् ॥ ६ ॥ निर्णिक्तमशक्तौ ॥ ७ ॥.

अन्यस्यासाभोऽशक्तिः । अशकावन्यधृतं वासः स्रगुपानहो च निार्णाज्य धारयेत् । तत्र वासोनिर्णेजनं ऊपरोदके पक्वं कार्यम् ॥ ७॥

न रूढश्मश्रुरकस्मात्॥८॥

श्मश्रुग्रहणं नखादीनामण्युपलक्षणार्थम् । अकारणाच रुढश्मश्रुः स्यात् । कारणे सति रूढश्मश्रुः स्यात् । कारणं तु स्मृत्यन्तरे पठितम्—

षष्ठान्दे षोडशान्दे च विवाहान्दे तथैव च । अन्तर्वत्न्यां च जायायां शोरकर्म विवर्जयेत् ॥ इति ।

वपनस्यापि गङ्गायां भास्करक्षेत्र इत्यादिना चोदितकालत्वात्कथं तर्हि स्यात्तत्र मनु:-

क्रदेप्तकेशनखश्मश्रुरिति कल्पना कर्तनेन समीकरणम् । याज्ञवलक्यश्च-

37

7

2

1

ह्युक्छाम्तरधरो नीचकेशश्मश्रुनखः श्रुचिः । इति ॥ ८ ॥ नाझिमपश्च युगपद्धारयेत् ॥ ९:॥

एकेन हस्तेनाग्निमपरेणापश्च युगपन धारयेत् । अत्र न्योघो विशेषमाहू-न धारयेदपश्चामिमपश्चाचं तथैव च ।

युगपतस्त्रातको नित्यं तद्भार्याऽपि वथैव च ॥ इति ॥९॥ नाञ्जलिना पिवेत् ॥ १०॥

यत्किचित्क्षीरोदकादि पेयमञ्जलिना न पिबेत् । संयुक्ती हस्तावञ्जलिः 11 9 7 11.

👚 🌅 न तिष्ठन्नुज्वतोदकेनाऽऽचामेत् ॥ ११ ॥

ं क्षेत्रवृद्धतोद्रकेन तिष्ठचाऽऽचामेत् । आसीन एवाऽऽचामैत् । उद्धतोद्रकेनेतिः वचनात्तटाकादिषु तीरप्रदेस्या शुचित्वे जानुद्दने जले तिष्ठतो ऽप्यान्त्रमनमप्रतिषिक्रम् आचारोऽप्येवमेव शिष्टानाम् ॥ ११ ॥

् ं न ज्ञाद्राञ्चच्येकपाण्यावार्जितेन ॥ ३२ ॥

गूद्रेण शुचिनाऽण्यस्पृश्यस्पर्शादिद्षितेन द्विजेनाप्येकेन पाणिना चयदाङ वर्जितं तेनोदकेन नाऽऽचामेत् । स्वयं तु वामहस्तावर्जितेनोदकेनाऽऽचमनविषयाः एकपाण्यावितत्वं समानिभिति चेन । हस्तद्वयस्याप्याचमनकर्मसंबन्धात्तथा च शिष्टाचारदर्शनात् ॥ १२ ॥

न वाय्वभिविप्रादित्यापो देवता गाश्च प्रति परुयन्वा मूत्रपुरीषामेध्यान्व्युद्स्येत् ॥ १३॥

अप्शब्दान्ते दुन्द्व आर्षत्वात्समासान्तो न छतः। आनित्याः समासान्त, इति केषांचित्पक्षः । देवताः प्रतिमाः । वाय्वादीनूपति मूत्रादीनि न व्युदस्थेत्प_ श्यन्वा न कुर्यादिति प्रतिपश्यन्वेत्यर्थः । प्रति न कुर्यादित्याभिमुख्यवर्जनम् । पश्यना कुर्यादिति नियमादााभिमुख्ये सत्यव्यनवलोकनम् । मूत्रपुरीषयोः पृथगुपा . दा । दिमेध्य राब्देन निष्ठीवनोव्छिष्टादि विवक्षितं तर्हे ध्यशब्देनैवास । मू अपुरी-षग्रदणं तु तयोरतिशयेन वजनार्थम् ॥ १३ ॥

ैनेता देवताः प्रति पादौ प्रसारयेत् ॥ १४ ॥

एता वाय्वाद्या देवताः प्राति पादौ न प्रसारयेत् । पादावित्युपलक्षणं पादं च न प्रसारयेत् । गोषु विषेषु च देवतापदपयोगस्तद्वदुपचारार्थः ॥ १४ ॥

न पर्णले। हा रमि मूंत्रपुरी पापकर्षणं कुर्यात् ॥ १५॥

न पर्णादिभिर्मूत्रपुरिषयोरपकर्षणमपमार्जनं कुर्यात् । अन्येस्तु कुर्यादिति

न भस्मकेशनखतुपकपालमध्यान्याधितिष्ठेत् ॥ १६ ॥ 🕒

भस्मादीनि नाऽऽक्रामेत् । तुषा बीह्यादीनां त्वचः । अन्ये प्र-सिद्धाः । तेषामुपरि न तिष्ठेत् । अधितिष्ठेदित्यनेन याद्दच्छिकस्पर्शमात्रे न दोषः ॥ १६॥

न म्लेच्छाशुच्यधा मिंकैः सह संभाषेत ॥ १७ ॥

वर्णाश्रमधर्मं हिते देशे सिंहलद्वीपादो ये वसन्ति ते म्लेच्छाः । अश्राचय आर्या अपि विहितानि संध्यावन्दनादीनि ये न कुर्वन्ति ते तथोकाः । अधा-पिकाः पातितादयस्तैः सह न संभाषेत । संशब्दपयोगादेव सिद्धे सहग्रहणं तैः सहैककार्यो भूत्वा न संभाषेतित्येवमर्थम् । तेन मार्गमश्नादौ न दोषः ॥१७॥

संभाष्य पुण्यक्रतो मनसा ध्यायेत्॥ १८॥

यदि कारणावशात्तैः सह संभाषेत ततः पुण्यकृतो वसिष्ठादीन्मनसा ध्यायेत् । मनसेति ध्यानस्वभावानुवादः ॥ १८॥

बाह्मणेन वा सह संमापेत ॥ १९॥ प्रकरणाद्बाह्मणोऽपि पुण्यक्तदेव ॥ १९॥

अधेनुं ÷ धेनुभव्येति ब्र्यात् ॥ २०॥

धेनुः पयस्विनी गौः । अधेनुस्तिद्विपरीता । तामिष धेनुभव्योति ब्र्यान्न पुनरधेनुरिति ॥ २०॥

[÷] अत्र धेनोर्भव्यायाभिति मुम्तु न भवति च्व्यन्तत्वेनाव्ययत्वात् ।

ςĘ

अभद्रं भद्रामिति ॥ २१ ॥

अभद्रमपि वस्तु भद्रमित्येव ब्यात् ॥ ११॥

कपालं भगालमिति ॥ २२ ॥

कपालं बुवन्बगालिमिति बूयात् ॥ २२ ।

मणिधनुरितीन्द्रधनुः ॥ २३ ॥

इन्द्रधनुरिति ब्रवन्भणिधनुरिति ब्रूयात् ॥ २३ ॥

गां धयन्तीं परस्मै नाऽऽचक्षीत ॥ २४ ॥

धेट्पाने । व्यत्ययेनायं कर्भाण कर्तृपत्ययः । वत्सेन धीयमानां गां रस्मै स्वामिने न ब्रूयात् । यस्य हविषे वत्सा अपाक्तताः धयेयुरित्यादिके निमित्ते त्वाख्यातव्यमेव संसृष्टां च वत्सैनेत्यापस्तम्बीये विशेषात् ॥ २४ ॥

न चैनां वार्येत् ॥२५॥

न च स्वयमव्येनां वारयोदिति ॥ २५ ॥

न मिथुनी भूत्वा शौचं प्रति विलम्बेत ॥२६॥

मिथुनीभूय श्वियमुपगम्य शौचं पाति न विलम्बेत । तत्क्षण एव कुर्यात् शौचं त्वापस्तम्बेनाभिहितम्—उदकोपस्पर्शनमपि वा लेपान्प्रक्षाल्याऽऽचम्य प्रोक्षण-मङ्गानामिति ॥ २६॥

> न च तस्मिन्शयने स्वाध्यायमधीयीत ॥ २७ ॥ यस्मिन्मिथुनमाचरितम् ॥ २ १ ॥

> > न चापररःत्रमधीत्य पुनः प्रतिसंविशेत् ॥२८॥

यः पूर्वरात्रे सुप्त्वाऽपररात्र उत्थायाधीते । न स पुनः प्रतिसंविशेत् । कालदैर्ध्ये साति पुनर्न स्वप्याच्छेषां रात्रिं जागृयादेवाति पुनर्प्रहणात्पूर्वरात्रेऽसुप्तस्य स्वापे न दोषः ॥ २८ ॥

नाकल्पां नारीमभिरमयेत् ॥ २९॥

अकल्पां रागादिनाऽस्वस्थां नारीं नाघिरमयेत् । नानया मिथुनी भवेत् ॥ २९॥

F/4 4

न रजस्वलाम्॥ ३०॥

रजस्वलामि नारीं नाभिरमयेत् । उद्क्यागमने त्रिरात्रमिति पायश्चित्तं वक्ष्यिति तेनैव सिद्धे वचनमिदं त्रिरात्रादूर्ध्वमप्यानिवृत्ते रजासी गमनप्रतिषेधार्थम् ॥ ३०॥

न चैनां श्लिष्येत्र कन्याम् ॥ ३१ ॥
एनां रजस्वलां कन्यामनूढामि न सिष्येनाऽऽलिङ्गेत् ॥ ३१ ॥
अग्निमुखोपधमनविगृह्यवादवाहिर्गन्धमाल्य
धारणपापीयसावलेखनमार्थयासहमोजना
अन्त्यवंक्षणकुद्धःरप्रवेशनपादपाद्धावनासच्दीस्थमोजननदिवाहुतरणवृक्षविषमारोहणावरोहणप्राणव्यायच्छनानि वर्जयेत्

11 32 11

उपधमनमुषध्मानं नाग्नं मुखेनोषधमेन ज्वल्येत् । विगृह्यवादो वाक्कलहः ।
गन्धमाल्ययोविह्यारणं प्रकाशधारणिमिति । अनाविःस्नगनुलेपनः स्यादित्यापस्तम्वः ।
पापीयसावलेखनमशुचिना काशदिना शिरःपभृतेः कण्डूयनं तृतीयाया अलुक्ला न्रसः । भार्यया सह भोजनं भार्यया सहकित्मिन्भाजने मोजनम् । केषुचिद्देशे व्वाचारात्पामौ सत्यां निषधः । अन्ये त्वेकत्त्मिन्नाले भोजनं सहभोजनिष्णान्त । अञ्चन्त्यवेक्षणम् । अञ्चन्ता तैलाम्यङ्गं कुर्वत्यञ्जनादिभिग्लं क्यमाणा वा तस्या अवेक्षः । तच्य भार्याविषयमित्येके क्षीमात्रविषयमित्यन्ये । कृद्धारपविश्चनं द्वारुव्य तिरिक्तपदेशेन देवालयगृहादेः प्रवेशनमप्रसिद्धमार्गेण नगरयामादेः प्रवेशनमिति । यथा चाऽऽपस्तम्बः न कृमृत्या ग्रामं प्रविशेष्वानं पादेन पादमक्षालनः । आन्तन्दिस्थभोजनम् , आसन्दि पीठिका तत्राध्यस्यान्तस्य भोजनमासन्दिस्थभोः जनम् । यद्वा यत्राऽऽतीनो भुङ्के तत्राऽऽसने भोगनपात्रं निधाय यन्द्रोजनं तद्वा । नदीबाहुतरणं बाहुम्यां नद्यास्तरणं पारगमनम् । बाहुतरणात्रल्खवादौ न दोषः । नदीबाहुतरणं बाहुम्यां नद्यास्तरणं पारगमनम् । बाहुतरणात्रल्खवादौ न दोषः । नदिश्वरणं तडागादीनामण्यपलक्षणम् । वृक्षविषमारोहणावरोहणं वृक्षस्याऽऽरोहणं विषमस्य कूपादेरवरोऽणं च । वृक्षविषयग्रहणेनात्युक्ततिनम्नस्थलं लक्ष्यते । वृक्षविषयग्रहणेनात्युक्ततिनम्नस्थलं लक्ष्यते ।

पाणव्यायच्छनं पाणीपरोध्युङ्ङ्घनजलयन्त्राद्यधिरोहणम् । एतान्यशिमुखोपध-मनादीनि वर्जयेत् ॥ ३२ ॥

> न संदिग्धां नावमधिरोहेत् ॥ ३३ ॥ पारगमने संदिग्धानसमर्थां नावं नाधितिष्ठेत् ॥ ३३ ॥ प्रतिपद्पाठस्याज्ञक्यत्वात्संक्षिप्याऽऽह-

> > सर्वत एवाऽऽत्मानं गोपायेत् ॥ ३४ ॥

सर्वेभ्य उपायेभ्य आत्मानं रक्षयत् । एको न गच्छेद्ध्वानमितादिभ्यः ॥ ३४ ॥

न प्रावृत्य शिरे ऽहानि पर्यटेत् ॥ ३५ ॥

पावृत्याऽऽशिरसो दिवा चङ्कमणपतिषेधः । आसीनस्य यथारुचि । मार्गे वर्षातपादिबाने पावृत्यापि चङ्कमणे न दोष । सर्वत एवाऽऽत्मानं गोपाये-दित्युक्तत्वात् ॥ ३५ ॥

प्रावृत्य रात्रौ ॥ ३६ ॥

रात्री तु शिरः पावृत्यैव पर्यटेत् ॥ ३६ ॥

मूत्रोच्चारे च ॥ ६७॥

मूत्रणं मूत्र उच्चारः पुरीषकर्म तयोः समाहारद्वंदः । तत्र च शिर पावृत्य पावृतशिराः कर्म कुर्यादिति शेषः ॥ ३७ ॥

न भूमावनन्तर्धाय ॥ ३८ ॥

मूत्रपुरीषकर्मणी भूमी तृणादिभिरन्तर्धायेव कुर्यात् । अयज्ञियेस्तृणौरिति स्मृत्यन्तरे ॥ ३८ ॥

नाऽऽराच्चाऽऽवसथात् ॥ ३९॥

आवसथो गृहम् । तत्समीपे न कुर्यात् ॥ ३९ ॥

न भस्मकरीषक्ठष्टच्छायापथि हाम्येषु ॥ ४० ॥

करीषं गोमयम् । छ।यो।पजीव्याः पथिकादयो यत्र विश्रामयन्ति । काम्यं कमनीयः पदेशः । भस्मादिष्वेतेषु मूत्रपुरीषकर्मणी न कुर्यात् ॥ ४०॥

उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्यादुद्ङ्मखः॥ ४१ ॥ मूत्रपुरीषे दिवा चेदुद्ङ्मुख एव कुर्यात् ॥ ४१ ॥ संध्ययोश्य ॥ ४२ ॥

उदङ्मुखः कुर्यादिति ॥ ४२ ॥

रात्रौ दाक्षणामुखः ॥ ४३ ॥

स्पष्टम् ॥ ४३ ॥

ालाश्मासनं पादुके दन्तधावनामिति च वर्जयेत् ॥ ४४ ॥ इतिकाराः दा) द्यर्थाद्यच्चान्यदेवं युक्तं रथादि तदिप पालाशं वर्जयेत् । अत्र पठन्ति –

आसनं शयनं यानं गृहोपकरणं तथा । वर्जयेत्पादुकां चैव पालाशं दन्तधावनम् ॥ इति ॥ ४४ ॥ सोपानेत्करश्चाऽऽसनाभिबादननमस्कारान्वर्जयेत् ॥ ४५ ॥

अभिवादनं पूर्वोक्तं, नमस्कारो देवतापणामः । आभिवापनादीनि सोपानत्को न ुर्यात् । उपानद्यहणं पादुकादेरप्युपलक्षणम् ॥ ४५ ॥

न पूर्ीह्ममध्यंदिनापराह्णानफलान्कुर्याद्यथाशाकि धर्मार्थकामेभ्यः ॥ ४६ ॥

तृतीयार्थे चतुर्थी पश्चमी वा । पूर्वाह्णादीनह्नस्त्रीन्भागान्वमादिभिास्त्रिभिर्य-थाशक्त्यफलाच कुर्यातिक तार्ही सफलानेव कुर्याद्यथासंख्यम् ॥ ४६ ॥

तेषु तु धर्भोत्तरः स्यात् ॥ ४७॥

तुश्राब्दोऽनवस्थां परिहरति । तेषु धर्मार्थकामेषु धर्मोत्तरः स्याद्धर्मप्रधानः स्यात् धर्माविरोधेनार्थकामौ सेवतेति । तथा च मनुः-

परित्यजेदर्थकामी यो स्थातां धर्मवर्जितौ । इति ॥ ४७ ॥

न नमां परयोषितमीक्षेत ॥ ४८॥

परा चासौ योषिच्व परयोषित् । अन्यथा विववानूढावेश्याद्यो न स्युः । तां नम्नां सतीं नेस्रेत ॥ ४८ ॥

न पदाऽऽसनमाकर्षेत् ॥ ४९ ॥

पादेनाऽऽसनमात्मसमीपं न पापयेत् ॥ ४९ ॥

न शिश्वोदरपाणिपादवाक्चक्षुश्चापलानि कुर्यात् ॥ ५०॥

चापलशब्दः पत्येकं संबध्यते । शिश्वचापलमकाले मैथुनेच्छा । उद्रचा-पलं सर्वदा बिभक्षियषा । पाणिचापलं शिल्पकर्मशिक्षाभिलाषः । पाद्चापलं पर्यटनम् । वाक्चापलं नापृष्टः कस्याचिद्ब्यान्त चान्यायेन पृच्छत इत्येतद्तिक्रमेण व्यवहारः । चक्षुश्चापलं नृत्यादिदिदक्षा । एतानि न कुर्यात् ॥ ५० ॥

छेदनभेदनविलेखनविमर्दनावस्फोटनानि नाकस्मात्कुर्यात् ॥ ५१ ॥

छेदनं तृणादीनाम् । भेदनं घटादेः । विलेखनं कुडचभूम्यादौ नखादिभि-विलेखनम् । विमर्दनं लोष्टादीनां चूर्णीकरणम् । अवस्फोटनमङ्गुलानां सदाब्दं मसारणम् । एतदकस्मान कुर्यात् । कारणे त्ववस्फोटनादिषु न दोषः । छेदना दिष्वपि यथासंभवं मृग्यम् ॥ ५१ ॥

नोपरि वत्सतन्तीं गच्छेत् ॥ ५२ ॥

वत्सैबन्धनी रज्जुर्वत्सतन्ती । तामुपरि न गच्छेत् । वत्सश्चार्वो गोजाते रुपलक्षणम् ॥ ५२ ॥

न कुलंकुल स्यात् ॥ ५३॥

कुलमेव कुलं यस्य स कुलंकुलः । छान्दसो मुमागमः । एवंविधो न स्यात् । अन्यत्र गमनेऽध्ययनादिलाभे सानि स्वकुल एव न तिष्टोदिति । अपर शिह—कुलात्कुलान्तरगामी कुलंकुलो दत्तादिरूपेण तथाविधो न स्यात् । स्वसूत्र -परित्यागेन परसूत्रं न भजोदिति । तत्र स्मृत्यन्तरम्—

यः स्वसूत्रं परित्यज्य परसूत्रं निषेवते । शाखारण्डः स विज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥ इति ॥ ५३ ॥ न यज्ञमवृतो गच्छेत् ॥ ५७ ॥ अवृतोऽनुपामन्त्रितो यज्ञं न गच्छेत् ॥ ५४ ॥

१ ग. त्ससंबन्धिनी । २ ग. वधर्म ।

दर्शनाय तु कामम् ॥ ५५ ॥ अवृतोऽपि कामं दर्शनाय यज्ञं गच्छेत् । न त्वार्तिक्यादिलिप्सया ॥५५॥ न भेक्षानुत्सङ्गे भक्षयेत् ॥ ५६ ॥ भैक्षाः पृथुकादयस्तानृत्सङ्गे कृत्वा न भक्षयेत् ॥५६ ॥ न रात्रौ प्रष्याहृतम् ॥ ५७ ॥

रात्री पेष्येण किंकरेण यदानीतं तद्यत्कि चिद्पि न भक्षयेत् । न भक्षिनिव एकवचननिर्देशात् ॥ ५७॥

उद्धृतस्नेहविलपनापिण्याकम्यितप्रभृतीनि चाऽऽत्तवीर्याणि नाश्चीयात ॥ ५८ ॥

आत्तवीर्याण्युपात्तसारांशानि नाश्नीयात् । कानि पुनस्तानि तेषामुदाहरण-पपञ्चः । उद्धृतस्तेहे उपात्ताग्रमण्डे द्धिपयसी । विरुपनं नवनीतमरुम यन्त्रे पीडिताना तिरुानां कल्कः पिण्याकम् । यस्य मथनमानं नाम्बुसंसर्गस्तद्धि मथितम् । यदाहुर्नेविण्टिकाः—

तकं सुदिधन्मथितं पादाम्ब्वर्धाम्बु निर्जलम् । इति ॥

तच्च द्विविधम् । आत्तनवनीतिमतरच्च । तत्राऽऽद्यस्येह ग्रहणं तद्ध्यात्त . वीर्यस्योदाहरणम् । प्रभृतिग्रहणेन यच्चान्यदेवंविधं कल्करूपं तस्य ग्रहणम् -उद्धृतनवनीतं तक्रमाश्यमनाश्यामिति चिन्त्यम् । आचारस्त्वंशनमेव । अभक्ष्यपकरणे। वक्तव्य इह वचनात्स्नातकवतलोपे यत्पायाश्चित्तं तदेवेषामशने भवति नाभक्ष्यभक्ष। णनिभित्तम् ॥ ५८ ॥

सायंप्रातस्त्वन्नमभिपूजितमनिन्दन्भुक्ति ॥ ५९ ॥

तुशब्दस्तववधारणे । सायं रात्रिः पातरहस्तयोर्द्वये रेककालयोरशनं भुर्ज्जीतः नान्तरेति पाप्तस्य भोजनस्य पारेसंख्येयम् । तत्र गुणाविधिराभिपूजितमानिन्दानिति । अभिपूजितं राचत इति । आनिन्दन्कद्नत्वादिदोषेणाकुत्सयन् । सायं पातरशन्नान्यभिपूजयोदीति वसिष्ठः ॥ ५९ ॥

> न कदाचिद्रात्रौ नमः स्वपेत् । ६० ॥ सुव्यादात्रौ न तु नमः स्वपेत् । तदेवं रात्रौ नमस्य स्वापनितिषेघो

१ ग. भक्ष्यानु । २ ग. भक्ष्याः । ३ ग. स्त्वनाश्यमे । ४ ग. भिजुषेदि ।

द्विवा तु सर्वथिति । कदाचिद्यहणादिदं लभ्यते । अन्यथा रात्रौ न नगः स्त्रपे दित्येव ब्राच्चं स्थात् । ६०॥

स्नायाद्वा ॥ ६१ ॥

न ना इत्येव । नम्नो जलं नावतरोदीति स्मृत्यन्तरम् ॥ ६१ ॥ अानन्त्यादाचाराणां पतिपद्पाठो न शक्य इति संक्षिप्याऽऽह – यच्चाऽऽत्मवन्तो वृद्धाः सम्यग्विनीता दम्भलोभमोह- वियुक्ता वेदाविद आचक्षते तत्समाचरेत् ॥ ६२ ॥

आत्मवन्तो जितिन्द्रियाः । वृद्धाः परिणतवयसो यौवने विषयवश्यतासंभ-वात् । सम्यग्विनीता गुरुभिः शिक्षिताः । दम्भो धर्मच्छलेन लोकवश्चनम् । लोभोऽन्यायेन परद्रव्यादित्सा । मे हो ज्ञानं लोकविरुद्धज्ञानं वा तेन त्यक्ताः । वेद्विदः पाठतश्चार्थतश्च वेदानां चोदितारः। अत्र तृद्धा इति विशेष्यम् । एवंभूता कृद्धा सुद्रावक्षते तत्कर्तव्यमिति । बहुवचननिर्देशाद्धहूनांभेकमत्ये तद्भवति ॥ ६२ ॥

योगक्षेमार्थमीश्वरमधिगच्छेत् ॥ ६३ ॥

अलब्धरः लाभो योगः । लब्धस्य पारिपालनं क्षेमै । तदर्थमिश्वरं राजा-नमधिगच्छेत् । अधिशब्दमयोगादधिरैश्वर्यं इत्यस्मादकार्पण्येन स्वतन्त्रो गच्छेदिति ॥ ६३ ॥

नान्यमन्यत्र देवगुरुधार्मिकेभ्यः ॥ ६४ ॥

अन्यं राजव्यातिरिक्तं योगक्षेत्रसमर्थमिष नाधिगच्छोदित्यनुवादः । देवा इन्द्रादयः गुरवः पित्रादयः । धार्मिका धर्माचरणर्शालाः । एतेभ्योऽन्यत्र । एतान-धिगच्छोदेवेति ॥ ६४ ॥

प्रभूतेथोद्कयवसकुशमाल्योपनिष्कमणमार्यजनभूयि -ष्ठमनलससमृद्धं धार्मिकाधिष्ठितं निकेतनमावसितुं यतेत ॥ ६५ ॥

एधः काष्ठमुद्दकं स्नानपानयोग्यं यवसं तृणानि गवार्थम् । कुशाः प्रसिद्धाः।
माल्यानि पुष्पाणि देवाद्यर्चनार्थम् । उपानिष्कम्यते यत्र तदुपनिष्कमणं बहिरवकाशः संचाराद्यर्थम् । एवमादीनि प्रभूतानि यत्र । आर्यास्त्रेवर्णिकास्त एव

१ ग. विमुक्ता। २ ग, नां वेदि। ३ ग. क्षेमः।

जनास्तैभूथिष्ठं व्याप्तम् । अलसाः कृत्येषु निरुद्यमास्तिद्विपरीता अनलसास्तैसमृ-द्मम् । धार्मिका धर्मशीलास्तैराधिष्ठातृभिराधिष्ठितम् । एवंभूतं निकेतनमावासितुं यतेत । एवंभूतं स्थान यत्नेनापि वसोदिति ॥ ६५ ॥

शस्तमङ्गल्यदेवतायतनचतुंष्पदं प्र4क्षिणमावर्तेत ॥६६॥ निर्गमनप्रवेशादिषु यथा ते दक्षिणपार्थे भवन्ति तथा कुर्यादिति ॥ ६६॥ मनसां वा तत्समग्रमाचारमनुपालयेदापत्कल्पः ॥ ६७॥ संभवे तु साक्षादनुष्ठानमेवोति ॥ ६७॥

सत्यधर्मा ॥ ६८ ॥

सत्यवचनस्वभावः । स्यादिति वक्ष्यमाणमपेक्षते ॥ ६८ ॥ अगर्यवृत्तः ॥ ६९ ॥

पूर्वभाषी पियंवद इत्याद्यार्याणां वृत्तिवि वृत्तं यस्य स तथा । उष्ट्रमुखव-

शिष्टाध्यापकः ॥ ७० ॥

सतामध्यापयिता नत्वयोग्यानाम् ॥ ७० ॥

शौचशिष्टः॥ ७१॥

शिष्टं शास्त्रविहितं शौचं यस्यास्ति स तथा । निष्ठान्तस्य परानिपातः । शास्त्रविहितेन शौचेन तद्वान् । शौचस्य पुनः पुनर्वचनं तात्पर्यार्थम् ॥ ७१ ॥

श्रुतिनिरतः स्यात् ॥ ७२ ॥

वेदाभ्यासरतः ॥ ७२ ॥

नित्यमहिंस्रो यृदुर्दहकारी दमदानज्ञीलः ॥ ७३ ॥

नित्यं निमित्ते सत्यप्यहिंस्रोऽहिंसाइतिः । सृदुः कृतापराभेऽपि सहकः । दृढकारी पारब्धस्य समापयिता न पाक्रमिकः । दम इन्द्रियनिश्रहः । दानं सायि-भागः । तच्छीलः स्यादिति सर्वत्रापेक्ष्यते ॥ ७३॥

एवमाचारो मातापितरौ पूर्वापरांश्च संवैन्धान्दुरि

१ ग, व्पर्थ म । २ ग, सा चैतत्सम । ग, संबद्धान् ।

.4

तेभ्यो मोक्षयिष्यन्स्नातकः शश्वद्बस्नलोकान्न च्यवते न च्यवते ॥ ७४ ॥

एवमुक्तपकार आचारो यस्य स एवमाचारः । एवमूतः स्नातको माता पितसै पूर्वसंबन्धाः पितामहादयः । अपरसंबन्धाः पुत्रादयः । तांश्च पूर्वापरसंब न्धान्दुरितेभ्यः पापेभ्यो मोक्षयिष्यन्यं पूर्वं भूतास्तांस्तदैव नरकादिभ्यो मोचयति ये तु भविष्यन्तः पुत्रादयस्तांश्य मोक्षयिष्यन् । सन्पत्ययस्यार्थो मृग्यः (?) । मोचियव्यन्भवति । स एवंमूतः स्नातकः श्रथद्वहुकालं ब्रह्मलोकान च्यवते । द्विरुक्तिरध्यायसमाप्त्यर्था । पुनःस्नातकग्रहणं स्नातकधर्माणामेवैतत्फ्छं न गृहस्थ-धर्मसिहतानामित्येवमर्थम् ॥ ७४ ॥

इति श्रीगौतमीयवृत्तौ हरदत्तविरचितायां भिताक्षरायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

प्रथमः प्रश्नः समाप्तः।

अथ द्वितीयः प्रश्नः। ं (तत्र प्रथमोऽध्यायः)।

उक्ताः प्रायश आश्रमनर्भाः । अथ वर्णधर्मानाह-द्विजातीनामध्ययनमिज्या दानम् ॥ १ ॥

यथासंख्यमत्र न भवति । उत्तरत्राधिकग्रहणात्तत्रेव वकःयं भाविष्यति । अध्ययनं वेद्ग्रहणाभ्यासरूपम् । इज्या यागो देवापितृपूजा । दानं पात्रे द्रव्य-त्यागः । द्विजातीना।मिति वचनाद्यदा द्विजातयः संपन्नाः कृतापनयनास्तत आर-भ्येते धर्माः । तेनानुपनीतानां दानेऽप्याधिकारो नास्तीति केचित् । नेति च वयम् । द्विजातीनामित्युपलक्षणं येषां द्विजातिर्जन् तेषामिति । तेनानुपनीत स्याप्यर्थवतो हितैषिमः पवर्तितस्य दानं भवत्येव ॥ १ ॥

ब्राह्मणस्याधिका प्रवचनयाजनप्रतिग्रहाः ॥ २ ॥

पवचनमध्यापनम् । याजनमार्त्विज्यम् । प्रतिग्रहः पसिदः । एते ब्राह्मणम्-स्याधिकाः पूर्वेभ्योऽध्ययनादिभ्यः । ते चामी च समुच्चिता इत्युक्तं भवति । अत्राप्यनुपनीतस्यापि पतिग्रहो भवाति । याजनाध्यापने त्वसंभवा न भवतः । ब्राह्मणस्य प्रवचनयाजनप्रतिग्रहा इत्येव तिन्द्रेऽधिकग्रहणं पूर्वत्र यथास्नंख्यं मा भादीत पूर्वे तावदवस्थिताः ॥ २ ॥

१ क. ख घ. पूर्व तावद्त्र्यव ।

पूर्वेषु नियंमस्तु॥ ३॥

नियमोऽवश्यकर्तव्यता । पूर्वाण्यध्ययनादीन्यवश्यकर्तव्यानि । अकुर्वन्मत्य विति कुर्विश्राभ्युदेति । पवचनादीति तु वृत्त्यथानि । अतोऽकर े न पत्यब्रायः करणे नाभ्युदयः ॥ ३ ॥

आचार्यज्ञातिप्रियगुरुधनविद्यानियमेषु ब्रह्मणः

संप्रदानमन्यत्र यथोक्तात्॥ ४॥

बस वेदः । तस्य संगदानं सम्यक्तदानम् । अनुज्ञात उपिद्शोदित्यारम्यः शुश्रूषवोऽध्याप्या इत्युक्तं स यथोको नियमः । तस्मात्रन्यत्र विनाऽपीति नेजाऽऽ चार्यादिम्भो बस पदेयमित्युच्यते । आचार्य उक्तः । ज्ञातयो भ्रातृपितृब्याद्यः - पियः सला । गुरुवो मातुलाद्यः एतेषु बस सम्यक्पदेयम् तथा धनविद्यानि। यमेषु । धनेन विद्यायाः परिवर्तनं धनानियमः । विद्यान्तरेण परिवर्तनं विद्यानि यमः । तेष्वाप बस संपदेयम् । धन विद्यानियमो पि योग्याविषय एव । शिष्ट ध्यापक इत्युक्तत्वात् । न च तस्याप्ययमपवादः । यथावद्महणविधिनाऽध्यायमप्रकातः (कंत)स्यैवायमप्रवाद इति ॥ ४ ॥

क्रिवाणिज्ये वाऽस्वयंक्रते ॥ ५ ॥

क्रिः कर्षणेन सस्योत्पादनं वािज्या क्रयविक्रयव्यवहारः। ते च ब्रास-णस्याधिके यद्यस्वयंक्रते । अन्येन कारियतुं शक्येते ॥ ५ ॥

कुसीदं च ॥ ६॥

कुसीदमुपचयार्थो धनमयोगः । तद्प्यस्वयंक्रतं चेद्ब्राह्मणस्याधिकम् ॥६॥ राज्ञोऽधिकं रक्षणं सर्वभूतानाम् ॥ ७॥

राज्ञोऽभिषिकस्य सर्वभूतानां रक्षणमधिकम् । सर्वग्रहणात्स्थावराषीदाम्प्यथारथादीनां छेदननिरोधेन ॥ ७ ॥

न्याय्यद्ण्डत्वम् ॥ ८ ॥

न्यायादनपेतो न्याय्यः शास्त्र।विरुद्धो दण्डो यस्य तद्भावो न्याच्य-

१ क. ख. घ. यमाः ॥ ३ ॥ २ क. ख. घ. थांनीति चेत् । कायार्गी अक । ३ ग. दीनामपच्छेदादिपरिहार्यम् ।

दण्डत्वम् । न्यायदण्डत्वामित्यपि पाठ एष एवार्थः । स च राज्ञो धर्मः । रागद्धे-**पापिना न न्यूनाधिकद्ण्डः स्यादिति ॥ ८ ॥**

विभृयादबाह्मणाञ्श्रोत्रियान् ॥ ९॥

श्रोतिया अधीतवेदास्तान्त्राह्मणानन्त्रादिदानेन विभूयात् ॥ ९ ॥

निरुत्साहांश्र्व ब्राह्मणान् ॥ १०॥

जीवनार्थमुत्साहं कर्तुमसमर्था । निरुत्साहास्तान्त्राह्मणानाप बिभूयात् । किं पुनर्जासणान् । पूर्वसूत्रे सर्जने समर्थानापि श्रोतियानसममाहूय बिभूयादिति # 80 H

अक्रांश्च ॥ ११ ॥

ये पूर्वेरीता अकरा बालणादिभ्यस्तांश्च यथापूर्वं बिभ्याद्धाधकादिनिरासेन । स्त्रयं च नापूर्वं करमृत्पाद्योदिति ॥ ११ ॥

उपकुर्वाणां ३च ॥ १२ ॥

अधीयाना ब्रह्मचारिण उपकुर्वाणास्तांश्च विभृयादन्नादिदानेन । यद्येथिनः स्वयं जीवितवन्या वनसूकरादिव्यावर्तनेन । अपर आह-उपकुर्वाणा लोकोपकु-वंजि वैद्यादय इति ॥ १२॥

योगश्च विजये ॥ १३॥

योग उपायो विजयविषयश्च योगः कार्यः । अयमपि राज्ञोऽधिको धर्म इति॥ १३॥

भये विशेषण॥ १४॥

अन्याभिभवादिनिमित्ते विशेषेण योगः कार्यः ॥ १४ ॥

चर्या च रथधनुभ्याम् ॥ १५ ॥

चरणं चर्या । बहि:पदेशे चरश्रथमारूढोः धनुहस्तश्य चरेत् । र्वाःरथग्रहण हस्त्यशाँदैरुपलक्षणं धनुर्यहणं च खड्गारेः ॥ १५ ॥

सङ्ग्रामे संस्थानमानिवृत्तिश्च ॥ १६ ॥

संमामो युद्धं तत्र संस्थानं पाणात्ययः । निवृत्तिः पछायनं तद्भावोऽनि-वृत्तिः। एतौ च राज्ञोऽधिकौ धर्मी ॥ १६ ॥

क. ख. घ. द्यतिधिनिस्व । २ ग. जीवनतस्तु क । ३ क. ख. घ. भिजनादि।

न दोषो हिंसायामाहवे ॥ १७ ॥

यत्र परस्परमाह्वयन्ते स आहवः । तादशे युद्धे शत्रूणां हिंसायामपि न दोषः । नित्यमहिंस्र इत्यस्यायमप्वादः ॥ १

अन्यत्र ६५१वसारथ्यायुधक्ठताञ्जालिप्रकीर्णकेशपराङ्मुखोः पविष्टस्थलवृक्षाधिक्रढद्रतगोबाह्मणवादिभ्यः ॥ १८॥

िबाब्दश्य विभिः संबध्यते । व्यथी विसारथिव्यीयृध इति यस्याथी हतः स व्यश्वः । यस्य सारथिर्हतः स विसारथिः । यस्याऽऽयुधं कृतं पतितं वा स व्यायुधः । स्रताङ्कालिर्भयेन । प्रकीर्णकेशः केशानि नियन्तुमक्षमः । पराङ्मुखो भयेन पृष्ठीकृत्य पलायमानः । उगविष्टः पलायितुमप्यसमर्थ आसीनः । स्थल-वृक्षाधिरूढः । स्थलमुजनपद्वास्तं वृक्षं वाऽऽरूढः । दूतो वार्ताहरः । गौरस्मि ब्राह्मणीऽस्मीति ये वदन्ति ते गोब्राह्मणवादिनः । एतेम्योऽन्यत्राऽऽहवे हिंसायां न दोषः । एतेषु दोष इति ॥ १८ ॥

क्षत्त्रियश्चेदन्यस्तमुपजीवेत्तद्वृत्त्या ॥ १९ ॥

अन्यश्चेन्क्षात्त्रयस्तं राजानं देशोपष्ठवादिनोपजीवेत्तदा तद्वृत्त्या तस्य राज्ञो या वृत्तिश्चर्या रथधनुभ्याभित्यादिका तथा युक्तः सञ्जीवेत् । तेन राज्ञैवमसौ संमत इति ॥ १९ ॥

जेता लभेत सांग्रामिकं वित्तम् ॥ २० ॥

राज्ञा नियुक्ते राजभृत्यादिः संग्रामे शत्रूनिः णित्य यद्वितं छभते तत्स एव जेता समेत न राजा ॥ २०॥

वाहनं तु राज्ञः॥ १ १॥

वाहनं हस्त्यश्वादिकं निजित्य छब्धं राज्ञो भवति न जेतुः ॥२१॥ उद्धारंश्चापृथाजये ॥ २२ ॥

यदि सर्वे सैनिकाः संभूय जयेयुर्जित्वा च किमापि छमेरंस्तासमैन्नपृथाजये राज्ञ उद्धारो विशेषीद्दव्यं स्वयं बृतो देयः ॥ २२ ॥

अन्यनु यथार्हं भाजयेदाजा ॥२३॥

यत्स्वयं वृतं माणिक्यादि ततोऽन्यद्यथाई यस्य यावान्व्याशारो

१ घ. इ. च. रश्च पृ। २ क. ख. घ, स्भिन्पृ। ३ ग, शेषांशो यः स्व। ४ ङ, च, थार्थं भोज।

यावद्वा शौर्यं तद्नुरूपेण भाजयेत् । तथैते तद्नुरूपं भजेरंस्तथा कारयेदिति ।। २३ ॥

राज्ञो बलिदानं कर्षकैर्दशममष्टमं पष्टं वा ॥ २४ ॥

कर्षकैः क्षेत्रे यस्रब्धं तस्य द्वामभागोऽष्टमः षष्ठो वांऽवो राज्ञो बास्टिदानं करक्तपेण देयः । अस्य राज्ञः कर्षकैः क्षेत्रे यस्रब्धं तद्रक्षणनिमित्ता वृत्तिरेषा । स्टिष्टाया भूमेरातिभोगमध्यमभोगालपभोगविषयोऽयं व्यवस्थितो विकल्पः । आतिभोगे द्वामांक्षो मध्यमभोगेऽष्टमांक्षोऽल्पभोगे षष्ठांवा इति ॥ २ ॥

पञ्चाहिरण्ययोरप्येके पश्चाशद्भागः ॥२५॥

ये पशुमिर्जीवन्ति ये वा हिरण्यप्रयोक्तारो वार्धुषिकास्तैः पश्चाशत्तमो मागोिराज्ञे देय इत्येके तद्यथा-यस्य पश्चाशत्पश्चः सन्ति स प्रतिसंवत्सरमेकं पशुं राज्ञे द्यात् । यस्य वा पश्चाशिक्वर्वृद्धिपयोगः स प्रतिसंवत्सरमेकें निष्कं राज्ञे विक्रिक्षण द्यादिति ॥ २५ ॥

विंशातिभागः शुल्कः पण्ये ॥ २६ ॥

यद्वणिगिभार्विकीयते तत्पण्यम् । तत्र विंशतितमो भागो राज्ञे देयस्तस्यैव द्यिमानस्य शुल्क इति संज्ञा । शुल्कपदेशाः पातिभाव्यं वणिकशुल्कमित्याद्यः ॥ २६॥

मूलफलपुष्षौषधमधुमांसवृणेन्धनानां षष्टः ॥ २७॥

मूलं हरिद्वादि । फलमाम्नादि । पुष्पमुत्पलादि । औषधं बिंल्वादि । शिष्टानि मसिद्धानि । एतेषु पण्येषु षष्टि (ष्ठ) तमो भागो राज्ञे देयो विकेता ॥ २७॥

कस्पात्पुनरेवं राज्ञे देय हत्यत आह-

तद्रक्षणधार्भित्वात् ॥ २८ ॥

तेषां करदायिनां रक्षणरूपेण धर्मेण तद्वत्त्वाचेषामयं रक्षक इति कृत्वेति ॥ २८ ॥

तेषु तु नित्ययुक्तः स्यात् ॥ २९ ॥

तेषु कर्षकादिषु नित्ययुक्तः स्यादक्षणे नित्यमवाहितः स्यात् । अपर

· 60

आहं नेतेषु बल्यादिषु नित्ययुक्तः स्यात् । तात्पर्येणाऽऽददीत दालकम् । सस्यैतद्धः निमिति ॥ २९॥

अधिकेन वृत्तिः ॥ ३० ॥

राज्ञोअधिकं रक्षणिमति यदुकं तद्द्वारेण यदागतं धनै तद्धिकं तेनाऽऽत्मनः पोष्यवर्गस्य च इस्त्यश्वादीनां च वृत्तिः स्याच तु पूर्वेर्यत्संचित्य खातं क्रोश्रास्त्रेणः तिनाजीवेत्। आपदिःतुः तेनापि जीवेत्। तथा चः न्यामः=३०० विश्वपू प्रायकाः

कुटुम्बपाषणं कुर्याचित्यं कोशं च धारमेत्ं किता का किता आपदोश्न्यत्र केंग्शातु न गृहणीयात्कदाचन ॥ इति ॥ ३० ॥ ्र 📇 💮 ् शिल्पिनो मासि मास्येकैकं कर्म कुर्युः ॥ 😩 🖫 📑

्र प्रमुद्धिको नाह्या साध्यमेकं कर्म । शिल्पिनो छोहकाराद्यः । तेऽपि प्रतिमासं राज्ञे स्वीयमेकमहः कर्म कुर्युः । एषं एषां दाल्कः ॥ ३ १०॥ । वर्षाः वर्षाः

एतेनाऽऽत्मनोपजीविनो व्याख्याताः॥ ३२ ॥

आत्मोपजीविनो ये शरीरायासेन जीवन्ति काष्ठवाहादयुस्तेऽन्येते च शिलिष्कपकारेण व्याख्याता मासि मास्येकैकं कर्म कुर्युरिति । नतिकादिष्वप्ये षेव गतिः ॥ ३२ ॥ A 18 H

नौचकीवन्तरुच ॥ ३३॥

नीश्व चर्क च नीचके । चक्रशब्देन तद्दच्छकटं छक्ष्यते । तद्दन्तो नीच-कीवन्तः । आसन्दीवद्षधीवदित्यादिना कथंचिद्रूपसिद्धिः । नौवन्ती नौजीविनः । चंक (की)वन्तः शकटणीविनः । ते अपि राज्ञ एक महस्तत्कर्म कुर्युः ॥ ३३ ॥ भक्तं तेभ्यो द्यात् ॥ ३४ ॥

शिल्पिनो मासि मासीत्यारभ्य येऽनुकान्तास्तेभ्यः कर्म कुर्वे द्वेची भक्तमनं दिवा भोजनं दद्यादाजा ॥ ३४॥

> पण्यं विणिभिर्थापचयेन देयम् ॥ ३५ ॥ 🐃 🦮 मासि मारयेकेकिमत्यनुवर्तते । विंशतिभागः शुल्कः पण्य इत्युक्तम् ।

९ क. ख. ग. स्थान तालर्येण नाऽऽद् । २ क. ख. घ. त । आधिकोऽन्य। ३ ग. कोशं तु । ४ स्येकं।

よし

ततः शुल्कादाधिकामिदं मासि मास्येकं पण्यमर्थापचयेन पाप्तस्य मूल्यस्य किंचि-न्न्यूनतां कल्पयित्वा वणिजो राज्ञे दद्यः । तत्र बृहस्पतिः—

गुल्कं ददुस्ततो मासमेकैकं ९ण्यमेव चा अधीवरं च मूल्येन वणिजस्ते पृथक् पृथक् ॥ इति ॥ ३५ ॥ प्रनष्टमस्वामिकमधिगम्य राज्ञे प्रबूयुः ॥ ३६ ॥

पनष्टं स्वामिसकाशात्पश्रष्टम् । अस्वामिकमज्ञायमानस्वामिकम् । अधिगम्य भूमी पतितमुपलभ्य जनपद्पालने नियुक्ता एते राज्ञे प्रब्रुयुः । अन्ये वा केचिद्द-ष्टवन्तस्तेअपि ब्रुयुः ॥ ३६ ॥

ततः किं कर्तव्यं राज्ञा-

विल्याप्य संवत्सरं राज्ञा रक्ष्यम् ॥ ३७॥ विल्याप्य

विख्याष्य-इद्मेवंजातीयकं वस्त्वासादितं रक्ष्यते में यस्यैतत्स आगच्छतुः इति नगरे पटहेन विश्वित्वा संवत्सरं रक्ष्यन् । शाक्नेत्संवत्सरात्स्वाम्यागच्छति तुतो अक्षणानि पृष्ट्वा साम्यं चेत्ततस्मै द्यम् । वेषम्ये स द्राडचः । तथा च 4 5 5 11 3 6° याज्ञवल्क्यः-

प्रनष्टा धिगतं देयं नृषेण धानेने धनम् । विभावयेच चेलिङ्गैस्तत्समं दण्डमहीति ॥ इति । एवमिधिगम्यापब्रुवतो दण्डचाः ॥ ३७॥

अथ संवत्सरादूर्ध्वं किं कार्यमित्याह-

ऊर्ध्वमधिगन्तुश्चतुर्थं राज्ञः शेषः ॥ ३८ ॥

येनाधिगम्याऽऽल्यातं तस्मै चंतुर्थमंशं दत्त्वा शेषो राज्ञा यासः ॥३८॥

स्वामी रिक्थक्रयसंविभागपरित्रहाधिगमेषु ॥ ३९ ॥

रिक्थं पित्रादीनामभावे पाप्तम् , कया मूल्येन स्वीकारः । संविभागो भावादीनां साधारणस्य परस्परविभागः । परिग्रहो वन्येष्वस्वामिकेषु वृक्षादिषु पूर्वस्वीकारः । अधिगमः प्रनष्टस्याज्ञातस्यामिकस्य निष्यादेः स्वीकारः । एतेषु कारणेषु दृष्यस्वीकर्ता स्वामी भवति । तेन पनदेशधगते राज्ञोशधग-न्तुश्च स्त्राम्यमुपपन्नामिति पकरणंसंगतिः । क्षेत्रेणूत्पन्नानि सस्यादीनि क्षेत्रवदेव

क्षेत्रवतः स्वानि । एतेनाऽऽकरेषूत्पन्नं छवणादि व्याख्यातम् । एतानि सर्ववर्ण-साधारणानि स्वाम्यकारणानि ॥ ३९ ॥

बाह्मणस्याधिकं लब्धम् ॥ ४० ॥

यस्रव्यं दानरूपेण तद्ब्राह्मणस्याधिकं स्वाम्यभूसम् ॥ ४० ॥ क्षात्त्रियस्य विजितम् ॥ ४१ ॥

विजयेन लब्धं क्षत्त्रियस्याधिकं स्वम् ॥ ४१ ॥

निर्विष्टं वैश्यशूद्रयोः ॥ ४२ ॥

निर्निष्टं कर्मणोपात्तम् । छव्यादिना वैश्यस्य शुभूषादिना शूद्रस्य । तद-धिकमनयोः ॥ ४२ ॥

अथ प्रनष्टाधिगताधिगन् अध्यतुर्थमित्यस्यापवादमाह-

निध्यधिगमो राजधनम् ॥ ४३॥

निधिश्चेद्धिगतस्तदाजधनमेव भवाति । अधिगन्त्रेऽनुग्रहानुरूपं किंचिद्देय-मिति ॥ ४३ ॥

बाह्मणस्याभिक्तपस्य ॥ ४४ ॥

अभिरूपः षट्कर्मनिरतः । तस्य ब्राह्मणस्य चेन्निध्यधिगमी न तद्गाजधनं किं तसंधिगन्तु ब्राह्मणस्यैवेति ॥ ४४ ॥

अबाह्मणोऽप्याख्याता पष्ठं लभेतेरयेके ॥ ४५॥

अज्ञासणोऽपि निधिमधिगम्य यद्याचष्ट इदिमित्थमासादितामिति स तस्य ।निधे: पष्ठं लभेतेत्येके स्मर्तारी मन्यन्ते । ज्ञासणेऽनभिक्तपे कल्प्य: ॥ ४५॥

चौरहृतमपजित्य यथास्थानं गमयेत् ॥ ४६॥

चौरहैतं द्रव्यं तानपजित्य यथास्थानं गमयेत् । स्वामिन एव द्यात् जेतुस्तु जयफलं किंचित् ॥ ४६॥

कोशादा दद्यात् ॥ ४७॥

यद्यन्विष्यापि चोरा न दृष्टास्त एव वा जित्वा गतास्तदा स्वकोशादादाय तावखनं स्वामिने दृष्टाद्याबद्पहतं चौरैरिति ॥ ४७॥

१मथमे। इसद्त्रकतमिताक्षरावृत्तिसहितानि ।

रक्ष्यं बालधनमा व्यवहारप्रापणात् ॥ ४८ ॥

बालोऽपाप्तषोडशवर्षः । तस्य यदि हितैषिणो रक्षकाश्च पित्रादयो न सन्ति सन्तो वा मूर्खाश्चाधार्मिकाश्च तदा तद्धनं राज्ञा रक्ष्यम् । आ कुतः । व्यवहारमापणात् । यावदसौ व्यवहारमाप्तः षोडशवर्षो भवति ॥ ४८ ॥

समावृत्तेवा ॥ ४९ ॥

आङ्नुवर्तते । अधीतवेदस्य गुरुकुलानिवृत्तिः समावृत्तिः । आ वा तुल्या इति ॥ ४९ ॥

एवं राज्ञोऽधिकं स्वत्वमूलमुक्तम् । सांप्रतं वेश्यस्याऽऽह-

R

वैश्यस्याधिकं क्रापिवणिक्पाशुपाल्यकुसीद्म् ॥ ५० ॥

कृषिः प्रसिद्धा । विणिगिति वाणिज्यम् । पशुपालस्य कर्म पाशुपाल्यम् । कुसीदं वृद्ध्यर्थो धनप्रयोगः । कृष्यादिभिर्यक्षः तद्धिकं स्वं वैश्यस्य ॥ ५० ॥

ज्ञूद्ररचतुर्थो वर्ण एकजातिः॥ ५१॥

चतुर्थी वर्ण इति । वर्णसामान्यत्वे सत्यपि चतुर्थग्रहणं पूर्वेषां त्रयाणां वासणादिवर्णानां पृथग्वर्णत्वोपपादनार्थम् । त्रैवर्णिका इति सिद्धत्यादेकजातिरुगनयनं पूर्वेषां द्वितीयजन्म तदस्य नास्तीति । उपनयनप्रतिषेधात्तरपूर्वकमध्ययनपपि
न भवति । तिश्वये गृह्यकार आह—शूद्रस्यापि निषेकपुंसवनसीमन्तोन्नयनजातकर्मनामकरणान्नप्राश्चनचौलान्यमन्त्रकाणि यथाकाल्यमुपदिष्टानि । इति । विवाहोऽ
प्यमन्त्रको यथाचारं भवति ॥ ५१ ॥

तस्यापि सत्यमकोधः शौचम् ॥ ५२ ॥

उपनयनाध्ययनरहितत्वेऽपि यथावृत्तिकत्वं मा भादिति तस्यापि शूदस्य सत्यादयो धर्मा भविन्त । सत्यं यथादृष्टार्थवादित्वम् । अकोधः परानिभदोहबुाद्धः। शौचं पूर्वोक्तद्वयशौचं मनः शौचित्यादि । वसिष्ठस्तु — सर्वेषां सत्यमक्रोधो दानमहिंसा पजननं चेति ॥ ५२ ॥

अाच मनार्थे पाणिपादप्रक्षालनमेवैके ॥ ५३ ॥

पूर्वेषां वर्णानां यत्राऽऽचमनमुक्तं तिस्मिन्विषये शूद्रस्य पाणि दिपक्षालनमेव भवति नान्य आचमनकल्प इत्येके मन्यन्ते । मनुस्तु सल्दम्बुपानामिन्छाति । स्त्रीशूद्रो तु सल्त्सल्टिति । नित्यस्नानविषये तूशनाः -

सच्छूदः स्नायादसच्छूदः पाणिपादं पक्षालयेत् । इति ॥ ५३ ॥

श्राद्धकर्म ॥ ५४ ॥

अमावास्यायामित्यारभ्य यछ्राज्यकर्म वक्ष्यते तद्पि शूद्रस्य कर्तव्यं मन्त्र-वर्जम् ॥ ५४ ॥

भृत्यभरणम् ॥ ५५ ॥

मृत्यों भरणीयः पोष्यवर्गः । तस्य च भरजं कर्तव्यम् । तेन तद्नुरूपमर्था-जनमप्यस्य कर्तव्यामिति ॥ ५५ ॥

स्वदारवृत्तिः ॥ ५६

स्वेष्वेव दारेष्वस्य वृत्तिः । सजातीयेष्विष परदारेषु वेश्यासु च पसञ्ज-न्दण्डच इति । अपर आह—स्वदारवृत्तिरेवास्य भवति । नाऽऽश्रमानारपाप्तिरिति ॥ ५६॥

परिचर्या चोत्तरेषाम् ॥ ५७ ॥

स्य हजरेषां त्रयाणां वर्णानां परिचर्या शुश्रूषा च ॥ ५७ ॥ सेषा वृत्त्वर्थेत्याह-

तेभ्यो वृत्तिं लिप्सेत ॥५८॥ वेभ्यः परिचरितेभ्यो जीवनं लिप्सेत ॥ ५८॥ तत्र पूर्वं पूर्वं परिचरेत् ॥ ५९॥

तथा चाऽऽपस्तम्बः-पूर्वस्मिन्पूर्वस्मिन्वर्णे निःश्रेयसं भूय इति । तदेवंयथा याजनाध्यापनपतिग्रहेषु त्राह्मणस्य पतिग्रहो मुख्या वृत्तिस्तथा शूद्रस्य परिचर्या। तत्रापि पूर्वास्मिन्पूर्वास्मिन्वर्णे इति ।। ५९ ॥ जीर्णान्युपानच्छत्रवासःकूर्चादीनि ॥६०॥

कूर्चं तृणादि । शेषं प्रसिद्धम् । जीर्णान्युपभुक्तान्युपानदादीनि परिचरते शूद्राय देयानि । अयं तु शुश्रूषावृत्तेः शूद्रस्य नियमो न गृहस्थवृत्तेः । तस्य तु वृत्त्यनपक्षे सामान्याकारेण विशेषत्वम् ॥ ६० ॥

पुनः पक्रतमनुसरति—

उच्छिष्टाशनम् ॥६१॥

भोजनपात्रे यद्भक्तावशिष्टं तदस्याशनम् । नात्रासणायोच्छिष्टं पयच्छेदि-त्येतत्तु दासविषयम् । गृहस्थशूदविषयमन्ये । तथा च न्याघः—

उच्छिष्टरनं दातव्यं शूद्रायागृहमेधिने ।
गृहस्थाय तु दातव्यमनुष्टिष्टं दिने दिने ॥ इति ।। ६९ ।
िर्माणकार्यः । ६२ ॥

शिल्पानि चित्रकर्माद्दानि । तैरप्ययं वर्तेत । अत्र मानवा विशेषः— अशक्नुवंस्तु शुश्रूषां शूद्धः कर्तुं दिजन्मनाम् पुत्रदाराद्ययं माप्तो जीवेत्कारुककर्माभिः ॥ इति ॥ ६२ ॥

यं चायमाश्रयद्भर्तन्यस्तेन क्षीणोऽपिताः ६३ ॥ 🕝 🚃

परिचर्यया वर्तमानः शूद्रो यि क्षिणः कर्म कर्तुमसमर्थी भवति तथा(दा, अपि यमसौ पूर्वमाश्रितः कर्माण्यकरोत्तेनासौ भर्तव्यः । पूर्वक्रतापेक्षया ॥ ६३ ॥ तेन चोत्तरः ॥ ६४ ॥

अतिन च श्रेद्रणोत्तरो वृत्तिक्षीणो भर्तन्यः शिल्पादिभिः । पूर्वकतापेक्षयैव । अत्र जातूकण्यैः—

यो नीचमाश्रयेदार्थ आत्मानं दर्शयेत्सदा ।
आत्मानं दासवैतक्तवा चरेन्नीचोऽपि तं प्रति ॥
दिशो बासणो दान्तो वेदानां चैव पारगः ।
योदणापि सदाऽप्येष भर्तव्योऽनाश्रितोऽपि सन् ॥

बिभूयाद्बासणं नित्यं सर्वयत्नेन बुद्धिमान् । अन्यं चाप्यानृशंस्यार्थं श्रृद्रोऽपि द्रव्यवानभवेत् ॥ इति ॥६४॥ तद्थोऽस्य निचयः स्यात् ॥ ६५ ॥

अस्य शूद्रस्य निचयोऽर्थसंचयस्तदर्थः स्यात्तस्योत्तरस्य पोषणार्थः स्यात् । पूर्वसूत्रस्य हेतुरयम् ॥ ६५ ॥

अनुज्ञ तोऽस्य नमस्कारो मन्त्रः ॥ ६६ ॥

अस्य शूद्रस्य वैश्वदेवादिषु तत्त्वेद्दवतापदं चतुर्थ्यन्तं मनसा ध्यात्वा नमो नम इत्येवस्त्रपो मन्त्रोऽनुज्ञातो धर्मज्ञैः । अपर आह-

देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्ब एव च । नमैः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेवै नमो नमः ॥

इत्ययं मन्त्रो नमस्कारशब्देन विवक्षितः । स पित्र्येषु कर्मसु भवति । तच्चाऽऽह गृक्षकारः-ब्राह्मणानुपवेश्य देवतादिकं मन्त्रं जपेत् । ६६॥

पाकयज्ञैः स्वयं यजेतत्येके ॥ ६७ ॥

पक्वगुणकेष्वपक्वगुणकेषु च गार्सेषु कर्मसु पाकयज्ञशब्दः प्रसिद्धः। यथाऽऽहाऽऽशस्तम्बः—छौकिकानां पाकयज्ञशब्द इति ॥ ६७॥

सर्वे चोत्तरोत्तरं परिचरेयुः ।। ६८॥

सर्व एव वैश्यादयोऽज्युत्तरमृत्तरं वर्णे परिचरे वृने केवलं शूद्र एव ब्राह्मणस्य तूत्तरो नास्ति । मध्ये क्षत्तियवश्यो तथाऽपि सर्वशब्दे बहुवचर्नमवान्तरप्रभवाणां ग्रहणाथम । अपर आह समानेऽपि वर्णे यो योऽपि गुणत उत्तरस्तं तमवरोऽवरः परिचरेदित्येवमर्थम् ॥ ६८ ॥

आर्यानार्ययोर्व्यतिक्षेपे कर्मणः साम्यं (साम्यम्)॥६९॥ आर्यस्रैवर्णिकः । अनार्थः शूदः । तयोः कर्मण आचारस्य व्यति-क्षेपे व्यत्यासे सति तयोः साम्यमेव भवति न परिचार्यपरिचारकमावः । ब्राह्मणादिरप्यनार्यकर्मा चेन्न शूद्रेण परिचरणीयः । शूद्रोऽप्यार्यकर्मा

१ क. ख. घ. स्यान्नपू । २ ग. मः स्वाहायै स्वधायैः । ३ ग. व भवत्विह । घ. व भवत्युत । ४ ग. नमन्त । ५ क. ख. घ. पेऽभ्यासे ।

११

चेदनार्यकर्मभिरितरैर्जात्यपकर्षेण नावमन्तव्य इति । एतेन ब्राह्मणश्रत्त्रियौ श्रत्त्रि-यवैश्यो च व्याख्यातो । (अभ्यासोऽध्यायसमाप्त्यर्थः) ॥ ६९ ॥

> इति श्रीगौतमीयवृत्तौ हरदत्तविरचितायां मिताक्षरायां द्वितीयप्रश्ने प्रथमोऽध्यायः॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः।

आर्यानार्ययोर्व्यतिणेपे निवारयिता राजा । अतस्तद्धर्मानाह-राजा सर्वरुयेष्टे बाह्मणवर्जम्॥ १॥

राजाऽभिषिकः सर्वस्य स्वजनपदवर्तिनो जनस्येष्टे निग्रहानुग्रहादिषु । किमाविशेषेण नेत्याह --ब्राह्मणवर्जं ब्राह्मणान्वर्जियत्वा । ततस्ते च्यवन्तोऽाप स्वर्धेर्मात्सान्त्वेन स्थाप्याः । सैर्विकियासु स्वातन्त्र्यख्यापनार्थं वचनम् । यथाऽऽह नारदः-

अस्वतन्त्रौः प्रजाः सर्वाः स्वतन्त्रः पृथिवीपातिः ॥ इति ॥ १ ॥ शास्त्राविरुखेष्वेवास्य स्वातन्त्र्यमित्याह-

साधुकारी साधुवादी ॥ २ ॥

साघुकारी शास्त्राविरुद्धाचरणशीलः । साधुवादी व्यवहारकाले स्वपक्षा परवेक्षसमवादी ॥ २ ॥

त्रय्यामान्वीक्षिक्या वाडिभविनीतः ॥ ३॥

अग्यजुःसामात्मकास्त्रयो वेदास्त्रयी । अथर्वणश्च वेद्स्तेष्वन्तर्भवति तंत्रापि हि मन्त्रा ऋची यजूंपि वा भेद्व्यवहारस्तु प्रवचननिभित्तः। शान्तिकपौ ष्टिकादिममयभेदानिबधनो वा। आन्वीक्षिकी न्यायविद्या। तयोरिभविनीतो गुरुभिः सम्यक् शिक्षितः । मनुस्तु-

नैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाधतीम् । · आन्वीक्षिकीं चाऽऽत्मविद्यां वार्तारम्भं च लोकतः ॥ इति ॥ ३ ॥

शुचिर्जितेन्द्रियो गुणवत्सहायोपायसंपन्नः ॥ ४ ।

शुचिः, अन्तः परद्रघ्यादिष्वस्पृहः, बाहिः स्नानादिपरः । जितोन्द्रयः

१ ग. मीत्सत्त्वेन न स्था। २ क. वीवित्रिया। घ. वैवित्रिया। ३ ग. न्त्रा द्विजाः सर्वे स्व । ४ क. ख. भ. पक्षसूनृतवा ।

स्थि। सहिष्यः पानामित्यादिव्यसनरहितः । गुणाः शान्त्यादयः । तद्विद्विस्तिन् सामादिभिः सहिष्यः संपन्नः समवेतः । सामादिभिश्वोपायः संपन्नो देशकालाव-स्थानुरूपं तेषां पयोक्ता । सर्वत्र स्थादिति वक्ष्यमाणमपेक्ष्यते ॥ ४ ॥

समः प्रजास स्यात् ॥ ५॥ 🗍

व्यवहारकाले द्वेष्ये विये च समः स्यात् ।: ५॥

हितमासां कुर्वीत ॥ ६ ॥

आसां पजानां योगक्षेमयोरवाहितः स्यात् ॥ ६ ॥

त भुपर्यासीनमघस्तादुपासीरत्रन्ये बाह्मणेभ्यः ॥०॥

तमेवंगुणं राजानमुपरि सिंहासनादावुच्चैरासीनमधस्ताद्भूमावेवाऽऽसरिन् । किमाविशेषेण । न । अन्ये ब्राह्मणेभ्यो ब्राह्मणव्यातिरिक्ताः । अध उपासीरिनन्त्येव सिद्ध उपर्यासीनामिति स्वभावानु । दः । सर्वदाऽयमुपर्यासीनो भवति न तु रहस्यपि भूमाविति ॥ ७॥

तेऽप्येनं मन्यरन् ॥८॥ तेऽपि ब्रासर्णौ एनं राजानं मन्येरन्नाशीर्वादिभिः पूजयेयुः ॥८॥ वर्णानाश्रमांश्च न्यायतोऽभिरक्षेत् ॥९॥

वर्णा बालणादयः । आश्रमा बलचर्यादयः । तान्न्यायतो यथाशास्त्रं पष्ठांशादिभागस्वीकारेणाभिरक्षेदिभितो रक्षेत् । यथा वर्णाश्रमधर्मानुष्ठानेन निरपा-यास्ते भवेयुः । अथवा न्यायत इति यथा देशादिधर्माणां भङ्गते न भवति तथां रक्षेदिति । अनुलोमादयोऽवान्तरमभवा वर्णा एष्वेवान्तर्भृताः । रक्षणं सर्वभूता-नामिति चोरादिभ्यो रक्षणं पूर्वोक्तम् । इदं तु वचनं वर्णाश्रमधर्मेषु संकरो मा मूदिति ॥ ९ ॥

चलतश्चैतान्स्वधर्मे स्थापयेत्॥ १०॥

ते यद्यालस्यादिना स्वधर्माच्चलेयुस्ततश्वलत एतान्स्वधर्म एव निगृह्य स्थापयोदीति ॥ १०॥

कस्मात्पुनरेवमसौ करोतीत्याह-

१ ग. णाश्चारित्राद । २ क ख. तथा पूजयेदि । घ. था पूजेदि । ३ ग. णीश्रमेण्ये ।

२द्वितीयोऽध्यायः]

धर्मस्य ह्यंशभाग्भवतीति ॥ ११॥

विज्ञायते हि यस्माद्रक्षतो धर्मस्यांशो भवति । उपलक्षणमेतत् । अरक्षतोऽ-प्यधर्मस्यांशो भवतीति ज्ञेयम् । अत्र ननुः—

> सर्वतो धर्मषड्भागो राज्ञो भवति रक्षणात् । अधर्मस्यापि षड्भागो भवत्यस्य सरक्षतः ॥ इति ॥ ११ ॥ ब्राह्मणं च पुरोद्धीत विद्याभिजनवाम्रपवयः-शीलसंपन्नं न्यायवृत्तं तपस्विनम् ॥ १२ ॥

स एष बहुश्रुतो भवतीत्यारभ्योक्ता विद्या । विशिष्टकुले जन्माभिजनः । वाक्संस्कृता भारती । रूपं मनोहरम् । वयो मध्यमं नातिवालो नातिस्थविर इति । श्रीलमन्तःकरणशुद्धिर्वासं वाऽनुष्ठानम् । एतौर्विद्यादिभिः संपन्नं समृद्धम् । न्यायवृत्तं लोकाविरुद्धाचारम् । तपस्विनमभोगपरम् । एवंभूतं वासणं पुरीद्धीत पुरोहितं कुर्वीत ॥ १२ ॥

सर्वेषु कर्मसु पुरो धीयत इति पुरोहितस्तद्रश्यति—

तत्त्रसूतः कर्माणि कुर्वीत ॥ १३ ॥

तेन पुरोहितेन पस्तोऽनुज्ञात इदामित्थं कर्तन्यमिति छतोपदेशः कर्माण श्रीतस्मार्तादीनि पोराणिकानि नित्यनैमिनिकानि शान्तिकपौष्टिकान्याभिचारिकाणि कुर्वीत । तत्मसूत इत्यस्य मूछत्वेन ब्राह्मणमाकर्षति ॥ १३ ॥

ब्रह्मप्रसतं हि क्षत्त्रमृघ्यते न व्यथत इति च विज्ञायते ॥ १४ ॥

वस बाह्मणस्तेन पसूतमनुज्ञातं हि क्षत्वं क्षात्त्रियमृ(यजातिर्कः) घ्यते समृद्धं भवतीति न व्यथते न कृताश्चिद्धिभेति । निरपायं स्यादित्यर्थः । इत्येवं प्रकारेण विज्ञायते परम्परया दृश्यत ॥ १४ ॥

यानि च दैवोत्पातचिन्तकाः प्रब्रुयुस्तान्याद्रियेत ॥ १५ ॥

दैवचिन्तका ज्योतिर्विदः । उत्पातचिन्तकाः शकुनज्ञाः । उत्पातानां चाये फल्लानि जानते । ते यत्पब्र्युरिद्मन्यग्रहवैक्टतभिद्मद्य दुःशकुनमयमद्योत्पातोऽय-भेषां परिहार इति च तान्यपि सर्वाण्यादियेत नोपेक्षेत ॥ १५ ॥ किमर्थम्-

तद्धीनमपि होके योगक्षेमं प्रतिजानते ॥ १६॥

न केवलं रक्षणादिविहितानुष्ठानं किं ताई तद्धीनमि दैवोत्पातिचन्त-कैर्यहवैक्तादों यत्कर्तव्यतया प्रोक्तं तद्धीनमिप योगक्षेमं भवति । अलब्धस्य लाभो येगः । लब्धस्य रक्षणं क्षेमः । तयोः समाहारद्वंद्वेः । आयोगमणा विन्देद्योगक्षेमो नः कल्पतामित्यादोवकावयात्यादिवत्परविलङ्गाता । तद्यथा-एकश्च विंशतिश्चैकविंशतिः । तं योगक्षेमं प्रतिजानत एक आचार्या इति ॥ १६॥

> शान्तिपुण्याहस्वस्त्ययनायुष्यन्मङ्गलसंयुक्तान्याभ्यु-द्यिकानि विद्वेषणसंवननाभिचारदिषद्व्यृद्धियु-कानि च शालामौ कुर्यात् ॥ १७॥

तनाऽऽपस्तम्बो राज्ञस्तु विशेषाद्वक्ष्याम इति प्रकृत्य वेश्माऽऽवस्थः, समिति निस्थानान्यभिसंधायाऽऽह सर्वेष्वेवाजस्ना अग्नयः स्युरिप्रपूजा च नित्या यथा गृहभेध इति । तेषामन्यतमं।ऽत्र शालाधिनौँपासनो नापि नेताधिगांद्वेषु श्रीतेषु कर्मसु तयोर्नियतत्वात् । शान्तिसंयुक्तं दैवोत्पातचिन्तकसूचितापचयनिवृत्त्यर्थं यित्त्र्यते ग्रहशान्तिमहाशान्त्यादि । पुण्याहसंयुक्तं दिनदोषनाशाय विवाहादौ यित्त्र्यते । स्वस्त्ययनसंयुक्तं यात्रादौ यित्त्र्यते । आयुष्मत्संयुक्तं जन्मनक्षत्रान्दावायुर्वृद्धवर्थं यित्त्र्यते । दूर्वाहोमादि मङ्गलसंयुक्तं गृहमवेशादौ यित्त्र्यते वास्तुहोमादि । एतान्याम्युद्यिकान्यम्युद्यानिमित्तानि । विद्वेषणसंयुक्तं येनास्य श्रुत्रोमादे । एतान्याम्युद्यिकान्यम्युद्यानिमित्तानि । विद्वेषणसंयुक्तं येनास्य श्रुत्रोमादे । अभिवारसंयुक्तं येनास्य श्रुत्रो येनास्य श्रुत्रो विश्वत्रेष् । अभिवारसंयुक्तं येनास्य श्रुत्रवे । स्वत्रते । अभिवारसंयुक्तं येनास्य श्रुत्रवे । स्वत्रते । अभ्वत्रिमावो व्युद्धिः । दिव्यतं व्युद्धिः । येनास्य श्रुत्रवे । स्वत्रवे । उच्चाटनादीः न्येतानि च शालामो कुर्यात् । कः । राजा । तस्य च कर्तृत्विभिद्मेव । येत्तत्सं-विधानृत्वमर्थसंपदानादिना । तद्यथा योऽप्यकान्ते वृष्णीमासीनो भक्तवीजवली वर्दैः प्रतिसंविधत्ते सोऽप्युच्यते पञ्चभित्तंलः रूष्ट्यतिति । अपर आह—

१ ग. द्वः । योगक्षेमः प । २ क. ख. घ. यदुत सं । ३ ग. ईस्तैः छ ।

आभ्युद्यिकानि पुरोहितः स्वयं कुर्यादितराणि कारयोदिति । यस्मिश्रायावाभ्युद-यिकानि न तत्रेतराणि कुर्वन्ति किंत्वग्न्यन्तरे पूर्वोक्तानामन्यस्मिन् ॥ १७॥

यथाक्तमृत्विजोऽन्यानि ॥ १८ ॥

अन्यानि गार्शीण श्रोतानि च तानि कर्माणि यथोक्तं यस्मिन्कर्णण यावन्त ऋत्विज उक्तास्तावन्तः कुर्युः । तद्यथा-औपासने चामिहोत्रे चाध्वर्युरेकः। द्रीपूर्णमासयोश्रत्वारः । चातुर्भास्य पश्च । पशुवन्ध षट् । ज्योतिष्टोमादौ षोडश । अत्र मनु:--

पुरोहितं च वृणुयाद्वृणुयादेव चर्त्विजः । इति । . तत्र येष्वेव ऋत्विक्तत्र पुरोहितोऽध्वर्युर्बेहोत्यन्ये १ १८ ॥ - तस्य च व्यवहारो वेदो धर्मशास्त्राण्यङ्गान्युपवेदाः क्षाणम् । १९॥

व्यवहरन्त्यनेनेति व्यवषारः । तस्य राज्ञः प्रजापालनेअधिकतस्य वेदादीनि व्यवहारसाधनानि । यथा वेदादिष्वामिहितं तथा व्यवहरोदीति । व्यवहारो छोक-मर्यादास्थापनम् ॥ १९॥

देशजातिकुलधर्माश्चाऽऽम्नायैरविरुद्धाः प्रमाणम् ।, २०॥

देवाधर्मेषु जातिधर्मेषु च पतिनियतमनुष्ठीयमानेषु यद्यपि वेदादि मूलभूती नोपलम्यते तथाऽपि यदि वेदादिभिविरोधो न भवति तथैव ते परिपालनीया न तु मूर्छौनियोगेन विहन्तव्या इति । तत्र देशधर्माः—मेषस्थे सवितरि चौर्छेषु कुमार्यो नानावर्णे रजोभिर्भूमावादित्यं सपारिवारमालिख्य सायं पातः पुजयन्ति । मार्गशिष्यीं चार्छछता ग्रामे पर्यटच यस्रब्धं तद्देवाय निवेदयन्ते । कर्कटस्थे सवितरि पूर्वयोः फल्गुन्योर्भगवतिमुगामाराध्य यथाविभवमर्गद्भयोऽङ्कुरितं मुद्गस्र _ वर्णं च पयच्छन्ति । मीनस्थे सवितर्युत्तरयोः फल्गुन्योर्गृहमेधिनः श्रियं देवीं पूजयन्ति । जातिधर्माः शूदा विवाहे मध्ये स्थूणां निखाय सहस्रवर्तीरकस्यां स्थाल्यां निधाय पातिवार्ती दीपानारोप्य वधूं हैंस्ते गृहीत्वा पदक्षिणयन्ति । अन्यद्प्येवेजातीयकं दृष्टव्यम् । कुलधर्मः-केचिन्मध्यशिखाः । केचित्पृष्ठशिखाः। पवचनाद्यस्तु कालभेदेनोभयतः चिखाः । संबन्धश्रेते स्तैः स्ववर्गेरिति ।

१ क. वेशः पु । २ गः लानुषयो । ३ ग. भ्योऽङ्कुरितान्मुदाहाँ । ४ ग. हदो ।

त्वाम्नायविरुद्धा मातुलसुर्तापारिणयनम् , अनधीत्य वेदानन्यत्रोश्रम इत्यादयी देशधर्मा नेह प्रमाणम् ॥ २० ॥

कर्पकवाणिक्पशुपालकुसीदिकारवः स्वे स्वे वर्गे ॥२१॥

कर्षकाः रुषिजीविनः । वणिजः कयविकयव्यवहारपराः । पशुपाछा गोपाछाः । कुरीदिनो वार्धुषिकाः । कारवस्तक्षरजकाद्यः । एते स्वे स्वे वर्गे स्ववर्गसेवेदे प्रमाणम् ॥ २१ ॥

ततश्च कर्षकादिषु धर्मविपतिपत्तौ सत्यां-

तेभ्यो य ाधिकारमर्थान्प्रत्यवहृत्य धर्मव्यवस्था ॥२२॥

तेभ्यस्तत्तद्वर्गेभ्यो यथाधिकार्रं ये यत्र वर्गे व्यवस्थापकत्वेनाधिकतास्ते भ्योऽर्थानाचारपकारान्पत्यवहत्य श्रुत्वाऽवधार्य धर्मव्यवस्था कार्यो । इत्थमस्माकं निकाम आचार इति तैरुक्ते तथैव व्यवस्थाप्यामिति ॥ २२ ॥

अथ ते पक्षपातेन मिथ्या ब्रूयुस्तदा कथं तत्त्वं ज्ञातव्यम्—

न्यायाधिगमे तर्कोऽभ्युपायः ॥२३॥

न्याययुक्तस्यार्थस्याधिगमेऽवधारणे वकोऽनुमानमभ्युपायः। अभिधीत्वर्था नुवादी । तत्र मनुः—

> आकारैरिङ्गिनैर्गत्या चेष्टया () हर्षितेन च । नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥ इति ॥ २३ ॥ ततश्य—

> > तेनाभ्यूह्य यथास्थानं गमयेत् ॥ २४ ॥

तेन तर्केणाभ्यूह्मैवनयमर्थो भवितुमईतिति निश्चित्य यथास्थानं यत्र पक्षेऽ-थैस्तत्र गमयेत् ॥ २४ ॥

अथाऽऽत्मन एकािकनस्तर्केणािप दुरिधगमत्वे साते— विप्रतिपत्तौ त्रैविद्यवृद्धेभ्यः प्रत्यवहृत्य निष्ठां गमयेत्॥२५॥ विप्रतिपत्तौ सत्यां दुरिधगमत्वे साति त्रैविद्यवृद्धान्समानाय्य तैः सह

() ग. षुस्तके समासे भाषितेनेति पाठान्तरम् ।

१ ग. काय आ । २ ग. न्यायार्थस्याधि ।

विचार्यार्थतत्त्वं तेभ्यः पत्यवहत्य निष्ठां गमयेत् । यत्र पक्षेऽर्थो निष्ठितस्तं गमयेत् ॥ २५॥

किमेवं कुर्वतो भवाते-

तथा ह्यस्य निःश्रेयसं भवति ॥२६॥

एवमस्य निर्णयं कुर्वतो निश्रयसमुभयोर्छोकयोर्भवंति । इह जनानुरागेणा-मुत्र धर्मपाप्त्या चेति हेतो:॥ २६ ॥

न केवलं राज्ञ एव सिद्धिः । किं तर्हि सह ैनिर्णेतॄणां नासणानामपीति दर्शियतुं श्रुतिमुदाहरति—

ब्रह्म क्षत्त्रेण संपृक्तं देविपतृमनुष्यान्धार्यतीति विज्ञायते ॥२०॥ ब्रह्म त्रैविद्यलक्षणं क्षत्त्रेण संयुक्तं राज्ञा सह धर्मं विकिश्चदेविपतृमनुष्यान् न्धारयतीति श्रुतिसिद्धम् । एवं निर्णये कते यथोक्तं कर्मनुतिष्ठन्ति मनुष्याः । तच्चिध्मर्यं कर्म दैवा उपजीवन्ति पितरश्च न क्षीयन्त इति न्यायेन सर्वेषां धारणं भवतीति ॥ २०॥

अथ दौ:शील्याद्व्यवस्थां नार्मुमन्यन्ते ततः-

दण्डो दमनादित्य।हुस्तेनादान्तान्दमयेत् ॥२८॥

द्मनयोगाद्दण्डशब्दस्य दण्डत्वभित्याहुर्धर्मज्ञाः । तेनादान्तानवश्यान्द्मयेद्वशं नयेत् । दण्डेनादान्तान्दमयोदित्येवं सिद्धे दण्डः –

धिग्दण्डं प्रथमं कुर्याद्वाग्दण्डं तदनन्तरम् । तृतियं धनदण्डं तु वधदण्डं ततः परम् ॥ देवद।नवगन्धर्वा रक्षांसि पतन्योरगाः ।

तेअपि भोगाय कल्ब्यन्ते दण्डेनैव निपीडिताः ॥ इति ॥२८॥

अथैवं शास्त्रवश्यतया राज्ञा च स्वधर्मे स्थाप्यमानानां वर्णानामाश्रमाणां च कथं सिव्हिरित्यत आह—

वर्णाश्रमाः स्वस्वधर्मनिष्ठाः प्रेत्य कर्मफलमनुभूय ततः शेषेण विशि १देशजातिकुल ६पायुःश्रुतचि-

१ ग. वतीति । २ ग. ह प्रश्नानु । २ ग, निर्णयतां । ४ ग. नुवर्वन्ते । ५ ख, ग, घ, णीश्चाऽऽश्र ।

*

त्र (वृत्त) वित्तसुखमेधसी जन्म प्रातिपद्यन्ते ॥ २९॥

वर्णा बाह्मणायः । आश्रमा बह्मचयादयः । त स्वधर्मानेष्ठा वर्णपयु कानाश्रमपयुक्तांश्र्य धर्माननुष्ठितवन्तः प्रेत्य मरणेन लोकान्तरं गत्वा तस्य कर्मणः फलं स्वर्णादिकमनुभूय ततस्तदनन्तरं शेषेण भुक्ताव-शिष्टेन कर्मणा विशिष्टदेशादिकानभुक्त्वा जन्म प्रतिपद्यन्ते । तत्र विशिष्टशब्दो देशादिभिः सर्वैः संबध्यते । विशिष्टो देश आर्यावर्तादिः । विशिष्टणातिकीहा-णजातिः । विशिष्टकुलमध्ययनादिसपंचम् । विशिष्टक्षं कान्तिमत् । विशिष्टायुः । सहषोद्दशं वर्षशतम् । विशिष्टक्षं कान्तिमत् । रागरहितत्वम् व्यायुषो विशेषः । विशिष्टश्रुतं बाह्मणश्र बहुश्रुत इत्यत्र व्याख्यातम् । विशिष्टन्वनुपावि चारितम् । विशिष्टावेत्तं धर्मार्जितं धर्मे प्रयुज्यमानं च । सुखं निरपायस्थानाधिष्टानेनानिषिद्धसुखसवनम् । विशिष्टमेधा प्रन्थार्थयोप्रहणशक्ति । स्विशिष्टमेधा प्रन्थार्थयोप्रहणशक्ति । स्विशिष्टमेधा प्रन्थार्थयोप्रहणशक्ति । कर्माण भुज्यमानानि पुण्यान्यपुण्यानि च सशेषाण्यवं भुज्यन्ते । ऐहिकस्य शरीः रग्रहणादेरि पुण्यापुण्यनिवन्धनत्वात् ॥ २९ ॥

विष्व ो विपरीता नश्यन्ति॥ ३०॥

ये वर्णाश्रमाः स्वानि कर्माणि यथावन्नानुतिष्ठन्ति ते विषरीता विष्वश्चो नानायोनीर्गच्छन्तो नश्यन्ति । अनर्थपरम्परामनुभवन्तीति ॥ ३०॥

तानाचार्योपदेशो दण्डश्च पालयते । ६१॥

तान्विपरीतान्यथोक्तमकुर्वतो वर्णानाश्रमांश्वाऽऽचार्योपदेशस्तावत्पास्रयते । तत्राप्यतिष्ठतो राजदण्डः ॥ ३१ ॥

यत एवम् -

तस्माद्राजाचार्यावनिन्द्यावनिन्द्यौ ॥ ३२ ॥

तस्माखेतो राजाचार्यौ मान्यावानिन्द्याविति । यद्यपि नियमनकाछे हितै-षितया पमुखपुरुषौ भवतस्तथाऽपि तयोर्निन्दा न कार्यो । [अभ्यासोऽध्याय-समाप्त्यर्थः ।। ३२ ।

इति श्रीगौतमीयवृत्तौ हरदत्तविरचितायां मिताक्षरायां द्वितीयप्रश्ने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽघ्यायः।

दण्डैनादान्तान्दमयेदित्युक्तम् । तत्र कियत्यपराधे कियान्दण्ड इत्यत आह – शूद्रो दिजातीनभिसंधायाभिहत्य च वाग्दण्ड पारुष्याभ्यामङ्गमोच्यो येनोपहन्यात् ॥ १ ॥

शूदश्रतुर्थो तर्णः । स द्विजातीन्त्राह्मणादिश्चोन्वर्णान् । वाक्पारुष्येणाभि-संधायाभिभूय दण्डपारुष्येणाभिहत्य च । अभिरभिसंधिपूर्वे बुद्धिपूर्वं ताडयित्वा । दण्डग्रहणं हस्तादेरप्युपलक्षणम् । एवं कुर्वन्नङ्गमोच्योऽवयवेन वियोजनीयो ये-नाङ्गेनोपह्रन्यादपराधं कृर्यात्तदङ्गं मोच्यः । हस्तेन ताडने हस्तच्छेदः पादेन वाडने पादच्छेदो वाचा जिह्वाच्छेदः । अत्र मनुः –

येनाङ्गेनावरो वर्णो बाह्मणस्यापराध्नुयात् । तद्ङ्गः तस्य च्छेत्तव्यं तन्मनोरनुशासनम् ॥ इति । पारुष्यग्रहणात्परिहासेनापियवचने परिहासादिना ताडने च नेदं भवति ॥ १ ॥

आर्यस्च्याभेगमने लिङ्गोद्धारः स्वहरणं च ॥ २ ।

शूद्र इति परुतं षष्टचन्तमपेक्षते । आयांस्रेवणिकाः । तेषां चेत्स्य शूद्रोऽभिगच्छेत्तस्य छिङ्गोद्धारो छिङ्गोत्पाटनं कार्यं यच्च यावच्च स्वं तस्य च हरणं दण्डः । आर्योभिगमनिययेव सिद्धे स्विमहणम् , आर्थगृहीतायां शूद्राया-मपीति सूचनार्थम् । तत्र वैश्यास्त्रियां स्वहरणं क्षत्त्रियामां छिङ्गोद्धारः । ब्राह्मण्या-मुभयामिति ॥ २ ॥

गोप्ता चेद्दधोऽधिकः॥ ३॥

स यदि शूद्रस्तासां गोप्ता रक्षिता भवति तदा वधः कार्यः। अधिक-ग्रहणात्पूर्वीकदण्डद्वयमपि भवति ॥ ३ ॥

> अथ हास्य वेदमुपज्ञाण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रति-पूरणमुदाहरणे जिह्वाच्छेदो धारणे शरीरभेदः

1181

अथ हेति वाक्यालंकारे । उपश्रुत्य बुद्धिपूर्वमक्षरग्रहणमुपश्रवणम् । अस्य १२

बूदस्य वेदमुपबूण्वतस्त्रपुजतुम्यां त्रपुणा जतुनाः च दवीकृतेन श्रोत्रे पतिपूराय-तब्ये । उपश्रवण राब्देन यदच्छया ध्वानिमात्रश्रवणे न दोषः । स चेद्द्विजा-तिभिः सह वेदाक्षराण्युदाहरेदेच्चरेत् । तस्य जिह्वा छेद्याः । निर्माष्ट्रीः साति यदाँऽन्यत्र गतोऽपि स्वयमुच्चारियतुं शक्नोति ततः प्रशादिना शरीरमस्य भेद्यम्

असिन्शयनवाकपथिषु समप्रेप्सदेण्ड्यः ॥ ५ ॥
- भीगणिर्वे वर्षानादिषु द्विजातिभिः सह साम्यं पेप्सति तत्तुत्यभाव ततोऽसो
ाहार्विकार वर्षानादिषु द्विजातिभिः सह साम्यं पेप्सति तत्तुत्यभाव ततोऽसो
ाहार्विकार वर्षानादिषु द्विजातिभिः सह साम्यं पेप्सति तत्तुत्यभाव ततोऽसो
ाहार्विकार

दण्डयः । दण्डश्राऽऽपस्तम्बेन दश्चितः – वाचि पथि शय्यायामासन इति समी भवतो दण्डनासौ ताडय इति । अत्र मानवो विशेषः – दण्डुअहणं हरवाजेरणः ।

सहासनगभिषेष्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टकः ।

कंटचां क्रताङ्को निर्वास्यः स्फिजौ वाऽप्यस्य कर्तयेत् ॥ इति ॥५॥

भाष्ट्रम के हे हैं है है। हार्ने अस्त्रियों बाह्मणाकोशे ॥ ६ ॥ तर्हाराय पर

क्षत्तियश्चेद्बासणमाकोशेद्वाचा परुषया निन्देत्ततः शतं दण्डचः । दण्डप्रकरेणे सर्वत्र ताम्रिकस्य क्वाषीपणस्य ग्रहणामिति स्मार्तो व्यवहारः । दातं काषापणानि दण्डचै । दण्डपारुष्ये द्विगुणम् । अथाऽऽह बृहस्पतिः-

क कार का क्वांक्पारुष्ये कते यस्य यथा दण्डो विधीयते । कार्यकार्यक्षिक

अध्यक्ष्य देवत विस्थैव दिगुणं दण्डं कार्येन्मरणादते ॥ १ ॥ इति ॥६॥५ र्वण्ड

अध्यधं वैश्यः ॥ ७॥

वैश्यस्तु ब्राणणाकोशेऽध्यर्घ शतं दण्डचोऽधाधिकं पश्चाशद्धिकं शत दण्डचः ॥ ७॥ . इ.ची.च । : मेर छ

ब्राह्मणस्तु क्षात्रिये पश्चाशत् ॥ ८। 🗅

क्षत्तियाकोरो बाह्मणस्तु पञ्चाशत्पणान्दङ्यः ॥ ८ ॥

तद्धं वैश्ये ॥ ९॥ वैश्याक्रोशे तद्धं पश्चिवशतिषणान्दण्डयः ॥ ९ ॥

·ci

B

॥ १९ ॥ ए नः शुद्धे किंचित् ॥ १० ॥ १० ॥ वर्षा

ि शिल्बाके त्वाकुष्टे न किंचिद्पि द्रव्यं ब्राह्मणो दण्डयः। तिर्दि न वेकव्यमव चनादेव दण्डाभावः सिध्येत्। किंतु क्षत्त्रियवैश्ययोः श्रद्धाकोशे देण्डमापणार्थः मुक्तम् । तद्कमुशनसा→

श्रूद्रमाकुश्य क्षत्वियश्रतुर्विश्चतिपणान्दण्डभाग्वैश्यः षट्त्रिशत् । इति॥१०॥
शिक्तिः विद्यासणराजन्यवत्क्षत्त्रियवैश्यो । १११॥

बासणराजन्ययोः परस्पराक्तीये याद्या दण्डस्ताद्यः क्षत्वियवैश्ययो परस्पराक्तीये । तत्रथेवं सूर्वमूहितव्यम् । यतं वैश्यः क्षात्वियाकोये । क्षात्वियस्तु वैश्यः पश्चाद्यात् । प्रावियस्तु वैश्यः पश्चाद्यात् । प्रावियस्तु विश्यः पश्चाद्यात् । प्रावियस्तु विश्यः पश्चाद्यात् । प्रावियस्तु विश्यः पश्चाद्यात् । प्रावियस्तु विश्याः पश्चाद्यात् । प्रावियस्तु विश्याः पश्चाद्यात् । प्रावियस्तु विश्याः प्रावियस्तु । प्रावियस्तु । प्रावियस्तु । प्रावियस्त्र । प्रावियस्ति । प्रावियस्त्र । प्रावियस्ति । प

गिनिष्ठा । साह्यद्ण्डा किस्त्यदण्डा हिस्त । विकार विकार विकार विकार । विकार विकार विकार विकार विकार विकार विकार

स्तेयं चौर्यम् । स्तेयोपातं द्रव्यं किल्विषनिमित्तत्वात्किल्विषमुच्यते । स्तेयेनोपात्तं द्रव्यमष्टगुणमापादनीयं गूदस्य । कृतिर षष्ट्येषा । स्तेयिकिल्विषं सूद्रोऽष्टगुणमापादयदाते द्रव्हत्पेणः प्रतिपादयेदिति । तेत्रैको गुणः स्वामिने देयः । शेषो राज्ञे । उक्तं च चोरहतमवजित्येत्यादिनाः ॥ १२ ॥ अस्

द्विगुणोत्तराणीतरेषां प्रतिवर्णम् ॥ १३॥

इतरेषां वेश्यादीनां स्तेयिकिल्विषाणि प्रतिवर्णं द्विगुणोत्तराण्यापादनियानि । वैश्यस्य षोडरागुणं क्षत्त्रियस्य द्वात्रिंशद्गुणं ब्राह्मणस्य चतुःषाष्टिगुणामिति ॥ १३॥

कस्मादिदमेवामत्याहं -

विदुषोऽतिकमे दण्डभूयस्त्वम् ॥ १४ ॥

यथा यथा वर्णोत्कर्षेण विद्योत्कर्षस्तथा तथा विहितातिक्रमे दण्डभूयस्त्वं भवति । निषेधदोषं ज्ञत्वाऽपि पवर्तमानस्य दोषाधिक्यं भवति । अजानतस्त्व-न्धकूपपतनवदनुग्रहे ऽस्ति । अष्टापद्यमित्यादेरपवादः ॥ १४ ॥

१ क. ख. घ. वमन्यतरम । २ ग. नैकगुणं स्वामिने देयं शे।

फलहरितधान्यशाकादाने पश्चछःष्णलमस्पम् ॥ १५ ॥ फलमाम्रादि । हरितधान्यं स्तम्बेऽवास्थितं बीह्यादि । शाकं वास्तूकादि । एतेषां स्तयेनाऽऽदाने पश्चछःष्णलं दण्डः । छष्णलं गुझाबीजपमाणम् ।

माषा विंशतिभागस्तु ज्ञेयः कार्षापणस्य हि ।

कृष्ण उस्तु चतुर्थीयो माषस्यैष पकीर्तितः ॥ इति ।

पञ्चानां रुष्णलानां समाहारः पञ्चरुष्णलम् । अल्पं तचेत्फलादि अल्पमुद्रपूर्णमात्रम् । आधिके त्वष्टापाद्यमेव ॥ ५॥

पञ्जपीडिते स्वामिदोषः ॥ १६॥

पशुभिरुपहत सस्यादी पशुमतो दोषः । दण्डपरिमाणं वक्ष्यति ॥ १५॥। पालसंयुक्ते तु तास्मिन् ॥ १७॥

स चेत्पशुः पालाय स्वामिना समर्पितस्तदा तस्मिन्पाले दोषः। पालयतीति पालो गोपालः। इदं पमादकते, बुद्धिपूर्वे तु द्विगुणो दण्डः । तथा स्मृत्यन्तरे दर्शनात्॥ १७॥

पाथि क्षेत्रेऽनावृते पालक्षेत्रिक्रयोः ॥ १८ ॥

क्षेत्रिकः क्षेत्रवान्यस्य क्षेत्रं पथ्यनावृतं भवति तत्र पशुपीडिते पालक्षेत्रिकः योरुभयोर्देण्डोऽर्धमर्धम् । पालस्यानवधानात्क्षोत्रिकस्य वृत्त्यकरणाच्च ।

वृतिं च तत्र कुर्वीत यामुष्ट्रो नावलोकयेत् । इति मानवे दर्शनात् ॥ १८ ॥ दण्डपरिमाणमाह-

पश्च माषा गवि॥ १९॥

उशनसा माषो दर्शित:-

माषो विंशतिभागस्तु ज्ञेयः कार्षापणस्य हि । काकिणी तु चतुर्थाशो माषस्येष प्रकीर्तितः । इति ॥ माषाः पश्च गोपीडिते सस्यादौ दण्डः ॥ १९ ॥

षडुष्ट्रखरे ॥ २० ॥

इंद्रैकवद्भाकः । उष्ट्रखरे तूर्पहन्तरि प्रत्येकं षण्माषा दण्डः ॥ २० ॥ अश्वमाहिष्योर्द्श्॥ २१॥

लिङ्ग-मविवाक्षितम् । अश्वे माहिषे च पत्येकं दश माषा दण्डः ।।२ १॥ ा अजाविषु दी दी ॥ २२॥

अजेब्वविषु चोपसंहन्तृषु द्दी द्दी माषी । संभूय चरन्तीति बहुवचनम् मत्यजं मत्यविकं द्वी द्वी दण्डः ॥ २२ ॥

सर्वविनाशे शदः ॥२३॥

यथा पुनः परोहो न भवति तथा सर्वविनाशे शदो दण्डः। शद इति भागाभिधानम् । यावांस्तत्र भाग उत्पत्स्यते तावत्स्वाभिने देयम् । राज्ञे चानुरूपो दण्डः ॥ २३ ॥

शिष्टाकरणे प्रतिषिद्धसेवायां च नित्यं चैलपिण्डादूर्ध्यं स्वहरणम् ॥२४॥

शिष्टं विहितम् । नित्यं शिष्टस्याकरणे नित्यं च प्रतिषिद्धसेवायां चैछि। ण्डादृष्वं चैलमाच्छादनं पिण्डो ग्रासस्ताम्यामूर्ध्वं यावता तयोर्निवृत्तिस्ततोऽाधिकं यत्स्वं तस्य हरणं कार्यम् । अच्छादनासनार्थं यत्किंचित्परिहाप्यावशिष्टमस्य र्वं हर्तव्यमित्येवमतो निवृत्तेः ॥ २४ ॥

अदत्तादाननिषधविषयेऽपवादमाह-

गोग्न्यर्थे तृणमेधान्विरुद्दनस्पतीनां च पुष्पाणि स्ववदाददीत फलानि चापरिवृतानाम् ॥ २५॥

आग्नः श्रीतस्मार्तादिनं लोकिकः । गवार्थे तृणानि । अग्न्यर्थं एधान्वी-रुद्दनस्पतीनाम् । छतानां वृक्षाणां पुष्पाणि देवतार्चनार्थानि नोपभोगार्थानि । गवाग्निसाहचर्याद्देवतार्थानीति गम्यते । एतानि तृणादीनि स्वामिभिरदत्तान्यपि स्ववदाददीत । यथा स्वामी नि:शङ्कमादत्ते तद्ददापदीत । ते वीरुद्दनस्पतयोऽ -परिवृताश्चेत्तेषां फलान्यपि स्ववदाददीत न स्वाम्यपेक्षा । फलविषयमेतदपरिवृतत्वं न तृणादिविषयम् । पृथग्वाक्यत्वात् ॥ २५ ॥

कुसीदवृद्धिर्धर्स्या विंशतिः पश्चमापिकी मासम् ॥ २६ ॥

ं वृद्धियथी प्रयुक्तस्य देव्यस्य कुसीद्संज्ञा । माषः कार्षापणस्य विश्वातितमो भाग इत्युशनसोक्तम् । पश्चीमात्रा वृद्धिरूपेण दीयन्ते यत्र विंशती सा पश्चमान षिकी। । तदस्मिन्वृद्धचायलाभगुल्कोपदा दीयत इन्यत्रार्थे पाग्वहतेष्ठक् । अध्यर्धेषूर्विदिगोर्छुगसंज्ञायामिति छुक्पामा न कतः स्वाच्छन्याद्दषिणा । कार्षान पणानां विंशतिक पतिमासं पश्चमाषिकी यथा भवति तथा भवन्ती कुसीदवृ-द्धिधर्मादनपेता । महत्वं महाहिले हे हैं। इंडर ॥ १ त

अत्र मनुः—

वसिष्ठविहितां वृद्धि सुजेद्विचिविविधिनीम् ।

की कि का । उपनिविधिनीम् ।

अश्रीतिभागं गृहणियान्मासाद्वार्श्विकः श्रातः ॥ इति ।

भिकार विश्वादिका । कथम् । पणस्य विश्वादितमो भागो माषः ।

अत्रापीयमेव वृद्धिरुका । कथम् । पणस्य विश्वादितमो भागो माषः । पणानां विंशतिश्वतुःशती माषाणां संपद्यते । चतुःशत्याः पश्च माषा वृद्धिरशीते-रकः । पश्चशतीति यथंतुरवातीति (?)।

शाजवल्क्यस्तु—

िछ है। हिंदी कि अभीतिभागो वृद्धिः स्यात्मासि मासि सबन्धके । वर्णकमाच्छतं दित्रिचतुः पश्चकमन्यथा इति ।

विश्वासार्थं यदाधीयते सुवर्णादि तद्धन्धकम् । तदुक्ते धनपयागे वर्णानुपूर्व्या-द्बासणादिष्वधमणेषु धनं दित्रयादियुक्तं क्रमाद्भवति ॥ २६ ॥

नातिसांवत्सरीमेके ॥ २०॥:

येयमञ्जीतिभागलक्षणा धर्म्या वृद्धिस्तामातिसांवत्सरीं सवत्सरेऽातिकान्ते भवां न गृहणीयात्, एकस्मिनव संवत्सरे प्रतिमासमञ्जीतिभागो ग्राह्यस्तत ऊर्ध्वं न किंचिद्पि बाह्यमेषा धम्या भवतीत्येके मन्यन्ते । अतिसांवत्स्ती।भीते रूपासीखे-श्चिन्त्या ॥ २७ ॥

रवमतमाह-

चिरस्थाने द्वैगुण्यं प्रयोगस्य ॥२८॥

यावता कालेन पयुक्तं धनं दिगुणं भवति तावन्तपेव कालं धर्म्यया वृदध्या विवर्धते नातः परामिति । सुवर्गादिद्रव्यविषयमेतत् ।

ाग्वाभागः। अत्र विश्वष्टः — ्

ि । दिगुणं हिरण्यं त्रिगुणं धान्यम् । धान्येनैव रसा व्याख्याताः । वृक्षमूछः फुछानि च नुछाधृतमष्टगुणामिति । चिरयहणात्सहस्रेणापि संवत्सरैनं द्वेगुण्यात्परं वर्धते इति ॥ २८ ॥ वृध्त हात ॥ २८ ॥ भुक्ताधिन वर्धते ॥ २९ ॥ विकास

विश्वासार्थं यदाधीयते कांस्याभरणादि स आधिः । स चेदुपभुक्तः मृयु-

कोऽथों न वधते । भोग एव तत्र वृद्धिरिति ॥ २९ ॥

दित्सतोऽवरुद्धस्य च ॥३०॥

धनिने धनं दातुमिच्छतोऽधर्मणस्य धनं न वर्धते । धनी वृद्धिछोभाद्व्यानु जेन न गृहंणाति चेत्तस्मिन्नेव दिवसे परहस्ते स्थाप्यं तदारम्य वृद्धिर्न वर्धते तथा यो दित्संचधमणी राजादिना वरु खस्तस्यापि दातुमसमर्थस्य द्वव्यं तत आरस्य न

भ्याऽऽपदि वृद्धचन्तराण्याह—

चक्रकालवृद्धिः ॥३१॥

क्षेत्र वृद्धिशब्दः पत्येकमभिसंबध्यते । यावता कालेन यावतीः वृद्धिस्तामपि मूलीकृत्य तावतो मूलस्य पुनवृध्दिश्वकवृध्दिः ।

क्षा विश्व के स्वार्थ :- वृद्धेरापि पुनर्वृद्धिश्वकवृद्धिकदाहता ॥ इति । कि ी ह्यतः कालस्येयती वृद्धिराति यत्र समयेन गृह्यते सा कालवृद्धिः ॥३१॥

कारिताकाायिकााशिखाधिभोगाश्व ॥ ३२ ॥

वृद्धय इति दोषः । प्रयोक्ता गृ(य)हीत्रा च देशकालकार्यावस्थापेक्षया प्रभूता न्यूना वा स्वयमेव कल्पिता वृद्धिः कारिता । कायिका कायकर्मसंशोध्या ।

यथा बृहस्पतिः कापिका कर्पसंयुक्ता । इति । व्यासस्तु-दोस्रवास्तकर्भयुक्ता कायिका समुदाहता ॥ इति । शिलावृद्धिं कात्यायन आह -

पत्थहं गृह्यते या हि शिखावृद्धिस्तु सा स्मृता । शिखेव वर्धते नित्यं शिरच्छेदान्निवर्तते ॥ मूले दत्ते तथेवैषा शिखावृद्धिस्ततः स्मृता ॥ इति ।

उदाहरणम्-तण्डुलंपस्थस्य पत्यहं तण्डुलमुष्टिगृंद्यत इति । आधिभोग आहितस्य क्षेत्रस्य भोगोऽनुभवः । तत्रानुभवः एव वृद्धिः । सा च शतेनापि संवत्सरैर्नं निवर्तते । क्षेत्रं चोत्तमर्णस्य न भवति । यदा कदाचिदपि मूलपदाने सत्यधमर्णस्य भवति । अधिभोग इत्यन्य । भोगमधिकृत्य वर्तत इत्यधिभोगवादिः। तत्राप्येष एवार्थः । एतासु चक्रवृद्घ्यादिषु बृद्धेद्वैगुण्यात्परमापि भवत्येव ॥ ३२ ॥

कुसीदं ५ ज्ञापजलोमक्षेत्रशद्बाह्येषु नातिपञ्चगुणम् ॥ ३३ ॥

पशोरुपजातं पश्पजं घृतक्षीरादि । ऊर्णाकम्बस्य न्यास्त्वास्त्वास्त्र सिम् क्षेत्रशदः क्षेत्रभोगः । वासं बस्तिवद्दि । बासामिति प्रायेण पठित्ते, तत्राप्येष एवार्थः । एतेषु पश्पजादिषु पयुक्तेषु तत्कुसीदं यावत्पञ्चगुणं वर्धते पञ्चगुणतां नात्येति । अपर आह—पश्चपजादिषु मूस्त्वेन कल्पितस्य द्रव्यस्य तदानीमपदाने यावत्पञ्चगुणं वर्धते, धर्म्यया च बृद्धचा पञ्चगुणतां नात्येति ॥ ३३ ॥

अजडापीगण्डधनं दशवर्षभुक्तं परेः सांनिधी भोक्तः

॥ ३४ ॥

जड उन्मतः पांगण्डो व्याक्तव्यवहारः । यो जडो न भवति पौगण्डो वा न भवति तस्य धनं परैस्तत्संनिधावेव चेद्दश वर्षाणि भुक्तं भवति तदा तद्धनं भोक्तुरेव स्वामिति निश्वीयते । स एव भोगः स्वामिनः सकाशाद्दानादिक्त्रपेण तस्य धनस्य निर्भेतं सूचयति । कथनपरथैतावन्तं कालेमवमर्थमपैरलोके तृष्णीमासी-तेति ।

अत्र क्षेत्रविषये याज्ञवल्क्यः -

पश्यतो बुवतो भूयहीनिर्विश्चितिवार्षिकी ।
परेण भुज्यमानाया धनस्य दश्यवार्षिकी ॥ इति ।
पश्यन्तन्यस्य ददतः क्षितिं यो न निवारयेत् ।
स्वामी सताऽपि छेखेन न स तल्लब्धुमहीति ॥ इति बृहस्पातिः

अत्र मनु:--

यर्त्किचिद्दश वर्षाणि सांनिधौ पेक्षते धनी । भुज्यमानं परैस्तूष्णीं न स तल्लब्धुमहीति ॥ इति ।

१ क. ख. घ. पसृत । २ ग. परे हो।

अनागमं तु यो भुङ्क इत्यादि त्वसानिधिविषयाणि जडाादीविषयाणि वा 11 38 11

अस्यापवाद:-

न श्रोत्रियप्रविजतराजपूरुषैः ॥ ३५॥

श्रोतियादिभिर्भुज्यमानं न भोगमात्रात्तेषां भवाति । उपेक्षाकारणत्वोपपत्ते:। श्रोत्रियमवाजितयोर्धमर्तृष्णयोपेक्षोति । राजपुरुषस्य तु भयेन । राजपुरुषग्रहणं सर्वेषां बलवतामुपलक्षणम् । एतेन साहसिका व्याख्याताः । अपारियहस्यापि मन्नितस्य स्वस्वामिके शून्यग्रहादावुपभोगः संभवति ॥ ३५॥

पञ्जभूमिस्त्रीणामनतिभोगः॥ ३६॥

पश्चवश्चतुष्पादः । भूमि क्षेत्रासमादिका । स्त्रियः परिचारिका दास्यः । पश्चादीनां स (स्व) त्वे नातिभागोऽपेक्षितः । अल्पेनापि भागेन भोक्तुः स्व भवति । कथमनन्तरगृहे दृश्यमानां गां स्वयं तक्रादि कीत्वे पेयुञ्जान उपेक्षेत, कथं वा बहुफलमारामं कथं वा दासीं यो नस्थामन्वहं परिचारिकाम् ॥३६॥

रिक्थभाज ऋणं प्रातिकुर्युः ॥ ३०॥

ये यस्य रिक्थभाजस्ते तदृणं पतिद्द्युः । पुत्रपौत्रेस्तु रिक्थाभावेअपि देयम् । तथा च बृहस्पातिः-

ऋणमात्मीयवत्पित्रयं पुत्रेईयं विभावितम् । पैतामहं समं देयं न देयं तत्सुतस्य तत् ॥ इति । नारदः-क्रमादभ्यागतं पातं पुत्रैर्यन्नणंमुद्धृतम् ।

द्युः पैतामहं पौत्रास्तच्चतुर्थानिवर्तते ॥

ं **याज्ञवल्क्यः**—पितारि मोषिते पेते व्यसनाभिष्छुतेऽपि चे ।

पुत्रपौत्रीर्क्कणं देयं निह्नवे साक्षिभावितम् ॥ इति ॥ ३७ ॥ प्रातिभाष्यवाणिकशुल्कम यद्युतद्ण्डाः पुत्रान्नाभ्याभवेगुः ॥३८॥

अत्र नारदः -

13

९ क. पभुड्या। २ क. ख. घ. थांमिव। ३ ग. वा। ४ ग, दण्डानपुत्रा नध्याभ ।

उपस्थानाय दानाय पत्ययाय तथैव हि ।

तिविधः पितभूईष्टिश्चिष्वेवार्थेषु सारीभिः ॥ इति ।

तस्य पितभावि पेते दायादानि दापयेत् ॥ इति ।

विष्णुयाज्ञवल्क्यौ—दर्शने पत्यये दाने पातिभाव्यं विधीयते ।

आद्ये तु वितथे दाप्यावितरस्य सुता अपि । इति ।

तस्मा दिदम। पे दानपितभूव्यातिरिकाविषयं दृष्टव्यम् ।

अहमेनं दर्शियव्यामीति प्रातिभाव्यं तमद्शियत्वा पितरि मेते न तत्युत्रेणासौ दर्शियतव्य इति । विणिग्वाणिज्यार्थमुपात्तं द्रव्यं तद्दि न पुत्रानभ्याभवति रे
यदा सलाभमूलं दार मिति परिभाष्य कस्याचित्सकाशाद्द्रव्यं गृहीत्वा वाणिज्याय देशान्तरं गतो मियेत तद तत्पुत्रेण न तत्प्रतिकत्वव्यामिति । तथा शुलप्रतिश्रुत्य विवाहं कत्वा मृते तत्पुत्रं न तन्त्रुल्कमभ्याभवति । तथा मूलं दारयामिति मद्यं बहु पित्वा मृते न तत्पुत्रेण तद्दातव्यम् तथा द्यूतं कत्वा पराजित।
सत्तत्पणद्रव्यमद्त्वैव यदि म्रियते तदा तत्पुत्रो न दापुमईति । य(त)था व्यवहा।
पराजितो राज्ञे दण्डमद्त्वैव यदि म्रियये तदा न सोऽपि दण्डः पुत्रानभ्याभवति
॥ ३८ ॥

निध्यन्वाधियाचितावक्रीताधयो नष्टाः सर्वानि-न्दितान्पुरुषापराधेन ॥ ६९ ॥

निधिर्निक्षेपः । ' स्वं दृब्यं यत्र विस्नम्भान्तिक्षिपत्यविद्याङ्कितः ' स निक्षेपः अन्वाधिरुपनिधिः । औपनिधिकामिति रमृत्यन्तरे पसिद्धम् । तत्र याज्ञवल्क्यः-

> भाजनस्थमनाख्याय हस्ते न्यस्य यद्प्यंते । द्रव्यं तदीपनिधिकं पतिदेयं तथीव तत् ॥ इति ।

याचितमुत्सवादिष्वाभरणादि । अवकीतमदत्तमील्यमेर्धदत्तमील्यं वा । आ धिगोंप्याधिः । एते निध्यादयो यदि पुरुषापराधेन विना नष्टा भवन्ति चोरादि भिरपहताः (वा) सर्वास्तानानिन्दितानाहुरदोषानाहुः । न केवलं पुत्रानेव नाम्या-भवेयुः किं तार्हि येषां सकाशै निध्यादयः कृतास्तानापि नाम्याभवन्ति । आनि-न्दितिति ते यदि पूर्वं दृष्टदोता भवन्ति तदा पूर्वमिद्म् । पुरुषापराधम्तु यदि धारियतारः स्वद्व्यवन्त रक्षयेयुः, यद्यक्षिभयादौ स्वद्वव्यं गृहीत्वा नि- ध्याद्यपेक्षेरन्स्वद्रव्यं वा गुप्तं निधाय बहिार्नेध्यादि स्थापयेयुः। एतस्मिनपुरुषा-पराधे सति दद्युरेव ॥ ३९ ॥

> स्तेनः प्रकीर्णकेशो मुसली राजानामि यात्कर्माऽऽचक्षाणः ॥ ४०॥

स्तेन सुवर्णस्तेयकत् ।

सुवर्णस्तेयकृद्धिंगी राजानमभिगम्य तु ।

स्वकर्भ रूयापयन्त्र्यान्मां भवाननुशास्त्वित ॥ इति मानवम् । प्रकीर्णकेशो मुक्तकेशः । आयसः खादिरो वा मुसल इति स्मृत्यन्तरम्।

तद्वान् । अंसे मुसलमाधायेत्यापस्तम्बः । राजानिमयात्कर्माऽऽचक्षाणः । एवं कर्माऽस्मि प्रशाधि मामिति ब्रुवाणः ॥ ४०॥

पूतो वधमोक्षाभ्याम् ॥ ४१ ॥

वधस्ताडनं मरणान्तिकम् । तेनैनं हन्यादित्यापस्तम्बः । सक्टदेव ताडनम् ।
गृहीत्वा मुसलं राजा सक्टबन्यातु तं स्वयम् ।

इति स्मरणात् । मोक्षो मोचनम् । पुनरेवंविधं मा काषिर्गच्छोति । ताम्यां च वधमोक्षाभ्यां स्तेनः पूतो भवति । हतोऽपि शुध्यति मुक्तोऽभि शुध्यतीति ॥ ४१ ॥

अध्नन्नेनस्वी राजा ॥ ४२ ॥

यदि दयादिना तं न हन्यादाजा स्वयमेनस्वी भवति । चौरस्य यदेनस्तदस्य भवतीति ॥ ४२ ॥

अयं तु दण्डो ब्राह्मणवर्जीमिति दर्शयाते—

होता 📑 💎 न शारीरो ब्राह्मणदण्डः ॥ ४३ ॥

्राप्त स्वयमुप्रस्थितस्यापि बालणस्य शारीरो दण्डो न कर्तत्र्यो मोक्ष एव । तथाच मनु:-

वधेन बुध्यति स्तेनो बाह्मणस्तपसैव च ॥ इति ।

अत्रैवकारबलात्तदानीं तस्यापि ब्राह्मणस्य तपसा मोक्षः । न क्वापि नि-मित्ते हस्तच्छेदादिकमापि कर्तव्यमित्येवमर्थः । तथा च मनुः-

तिषु वर्णेषु तानि स्युरक्षतो वालणो वजेत् ॥ इति । त^रस्विवालणाविषयमिदम् ॥ ४३ ॥ अन्यस्य तु यथापराधं दण्डमाह-

कर्मवियोगविख्यापनिवासनाङ्ककरणानि ॥ ४४ ॥

यथा पुनस्तत्कर्म न करोति तथा करणं कर्मवियोगः । सर्वस्वहरणं प्रतिभूग्रहणमित्यादि । विख्यापनं चौर्यचिक्षेन ग्रामनगरादिष्वाघोषणम् । विवासनं
निर्वासनम् । यथापराधं ग्रामनगरादाष्ट्राद्वा । अङ्ककरणं चिक्षकरणम् ।

तत्र मनुः-गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः।

स्तेये तु अपदं कार्यं ब्रह्महण्यिशाराः पुमान् ॥ इति ।

एषां कर्मवियोगादीनामेनःसु गुरुषु गुरुषोण उघुषु उघूनीति न्यायेनापरा-धानुरूपा व्यवस्था । एतन्महापातकविषयम् । अङ्करणं तु तपास्विवाह्मणस्यापि भवत्येति ॥ ४४॥

अ वृत्तौ प्रायश्चित्ती सः ॥ ४५ ॥

यस्तु राजा चोरविषयेष्वेवंद्ण्डको न वर्तते तस्यामपवृत्ती स्वयं प्रायश्चित्ती भवति । तत्र वसिष्ठः—दण्डचोत्सर्गे राजैकरात्रमुपवसोत्त्रिरात्रं पुरोहितः । क्रच्छ्रम-दण्डचदण्डने पुरोहित एकरात्रं त्रिरात्रं राजेति ॥ ४५ ॥

चोरसमः सचिवो मातिपूर्वे ॥ ४६ ॥

साविव्यं पितश्रयादानादि साहाय्यम् । तच्चेन्मितपूर्वं चोरोऽयामिति ज्ञात्वाऽपि यदि साविव्यं करोति स चोरसमश्चोरवद्दण्डचः । अज्ञाते पुनरज्ञानमेव ज्ञरणम् ॥ ४६॥

प्रतिग्रहीताऽप्यधर्मसंयुक्ते ॥ ४७ ॥

अपिशब्दान्मतिपूर्व इत्यनुवर्तते । योऽन्यस्य द्रव्यमनेन चोरितमिति जान-नेनव ततः प्रतिगृह्णाति सोऽपि तिस्मन्नधर्मसंयुक्ते प्रतिग्रहे चोरसमः । प्रकरणा-देव सिद्धेऽधर्मसंयुक्तग्रहणमन्यत्रापि पापाविषये प्रतिग्रहीतुस्तत्तत्पापं भवतीति ज्ञापनार्थम् ॥ ४७ ॥

> पुरुषशक्तयपराधानुबन्धविज्ञानादण्डनियोगः ॥ ४८ ॥ पुरुषो बासणादिजातिः । शक्तिरर्थदण्डे बह्वर्थोऽल्पार्थं इति, शरीर

दण्डे दुर्चछ: पबलो वेति चिन्ता । अपराधः साक्षात्कर्तृत्वं साचिव्यकर्तृत्वं वेति । अनुबन्धोऽभ्यासः। एतान्पुरुषादीन्विज्ञाय तदनुरूपो दण्डो नियोक्तव्य इति

अनुज्ञानं वा वेदवित्समवायवचनाद्देदवित्समबायवचनात् 11 88 11

> वेदविदां त्रयाणां चतुर्णां वा समवायः सैवः । अत्र मनु:-चत्वारो वा त्रयो वाऽपि यं ब्रूयुर्वेदपारगाः । स धर्म इति विज्ञेयो नेतरेषां सहस्रशः॥ इति ।

तस्य संघस्य वचनादनुज्ञानं वा कर्तव्यम् । अनुपरोधो धर्मो वचनीय इति यदि ते ब्रूयुस्तदा वक्तव्यमनुजानामि त्वां गच्छ यथेधामीति (अभ्यासोऽध्याय-समाप्त्यथः) ॥ ४९ ॥

> इति श्रीगौतमीयवृत्तौ हरदत्ताविराचितायां मिताक्षरायां द्वितीयप्रश्ने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

विप्रतिपत्तौ साक्षिनिमित्ता सत्यव्यवस्था ॥ १ ॥ विमतिपत्ती साक्षिणः पष्टव्याः । तैर्यथोक्तं तथा सत्यं व्ववस्थाप्यम् । अत्र नारदः-एकाद्याविध. साक्षी शास्त्रे दृष्टा मनािषिभि ।

कृतः पञ्चविधस्तेषां षड्विधोःकृत उच्यते ॥ छिखितः स्मारितश्चैव यदच्छाभिज्ञ एव च । गृढश्योत्तरसाक्षी च साक्षी पश्चविषः छतः अन्ये पुनरनुद्दिष्टाः साक्षिणः समुदाहताः । ग्रामश्च पाड्विवाकश्च राजा च व्यवहारिणाम् ॥ कार्ये व्यन्यन्तरो यश्च अधिना महितश्च यः । कुल्याकुल्यविवादेषु भवेयुस्ते अपि साक्षिणः ॥ इति ।

الع

ते पुनः कीदृशाः कियन्तो वेत्याह-

वहवः स्युरनिन्दिताः स्वकर्मसु प्रात्यायिका राज्ञां

निष्पीत्यनभितापाश्चाप्यतरस्मिन् ॥ २॥

वेर्णपयुक्तान्याश्रमपयुक्तान्युभयपयुक्तानि स्वानि कर्गाणि श्रौतानि स्मार्तानि च । तेष्वनिन्दिता अकरणादन्यथाकरणाद्वा । अत्र याज्ञवल्क्यः- 🔊

त्र्यवराः साक्षिणो ज्ञेयाः श्रोतस्मार्विकयापराः । इति ।

पत्ययो विधासस्तेन ये चरन्ति ते पात्ययिकाः । य एवंभूता(स्ते)राज्ञा-मदृष्टदोषतया विश्वसनीयाः । अर्थिपत्यार्थनोरन्यतरास्मानिष्पतियो अनिभताषा अकृतद्वेषाः । एवंभूता ब ्वः साक्षिणः स्युः । अत्र याज्ञवल्क्यः-

उभयानुमतः साक्षी भवत्येकोऽपि धर्मवित् । इति ।

अभ्यन्तरस्तु निनेपे साक्ष्यमेकोऽपि वाच्यते ।

आर्थना पहितः साक्षी भवत्येको अपे याचितः ॥ इति कात्यायनः । पमाणमेकोऽपि भवेत्साहसेषु विशेषतः । इति व्यासः ॥ २ ॥

अपि ज्ञाद्धाः ॥ ३ ॥

शूदा अप्येवंविधाश्चेत्साक्षिणों भवेयुः किं पुनाईं जायत इति । एवं च गुणवद्द्विजात्यभावे शूद्धा अप्येवीवधा भवन्तीति द्रष्टव्यम् ॥ ३ ॥

बाह्मणस्त्वबाह्मणवचनादनवरोध्योऽनिबद्धश्चेत् ॥ ४ ॥

बासणो नात्र श्रोत्रियः । अस्य वृत्तान्तस्यासौ बासणः साक्षीत्यबासः णेनोके राज्ञा साक्षित्वेन नावरोध्यो न निर्वन्धेन याद्यः। अनिबद्धश्चेत्। स चेलेखानिबद्धो न भवति । लेल्यारूढस्तु भवत्यव साक्षी । नाग कश्चिद्धेतुरस्ति वचनमेव प्रमाणम् । अत्र नारदः--

असाक्ष्यिप हि वास्त्रिषु दृष्टः पञ्चाविधो बुधै:। वचनाद्दोषतो भेदात्स्वयमुक्तेर्मतान्तरात् ॥ श्रोतियाद्या वचनत स्डेनाद्या दोषद्रीनात् : भेदाद्विपातिपात्तः स्यादिवादे यत्र साक्षिणाम् ॥ स्वयमुक्तिरानिर्दिष्टः स्वयमेवैत्य यो वदेत् । मृतान्तराऽधिनि पते मुमूर्षः श्राविताहते ॥ इति । तदिह श्रोत्रियः क्वचिद्पि साक्षी न भवतीति नारदस्य पक्षः । इहाब्रासणवच-नादित्युक्तत्वाद्बाह्मणेनोकः श्रांत्रियोऽपि भवत्येव साक्षी ॥ ४ ॥

नासमवेतापृष्टाः प्रब्रुयः ॥ ५ ॥

असमवेता असमुदिता राज्ञा पाड्विवाकेन वाऽपृष्टाः सन्ते न ब्र्युः । किंत समवेताः पृष्टाश्च पत्रुयुः ॥ ५ ॥

अवचनेऽन्यथावचने च दोषिणः स्युः ॥ ६ ॥

ते चैवंभूता यदि जानन्त एव न (ब्रूयुरन्यथा वा) ब्रूयुस्तदा दोषिणो दुष्टाः स्युः । इह राज्ञा दण्डचा परत्र च नारिकणः ॥ ६ ॥

स्वर्गः सत्यवचने विपर्यये नरकः॥ ७॥

ब्रुवन्तस्तु यदि सत्यं ब्रुवन्ति तदा स्वर्गो भवति । विपर्ययेऽसत्यवचने नरको सम्बतीति ॥ ७ ॥

ा अनिबद्धैरपि वक्तव्यम् ॥ ८॥

निबद्धा निर्दिष्टा यूयमत्र साक्षिण इति । तद्विपरीता आनिबद्धास्तैरापि साह्यं वक्तव्यम् । ते च नारदेनान्ये पुनरनिर्दिष्टा इत्यारभ्य कथिता दृष्टव्याः 11:6 11

न पीडाकृते निबन्धः॥ ९॥

पीडाकृतं पीडाकरणम् । निबन्धो निबन्धनमर्थसंबन्धादि । पीडाकरणे हिंसाविषये साक्षिणां निबन्धो न निरूप्यः । अर्थसंबन्धादि न किंचिदापे दूषणं भवति । आह व्याघः-

स्तेये च साहसे चैव संसर्गे च खियास्तथा । गरादीनां प्रयोगे च न दोषः साक्षिषु स्मृतः ॥ इति ॥ ९ ॥

प्रमत्तोक्ते च ॥ १०॥

प्रमादोऽनवधानम् । अन्तये परे वाक्ये साक्षिणा यद्दच्छया यदुक्तं तत्रापि निबन्धो न भवति । अर्थसंबन्धादिदूषणं न भवति ॥ १०॥

; : विपर्यये नरक उक्तः। न स केवलं साक्षिण एव किं तर्हि—

साक्षिसभ्यराजकर्षु दोषो धर्मतन्त्रपिडायाम्॥ १३॥

तन्त्रं लोकव्यवहारः । धर्मतन्त्रयोः पिडायां सत्यां साक्षिषु सम्येषु राजानि कर्तिर च सर्वेषु दोषो भवति । कर्तृग्रहणं दृष्टान्तार्थम् । यावानकर्तुदोषस्तावान्सा- क्ष्यादीनामपीति । यद्यपि साक्षिणः पूर्वं दोष उक्तस्तथाऽपिह् ग्रहणं सम्यादीनां ससाक्षिकेऽप दोषंग्रहणार्थम् । अन्यथाऽसाक्षिकव्यवहारे सम्यादीनां दोषः । ससाक्षिके तु साक्षिणामेवेत्युक्तं स्यात् ॥ १ । ॥

शपथेनैक सत्यकर्भ ॥ १२ ॥

यत्र साक्षिषु तथा विश्वांसो न भवति तत्र रापथेन सत्यकर्म रापथं कार-यित्वा सत्यं वाचनीयमित्येके मन्यन्ते ॥ १२॥

तद्देवराजब्राह्मणसंसदि स्यादबाह्मणानाम्॥ १३॥

तच्छपथेन सत्यकर्म देवसंसदि, उग्राणां देवतानां संनिधी ब्राह्मणानां संसदि परिषदि वा भवित । क्षत्तियारीनामर्थगुरुत्वछघुत्वापेक्षो विकल्पः । महत-र्थे देवतासंनिधावल्पीयस्यन्यत्रेति । अत्राह्मणानामिति वचनाद्ब्राह्मणानां श्रापथकर्म न भवित । अत्र विष्णुः—पृच्छेद्ब्र्हीति ब्राह्मणम् । सत्यं ब्र्हिति राजन्यम् । गोबीजकाश्चनैवैर्थम् । सर्वपातकैः शूदम् । एवं हि साक्षिणः, पृच्छेद्वर्णानुकमतो नृप इति । मनुस्तु—

सत्येन शापयोद्धिपं क्षांत्त्रयं वाहनायुधैः ।

गोबाजकाश्चनैवर्भेयं श्रद्धं सर्वेस्तु पातकैः ॥ इति ॥ १३ ॥

विपर्यये नरक इति सामान्येन साक्षिणो दोष् उक्तः । इदानी व्यवहार-विशेषे दोषविशेषमाह—

क्षुद्रपश्वनृते साक्षी दश हन्ति ॥ १४॥

क्षुद्रपश्चवोऽजाविकाद्यः । तद्विषयेऽनृतवद्ने साक्षी दश हन्ति । तेषां दशानां वधे यावान्दोषस्तावानस्य भवतीति । दण्डपायाधित्ते अपि तदनुगुणे द्रष्ठव्ये ॥ १४ ॥

> गोश्वपुरुषभूमिषु दशगुणोत्तरान् ॥ १५॥ उक्तानामुत्तरं दश गुणान्दशगुणोत्तरान् । गवादिविषयेऽनृते

४चतुर्थोऽध्यायः] हरदत्तकतामिताक्षरावृत्तिसाहितानि ।

مِ و فِ

साक्षी पूर्वोक्ताइशगुणोत्तरं तत्त । ध्युक्तदोषो भवति । एतदुक्तं भवति । मवानृते साक्षिणो गोशतहननदोषः । अधानृतेऽधसहस्रहननदोषः । पुरुषानृतेऽयुतपुरुषहननदोषः । भूम्यनृते यस्य सा भूमिरःज्जातीयानां छक्षहननदोष
इति ।

पश्च पथनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते । शतमथानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥ इत्येतत्त्वत्यन्तक्षुद्रपथादिविषयम् ॥ १५ ॥ सर्वे वा भूमौ ॥ १६ ॥

यदि वा भूमिविषयेऽनृत सर्वमेव मनुष्यजातं हन्ति । ग्रामदेशादिमहाभूमि-विषयो विकल्पः ॥ १६ ॥

हरणे नरकः ॥ १७ ॥

मासङ्गिकामिदम् । भूमेरिति विपरिणामेन संबन्धः । भूमेईरणे नरको भवति । कालान्तरावधिः शास्त्रान्तराविरोयः ॥ १७॥ मकृतमाह-

भूमिवद्प्सु ॥ १८ ॥

अब्विषयेऽनृते भूमिवछश्षहननदोषो हरणे नरक इति च समानम् । अप्रा-देन कूपतडागादिरुपलाक्षितः ॥ १८ ॥

॥ मैथुनसंयोगे च ॥ १९॥

मेथुनसंयुक्ते चानृते परदारानसौ गच्छतीत्यादौ भूभिवादिति चकाराद्गभ्यते ॥ १९॥

पंज्ञुवन्मधुसर्पिषोः॥ २०॥

मधुसार्पिविषयेऽनृते क्षुद्रप शुवदोषः ॥ २० ॥

गोवद्वस्नहिरण्यधान्यब्रह्मसु ॥ २१॥

बस वेदः । वस्त्रादिविषयेऽनृते गोवदोषः । अधीत्य नास्मान्मयाऽधीत-मित्यादि बसानृतम् ॥ २१॥

यानेष्वक्ववत् ॥ २२ ॥

हस्तिशकटाशाबिकादीनि यानानि । तदिषयेऽनृतेऽश्ववहोषः । अन्ये तु क्षुद्र-पश्चनृत इत्यारभ्य साक्षिश्रावणे योजयन्ति । क्षुद्रपश्चनृते साक्षिणो दशपशुह-१४ ननदोषः । तस्मात्त्वया सत्यमेव वक्तव्यामिति साक्षी श्रावीयतव्य इति । एवं सर्वत्रोपरिष्टादाप ॥ २२ ॥

एवमदृष्टविषये दोषमुक्तवा दृष्टविषये साक्षिणो दृण्डमाह-श्रिथ्यादचने याप्यो दृण्डचश्च साक्षी ॥ २३ ॥ मिथ्यावचने दृष्टे साक्षी याप्यो गर्द्य: सर्वेरयमसंव्यवहार्य इति दृण्डचश्च राज्ञा ।

अत्र मनुः-छोभात्सहस्रं दण्डचस्तु मोहातपूर्वं तु साहसम् ।
भयाद्द्वौ मध्यमौ दण्डचौ मैत्र्यातपूर्वं चतुर्गुणम् ॥
कामाद्द्योगणं पूर्वं कोधात्तद्द्विगुणं परम् ।
अज्ञानाद्द्वे याते पूर्णं बालिश्याच्छतमेव तु ॥
कूटसाक्ष्यं तु कुर्वाणांस्त्रीन्वर्णान्थार्मिको नृपः ।
मवासयेद्दण्डायित्वा ब्राह्मणं तु विवासयेत् ॥ इति ।

विष्णु:-कूटसाक्षिणां सर्वस्वापहार उक्तश्चोपजीविनां च ॥ इति ॥२३॥ नानृतयचने दोषो जीवनं चेत्तदधीनम् ॥ २४॥ यदा सत्यवचनात्परस्परवधोऽनृतवदने तु तदधीनमनृतवचनिबन्धनमन्यस्य जीवनं भवति न वयस्तत्रानृतवचने न पूर्वोक्तो दोष इति ।

अत्र याज्ञवल्क्य:-

वर्णिनां हि वयो यत्र तत्र साक्ष्यनृतं वदेत्। तत्पावनाय निर्वाण्यश्यरुः सारस्वतो द्विजैः ॥ इति॥२४॥

न तु पापीयसो जीवनम् ॥ २५॥

यदि त्वनृतवचने पापियसः पापवत्तरस्य परपीडारतस्य जीवनं भवित तदा न तु न दोषः । आपि तु दोष एवेति ॥ २५॥

अथ साक्षिणः केन पष्टव्यास्त्रमाह-

राजा प्राडविवाको ब्राह्मणो वा शास्त्रावित् ॥ २६॥ पृच्छर्ताति पाट् । विविच्य वक्तीति विवाकः । न्यङ्कादिषु दर्शना

سوي

द्वृष्टिकरवे । राजा पाड्विवाकः स्थात । अन्यगरे तु तर्सिम्स्तेन नियुक्तो ब्राह्मणो वा शास्त्रवित्। अत्र मनुः-

यद्दा स्वयं न कुर्यातु नृपत्तिः कार्यानर्णयम् । तदा नियुञ्ज्यादिदांसं ब्राह्मणं कार्यनिर्णये ॥ इति ॥ २६ ॥ प्राड्विवाक अध्याभवेत् ॥ २७ ॥

अधिरुप्रिभाव ऐश्यें वा । आङागमनार्थे । एनमुक्तस्थणं पाड्विवाक-मुपर्यासीनमधः स्थितश्चिरं वा गुगभूतः सन्नागच्छेत्कार्याथीं । न तु पाड्विवाकः स्वयं कार्यमुत्पाद्याऽऽह्वयोदीते । तथा च मनुः-

नोत्पाद्येत्स्वयं कार्यं राजा नाप्यस्य पूरुषः । इति ॥ २७ ॥

संवत्सरं प्रतीक्षेताप्रतिभायाम् ॥ २८ ॥

यदार्शभेयुक्तस्यार्थनः साक्षिणो वाष्प्रतिमा अवति वक्तव्यं न प्रतिभाति स्वयं जाडचाद्युपेतत्वाद्यस्य वा चिरनिर्वृत्तत्वादिना दुर्निरूप्यत्वात्तदा संवत्सरं मतीक्षेत । एतावता कालेन निरूप्य बूहीति कालं द्यात् । अत्र कात्यायनः-

अस्वतन्त्रजडोन्मत्तवालदीक्षितरोगिणाम् । काल संवत्सरादर्वावस्वयमेव यथे न्सितम् ॥ नारदः-गहनत्वाद्विवादानामसामध्यीतस्मृतेरापि ।

क्रणादिषु हरेत्काउं कामं तत्त्वयुभुत्सया ॥ इति ॥ पजापति:-दिनमेकमथ दे वा त्रांणि वा पश्च सप्त वा। कालस्त्वृणादौ गहन आत्रिपक्षादिप स्मृतः ॥ २८ ॥

धेन्वनडुत्स्निप्रजननसंयुंक्ते च शीघरम् ॥ २९॥

संयुक्तराब्दः पत्येकं संबध्यते । धेन्वादिसंयुक्ते विवादे शीव्हं विवादयेत् । प्रजननं विवाहस्तद्धेतुत्वात् । स्त्री दास्यादिः । तथाऽऽह कात्यायनः-

> धेनावनुडुाहि क्षेत्रे स्त्रीषु पजनने तथा। न्यासं चारित्रके दत्ते तथैव क्रयाविक ।।। कनाया दूषणे स्तेये कछहे साहसे निधौ। उपधो कूटसाक्ष्ये च सद्य एव विवादयेत् ॥ इति ॥ २९ ॥

गौतमप्रणीतधर्मसूत्राणि -

आत्ययिके च ॥ ३० ॥
व्यपैति गौरवं यत्र विनाशस्त्याग एव च ।
कालं तत्र न कुर्वीत कार्यमात्ययिकं हि तत् ॥ इति
कात्यायन: ।

प्वमादावात्यियिके शीमं विवादयेन कालं दद्यादिति । याज्ञवल्क्यः साहसस्तेयपारुष्यगोभिशापात्यये स्त्रियाम् । विवादयेत्सद्य एव कालोऽन नेच्छया स्मृतः ॥ इति ॥ ३० ॥ सर्वधर्मेभ्या गरीयः प्राङ्विवाके सत्यवचनं सत्यवचनम् ॥३१॥ श्रुतिस्मृतिचोदितेभ्यः सर्वधर्मेभ्यो गुरुतर्रामदं यत्माङ्विवाके प्रच्छति साति सत्यं ब्रुयात् । द्विराकिरध्गायसमाप्त्यर्था ॥ ३१ ॥

> इति श्रीगौतमीयवृत्तौ हरदत्तविरचितायां मिताक्षरायां द्वितीयप्रश्ने चतुर्थोऽघ्यायः॥ ८॥

> > इति वर्णधर्मः ।

अथ पश्चमोऽध्यायः । अथाऽऽशौचानिर्णयः ।

शावमाशौचं दशरात्रमनृत्विग्द्रितब्रह्मचारिणां सपिण्डानाम् ॥१॥

श्वानिमित्तं शावम् । अश्वाचिश्राव आशोचम् । दशरात्रं दशाहोरात्रं भवति सिषण्डानामृत्विगादिवर्णितानाम् । ऋत्विग्याजकः कर्माणे वर्तमानः । दिक्षितः कृतदिक्षणियः कर्मणि वर्तमानः । ब्रह्मचारी पसिद्धः । आऽवशृथं पूर्वयोः । आब्रह्मचर्यपर्यन्तं परस्य । किं पुनिरिद्गाशौचलक्षणम् । कर्मण्यनिधकारोऽभो-ज्यान्नताऽस्पृश्यता दानापिष्वनिधकारिता ।

अत्र मनुः उभयत्र दशाहानि कुलस्यानं न भुज्यते । दानं पतियहो यज्ञः स्वाध्यायश्च निवर्तते ॥ न स्पृशेयुरनासन्नाः पेतस्याऽऽसन्नवान्धवान् । इति च । अङ्गिराः सूतके तु यदा विभो बहाचारी विशेषतः । पिवेत्षानीयमज्ञानात्समक्षीयात्स्पृशेत वा ॥

पानीयमाने क्वींत पश्चमब्यस्य भक्षणम । 🐟 🤝 तिरात्रं भोजने पोक्तं स्पृष्ट्वा स्नानं विधीयते ॥ इति । ्र_े्याज्ञवल्क्यः-उदक्याशीचिभिः स्नाथात्संस्पृष्टस्तैरुपस्रशेत् । इति । संवर्तः-अस्थिसंचयनादूष्वंमङ्गस्पर्शो विधीयते ॥ इति । व्याघ:- मरणादेव कर्तव्यं संयोगो यस्य नामिभिः। दहनादेव कर्तव्यं यस्य वैतानिको विधि: ॥ इति । शङ्खः-चतुर्थे दशरात्रं स्यात्विणनशाः पुंसि पश्चमे । षष्ठे च ुरहाच्छु दि सप्तमे तु दिनत्रयम् ॥ इति । एतत्सर्वं निर्गुणविषयम् । गुणवद्विषये पराशरः एकाहाच्छुध्यते विषो योऽशिवेदसमन्वित । त्र्यहात्केवलवेदस्तु निर्गुणो दशिभिदिनैः ॥ इति । वृहस्पतिः त्रिरात्रेण विशुध्येत विघो वेदाग्निसंयुतः । पञ्चाहेनाग्निहीनस्तु दशाहाद्त्रासणबुवः ॥ इति । अत्र ब्रह्मचारियहणं गृहस्थव्यातिरिक्तानामाश्रमाणामुपउक्षणार्थम् ।

बृहस्पातिः-

नैि8 ⊧ानां वतस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ! नाऽऽशौचं सूतके पोक्तं शावे वाधि तथैव च ॥ इति । दीक्षितग्रहणं चान्द्रायणादिवतपवृत्तानामुपलक्षणार्थम् । अत्र वसिष्ठः-न राज्ञामथ दोषोऽस्ति ब्रतिनां सिवणां तथा। ऐन्द्रस्थानमुपासीनां न चापूता हि ते सदा ॥ इति ॥ १ ॥ एकाद्शरात्रं क्षात्रियस्य ॥ २ ॥

दीक्षितत्रह्मचारिव्यतिरिक्तरः ज्ञातिमरणे क्षत्त्रियस्यैकादशरात्रं भवति । द्वादशरात्रेणीति याज्ञवल्क्यः। पश्चद्शरात्रेणीति वसि ः। दशरात्रेणीति परा-शरः। पोडशाहिमति पैठिनासिः । एतेवां वृतामिस्वाध्यायसमासव्यासापेक्षो विकल्पः ॥ २ ॥

द्वादशरात्रं वैश्यस्यार्धमासमेके ॥ ३ ॥ एकादशर त्रं पराश्चरः । विंशातिरात्रं वसिष्ठपैठीनसी । पूर्ववाद्विकल्पः ॥३॥

🤋 ग नां मन्त्रिणां 🕒 ग. ना ब्रह्मपूता हि ते स्मृताः ।

मासं ज्राहरूय ॥ ४ ॥

सच्छूदाणामर्थमासिनत्युशना । ये त्रैविणिकान्परिचरन्तस्तेभ्यो वृत्तिं छिप्सन्ते ते सज्छ्दाः । सा हि तेषामुत्तमा वृत्तिरित्यवोचाम । दांसविषये बृहस्पतिः—

दासान्तेवासिभृतकाः शिष्याश्चेकत्रवासिनः । स्वामितुल्येन शोचेन शुध्यन्ति मृतसूतके ॥ इति ।

अत्र क्रमविवाहे बौधायनः-

क्षत्त्रविट्शूद्रजातिया ये स्युर्विप्रस्य बान्धवाः । तेषामशौषे विषस्य दशाहाच्छुद्धिरिष्यते ॥ राजन्यवैश्यावष्येवं हीनजातिषु बन्धुषु । स्वमेवाऽऽशौषं दुर्यातां विशुद्धवर्थमसंशयः ॥ इति ।

बृहस्पातिस्तु-शुट्रोद्दिपो दशाहेन जन्महान्योः स्वयोनिषु । स्वयोनिषु । स्वयोनिषु । इति ।

अत्र विष्णुर्विशेषमाह—बाह्मणस्य क्षत्त्रियविट्शूदेषु षड्रात्रात्रिताते । क्षित्रिय य विट्रगूद्रयोः षड्रात्रात्रिराता । वैश्यस्य शूद्रे षड्रात्राच्छु दिरिति प्रकृतम् । एषां वृत्ताद्यपेक्षया व्यवस्था । अधिकवर्णविषये मनुः-

सर्वे तूत्तमवर्णानामाशौर्वे कुर्युरादताः । तद्दर्णविधिदृष्टेन स्वं त्वाशौर्चे स्वयोनिषु ॥ इति ।

उत्तमवणीनां मरणमयुक्तमाशीचमुकं तद्दर्णविधिदृष्टेन मकारेण कुर्यः, स्वयोनिष् तु स्वाशीचं स्वजातिनिमित्तं कुर्युरिति । अत एव ज्ञायते मातृजाति-युक्ता अनुस्रोमानां धर्मा इति ॥ ४ ॥

तच्चेदन्तः पुनरापतेच्छेषेण शुध्येरन् ॥ ५ ॥

अन्तरितस्य पितयोग्यपेक्षायां शावमाशौचं द्शरात्रामिति प्रकृतं द्शरात्राद्यभिसंबध्यते । शावस्य दशरात्रादेशशौचस्य मध्ये तस्मि-न्व भाने यद्यन्यच्छावाशौचं समानकालं न्यूनकालं वा पुनरापतेदागच्छोत्ततः शेषेण पूर्व वर्तमानस्य दशरात्रादेयांनि शिष्टान्यहानि तरेव शुध्येरन्। न पुनरापतितस्य कालपतिक्षोति । अत्र जननेऽप्येवामित्यातिदेशात्पूर्णस्य जननाशीचस्य मध्ये समानकालं वा न्यूनकालं वा जननाशौचमागच्छे - च्छेषेण शुध्येरन् । यत्र न्यूनकालस्याऽऽशौचस्य मध्ये पूर्णकालमापतेत्तेनैव गच्छति ।

अत्र मनुः — अन्तर्दशाहे स्यातां चेत्पुनर्मरणजन्मनी ।
तावत्स्यादशुचिविंशो यावत्तत्स्यादिनिर्श्यम् ॥ इति ।
देवलः — आद्यानां योगपद्ये तु श्लेया शुद्धिर्गरीयसी ॥ इति ।
आङ्गिराः – मातर्यये प्रमीतायामशुद्धौ त्रियते पिता ।
पितुः शेषेण शुद्धिः स्यान्मातुः कुर्यात्तु पक्षिणीम् ॥ इति ।
सूतकाद्दिगुणं शावं शावाद्दिगुणमार्तवम् ।
आर्तवाद्दिगुणा सूतिस्ततोऽधिशवदाह है ॥ इति ।

वृद्धात्र:-अनेन दाहकस्य सूर्तिकायाश्च पूर्वाशोचिवशेषेणोत्तरस्य शुद्धिः रिति । अत्र षट्त्रिंशन्मतम् -

शावाशीच सगुत्पन्ने सूतकं तु यदा भवेत् । शावेन शुध्यते सूतिनं सूतिः शावशोधनी ॥ इति ॥ ५ ॥ रात्रिशेषे द्वाभ्याम् ॥ ६ ॥

पूर्विस्मनाशौचे रात्रिशेषे सति यद्यन्यदापतेत्ततो द्वाभ्यामहोभ्यां शुध्येरन्

प्रभाते तिसृभिः॥ ७॥

अथ द्शाहादौ व्यतीतेऽपरेद्युः प्रभाते संगवे यद्यन्यदापतत्तेतास्तसृभी रात्रिभिः शुध्येरन् । अत्र मनुः ---

विगतं तु विदेशस्थं गृण्याद्यो सनिर्दशम् । यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् ॥ इति ॥ ७ ॥ गोबाह्मणहतानामन्वक्षम् ॥ ८ ॥

गवार्थे ब्राह्मणार्थे वा हतानां ये सापिण्डास्तेषामाशौचमन्वक्षम् । अन्वक्ष्यते पत्यक्ष्यते शवस्तावत्संस्कारान्ते स्नात्वा शुध्येरिनिति । अत्र सद्यःशौचाधिकारे मनु:—

गोब्राह्मणस्य चैवार्थे यस्य चेच्छाति पार्धिवः ॥ इति । गवा ब्राह्मणेन वा ये हतास्तज्ज्ञातिनामाश्चौचमन्वक्षामिति चार्थः । तथा ऽऽहोश्चना—गोभिर्हतानां वाह्मणैर्हतानां च सद्यः शोचम्॥ इति ॥ ८ ॥

1

राजकोधाच्च ॥ ९॥

हतानामित्युपसमस्तमपेक्षते । राजकोधाद्ये हतास्तज्ज्ञातीनामप्यन्वक्षमाञ्चौ-चम् ॥ ९ ॥

युद्धे ॥ ३० ॥

चकारोऽनुवर्तते । युद्धे च हतानामन्वक्षमाशौचम् । अत्र मनु:-डिम्बाहवहतानां च विद्युता पार्थिवेन च ॥ इति ।

हिम्बो जनसंपर्दः। सद्य शीवं प्रक्रतम् । पाठान्तरं त्वस्मभ्यं न रोचते यदि वा स एव पाठः । आयुद्धोति पदच्छेदः । आयुद्धमायोधनम्। संग्राम इति यावत् । सर्वथा नञ्समासो न रोचते ॥ १०॥

> प्रायानाश्च कशस्त्राञ्चिविषोदकोद्धन्धनप्रयतनैश्चेच्छ-ताम् ॥ ११ ॥

पायो महापस्थानम् । तदनिच्छतोऽपि राजभयादिना संभवतीतिच्छतामि त्युक्तम् । एवमुत्तरेष्वपि यथासंभवामिच्छानिच्छे द्रष्टव्ये । अश भोजनेऽश्चनमाशः। स एवाऽऽशकस्ताईपर्यथोऽनाशकः । सत्येव भोज्यद्गव्ये क्रोधादिना भोजनानिव्वति । शस्त्राभिविषोदकोद्गन्धनानि पसिद्धानि । पपतनं वृक्षात्पर्वताद्वा पातः । एतः प्रायादिभिरात्मव्यापादने चकारादन्यैरप्यवंविधरैन्वक्षमाश्चीचामिति । अत्र ब्रह्मपुराणे—

कोधात्मायं विषं वाहिः शस्त्रमुद्धन्थनं जलम् ।

गिरिवृक्षपपातं च ये कुर्वन्ति नराधमाः ॥

ब्रह्मदण्डहता ये च ये चैव ब्राह्मणेहिताः ।

महापातिकने थे च पिततास्ते प्रकीतिंताः ॥

पिततानां न दाहः स्यान्न च स्यादास्थिसचयः ।

न चाश्रुपातः पि डो वा कार्या श्रा किया न च ॥ इति ।

अत्राङ्गिराः यदि कश्चित्पमादेन श्रियेताग्न्युद्कादिभिः ।

तस्याऽऽशीचं विधातव्यं कर्तव्या चोदकिकिया ॥इति ॥१९॥

सापिण्डानामित्युक्तम् के ते सापिण्डास्तानाह—

पिण्डिनिवृत्तिः सप्तभे पश्चमे वा ॥ १२ ॥ कूटस्थमारभ्य षष्ठपर्यन्तं सापिण्डियम । सप्तमे तु निवृत्तिः । केवछं सप्तमे सोद्कत्वम् । सप्तमे तु निवर्तत इत्युक्तत्वात् । ततः परं सगोत्रत्वमेव । पश्चमे वेति यदुक्तं तदीरसञ्यातिरिक्तविषयम् । तत्रापि यथासँभवं द्रष्टव्यम् । एवं चार्थः—पितृपितामहपपितामहेभ्यस्तत्परमापि द्वाभ्यामित्यात्मना सह षष्ठपर्यन्तं पिण्डं द्यात् । सप्तमे तु निवृत्तिः । पश्चमे वेति पुत्रिकापुत्रविषयमेतत् । अत्र बौधा-यनः—कथं खळु पुत्रिकापुत्रस्य पिण्डदानम् । एतत्तेऽमुष्ये पितः, मम पितामह ये च त्वामनु, एतत्तेऽमुष्ये पितामह मम पपितामह ये च त्वामनु, एतत्तेऽमुष्ये पितामह मम पपितामह ये च त्वामनिकृति । अस्यैवं पिण्डं द्दतः पश्चमे प्राप्त पिण्डंनिवृत्तिः । मात्स्यपुराणे—

लेपभाजश्रतुर्थाद्याः पिग्डभागिनः । सप्तमः पिण्डदस्तेषां सापिण्डचं साप्तपौरुषम् ॥ इति ॥ १२ ॥ जननऽप्येवस् ॥ १३ ॥

शावमाशीचं दशरात्रमित्यादेः प्रभाते तिसुमिरित्यन्तस्यातिदेशः। यथा शावमाशीचं तथा जननेऽपीति दृष्टव्यम् ॥ १३॥

मातापित्रोस्तन्मातुर्वा ॥ १४ ॥

तज्जननाशीचं मातापित्रोवां मातुरेव वा । मुख्यत्वाज्जनन्याः पितुः मागेव । ज्ञातीनां तत्र व्याद्यः

मूर्तकं तु सार्पण्डानां पित्रोवां मातुरेव वा ॥ इति ।

मातापित्रोर्वा तन्त्रिमित्तत्वादिति । मनुस्तु-

जननेऽप्येवमेव स्यानिपुणां शुद्धिमिच्छताम् । सर्वेषां शावमाशीचं मातापित्रास्तु सूतकम् ॥ इति ।

याज्ञवल्क्यः त्रिरात्रं द्शरात्रं वा शावमाशौचिमिष्यते । ऊनद्विवर्ष उभयोः सूतकं मातुरेव हि ॥ इति ।

बौधायनः—जनने तावन्मातापित्रोईशाहमाशीचे । मातुरित्येके । तत्परि हरणात् । पितुरित्येके । शुक्रमाधान्यात् । अयोनिजा सपि पुत्राः श्रूयन्ते । मा तापित्रोरेव तु संसर्गसामान्यात् ।

अङ्गिराः—नाशौचं सूतके पोक्तं सापिण्डानां कथंचन । मातापित्रोरशौचं स्यातसूतकं मातुरेव च ॥

१ क, ख. घ चतुर्थः।

सर्वेषां शावमाशौर्वं मातापित्रोस्तु सूतकम् ।

मातुर्वा सूतकं तस्मादुपस्पृश्य पिता शुचिः ॥ इति ।
शङ्खलिखितौ—जैननेऽप्येवम् । तत्र मातापितरावशेची इति । मातेत्येके ॥
इति ।

पैठीनासः- जेनने सिपण्डाः शुचयो मातापित्रोस्तु सूतकम् । सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ॥ इति ।

अत्र वृत्ताखपेक्षो दशौहो नेषां विकल्पः । अन्ये भणन्ति अनिधकारस्य क्षणमाशीचं सर्वेषां भवति । ' उभयत्र दशाहानि कुलस्यानं न भुज्यते ' इति-मानवे दर्शनात । अस्पार्शितालक्षणं तु मातापित्रोरेवेति । गृहान्तरे वसतस्तरसंग-मगच्छतः पितुश्य नेति । ' सूतके स्तकावर्जं संस्पर्शो न निषिष्यते ' इति च पठन्ति ॥ १४ ॥

> गर्भमात्तसमारात्रीः स्नंसने गर्भस्य ॥ १५ ॥ आ चतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातः पश्चमषष्ठयोः । अत उर्ध्वं तु नार्रणां स्रवः पसव उच्यते ॥ इति ।

तिस्रो गर्भविषद्स्ताः सर्वाः स्रंसनदाब्हेनोच्यन्ते । यावितथे मासे गर्भस्य संसनं तन्माससमा रात्रीराश्चीचं भवित । अत्यन्तसंयोगे द्वितीया । द्वितीयमासा-दियथामाससंख्यान्यहानीति ॥ १५॥

ज्यहं वा ॥ १६॥

द्वितीयेऽपि मासे त्र्यहं वाऽपि भवति । चतुर्षु तूत्कर्षः ॥ १६ ॥ श्रुत्वा चोध्वै दशम्याः पक्षिणीम् ॥ १७॥

द्यामीग्रहणं द्याहादेः परिपूर्णाशीचस्योपस्थणम् । अहर्द्वेयमध्यगता रात्रिः पक्षिणी रात्रिद्वयमध्यगतमहर्वा । पूर्ववद्दितीयामाप्तिर्विपक्तरणात् । मरणानिमित्तमूर्ध्वं द्याहादाशीचकालेशिकान्ते यदि ज्ञातिमरणं शृण्यात्तः पक्षि-णीमाशीचं भवति । दिवा श्रवणे तदहरन्तरा रात्रिस्त्व (र)परेद्यश्राहः । रात्री श्रवणे सा रात्रिरपरेद्युरहोरात्र इति ।

[्]र क. ख. घ. ची न मा। २ ग. सिपण्ढाः शुचयः सर्वे मा। ३ क. शाहे तेषां विकल्पेन जल्पन्तेऽन्ये। अ०। ४ ग. अस्पृश्यता।

4

अत्र मनुः-अतिकान्ते दशाहे तु त्रिरात्रमशु विर्भवेत ॥ इति । तथा जावाछि:-अतीते सूत हे स्वे स्वे तिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ इति । अत्र सूतकशब्द आशौचपर्यायः । विष्णुस्तु -व्यतीते त्वासंवत्सरस्यान्त एकरात्रेणोति । एषा देशकालधर्मापेक्षया व्यवस्था ।

> वृद्धवसिष्ठः-मासत्रये त्रिरात्रं तु षण्मासे पक्षिणी भवेत् । एतच्च सर्वं संवत्सरादवांक्। अत्र मनु:-

संवत्सरे ब्यतीते तु स्पृष्ट्वैवापो विद्याध्यति ॥ इति । अत्र पैठीनासिः-पितसै चेन्मृतौ स्यातां दूरस्थोऽपि हि पुत्रकः। श्रुत्वा तद्दिनमारभ्य दशांहं सूतकी भवेत् ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे-पितृपत्न्यां व्यतीतायां मातृवर्जं द्विजोत्तमः । संवत्सरे व्यतिकान्ते त्रिरात्रमशुगचिर्भवेत् ॥

निर्देशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च । एतत्तु समानोदकविषयम् ॥ १७॥

असपिण्डे योनिसंबन्धे सहाध्यायिनि च ॥ १८॥

सिपण्डता यस्य निवृत्ता सोऽसिपण्डः समानोद्कः । यानिसंबन्धो माता महमातृष्वसृतत्पुत्राद्यः स्त्रीणां पत्तानां पित्रादयः स्वस्रादयश्च । सहाध्यायी एकस्पादुपाध्यायाद्धीतऋत्स्नवेदः । चकारात्स्मृत्यन्तरपठिताः पितृष्वसृतदप-त्यादयोऽन्ये च। एतेषु मृतेषु परस्परं पक्षिणीमाशौचं भवति। पक्षिणीकाले त्वतीते स्नातमेव । मनुस्तु समानोदके त्रिरात्रमाह -

रजन्याऽह्रैव चैकेन त्रिरात्रेरेव च त्रिमिः।

श्चवस्पृशो विशुध्यन्ति त्र्यहात्तूद्कदायिनः ॥ इति ।

अनयोः पूर्ववद्व्यवस्था । एतद्द्वयमप्यनुपनीतमरणाविषयम् । ततोऽर्वा-क्स्नानमेव । जननेऽपि समानोदकानां मनुना त्र्यहो दर्शितः

जन्मन्येकोदकानां तु त्र्यहाच्छुद्धिरिहेष्यते ।। इति ॥ १८ ॥

सब्रह्मचारिण्येकाहम् ॥ १९॥

समानो बसचारी सबसचारी सुहत् । तस्मिन्मृत एकमहोरात्रमाशीचं भवति ॥ १९ ॥

श्रोत्रिये चोपसंपन्ने ॥ २०॥

श्रोत्रियोऽधीतवेदः । उपसंपन्न आश्रितो गृहवासादिना । तस्मिन्मृत एका हमाशोचम् । चकारादेकाहमित्यनुवर्ततो अत्राङ्गिराः-

> गृहे यस्य मृतः कश्चित्तत्सापिण्डः कथंचन । तस्याप्यशौचं विज्ञेयं त्रिरात्रं नात्र संशयः ॥ इति ।

मनु:-श्रोतिये तूपसंपने तिरात्रमशुचिभवेत् ॥ इति ।

आङ्गिरसमपि वचनं श्रोतियविषयम् । अत्र विष्णुः—स्त्रीणां विवाहः संस्कारः संस्कृतासु स्त्रीषु नाऽऽशीचं पितृपक्षे । तत्पसवमरणे पितृगृहे चेद्भवेतां तदैकरानं तिरात्रं चेति । पसव एकरात्रं मरणे तिरात्रामिति व्यवस्थितो विकल्पः ॥ २० ॥

प्रेतोपस्पर्शने दशरात्रमाशौचमाभसंधाय चेत्॥ २१॥

नात्रोपस्पर्शनशब्देन स्पर्शमात्रं विवक्षितम् । पतितचण्डालेत्यादिना सचै वस्तानस्य तद्विषये वक्ष्यमाणत्वात् । किं तद्युपस्पर्शनं प्रतिनर्हरणम् । तस्मिन्दश-रात्रमाशाचं भवति । तच्चे निर्हरणमाभिसंधाय वेतनादिपयोजनाभिसंधानेन भवति न धर्मार्थम् । सत्यप्याशोचाधिकारे पुनराशोचयहणं पूर्वस्मादाशोचादस्य वैधर्म्यं ज्ञापनार्थम् । तेन वक्ष्यमाणमधःशय्यासनादिकमास्मिन्विषये न भवति । अस्पृश्य ताधिकारस्रक्षणमेव ॥ २१॥

उक्तं वैश्यशूद्धयोः ॥ २२ ॥

अस्मिन्नभिसंधाय पेतोपस्पर्शनादिविषये वैश्यशूदयोरनुक्तमाशीचं द्वादश-रात्रमर्धमासामिति पूर्वोक्तम् ॥ २२ ॥

आर्तवीर्वा ॥ २३ ॥

ऋतुसमानसंख्या वा रात्रीराशीचम् । षड् ऋतवः । पश्च वा हेमन्तशि शिरयोः समासेन ॥ २३ ॥

पुर्वयोश्व ॥ २४ ॥

पूर्वयोत्रीह्मणक्षत्त्रययोरिष वर्णयोरुक्तमाञौचमार्तविर्वा रात्रीराञौचम् उक्तस्यापि ब्राह्मणस्य पूर्वयोरिति पुनरुपादानमार्तवीर्वेति विकल्पसिद्ध्वर्थम् । पूर्ववदेशकालावस्थाद्यपेक्षो विकल्पः । अत्र भृतिराहिते निर्हारे मनुः-

> असिपण्डं द्विजं पेतं विपो निर्हत्य बन्धुवत् । विद्याध्याति त्रिरात्रेण मातुराप्तांश्य बान्धवान् ॥ यद्यनमित तेषां यः स दशाहेन शुध्यति । अनद्जन्नमह्रव न चेत्तस्मिनगृहे वसेत् ॥ इति ।

ः बन्धुवत्स्नेहादिना । यामाद्वहिर्वासे वोढूणां सज्योतिः । यथाऽऽह हारीतः-मेतस्पृतो मामं न पविद्येयुरा नक्षत्रदर्शनादात्रों चेदाऽऽदित्यदर्शनात्ततः शुचिरिति । मामपवेशे तु अनदनन्त्रमह्नैवेति मानवमेकाहः । अनाथविषये पराशरः-

> अनाथं ब्राह्मणं पेतं ये वहन्ति द्विजातयः। ्पदे पदे कतुफलमानुपूर्व्यालभन्ति ते ॥ मेतस्पर्शनसंस्कारैब्राह्मणो नैव दुष्यति । वोढा चैवामिदाता च सधः स्नात्वा विशुध्यति ॥ इति ॥२४॥

. त्रयहं वा ॥ ५५ ॥ :

मेतोपस्पर्शन इत्यारभ्य सर्वेषां वर्णानां त्र्यहं वा । अत्युत्क्रष्टाविषयापिदम् 11 24 11

आचार्यतत्पुत्रस्त्रीयाज्यशिष्येषु चैवम् ॥ २६ ॥

उपनीय तु यः शिष्यमित्युक्तस्रण आचार्यः । तत्पुत्र आचार्यपुत्रः । आचार्यस्त्री । याज्यो यजनीय ऋत्विगशेक्षया यजमानः । शिष्यः प्रसिद्धः । एतेषु मृतेषु चैवं न्यहमिति ॥ २६ ॥

विजातीयनिहारिविषयमाह-

अवरश्चेद्वर्णः पूर्ववर्णमुपस्पृशेतपूर्वी वाऽवरं तत्र शवोक्तमाशौचम्

11 29 11

अवरो जघन्यः क्षात्त्रियादिर्बाह्मणापेक्षया । पूर्वो ब्राह्मणादिः क्षत्त्रियाद्य-पेक्षवा । तयोरन्योन्यनिर्हारे शवजात्युक्तमाशीचं भवाते । ब्राह्मणशवनिर्हरणे क्षित्रियस्य दशराशम् । क्षित्रियस्यं शवनिर्हरणे बाह्मणस्यैकादशराशमित्यादि । अशैव भृत्यर्थे व्याघरः—

अवरश्रेद्वरं वर्णमवरं वा वरो यदि । चरेच्छावं तदाऽऽशोचं दृष्टार्थे द्विगुणं भवेत् ॥ इति ॥ २० ॥ बुद्धिपूर्वश्चवस्पर्शमात्रे मासाङ्गकेन सह शुद्धिमाहः— पतितचण्डालसूतिकोदक्याश्चसपृष्टितत्सपृष्टुग्चुप् पर्शने सचैलोदकोपस्पर्शनाच्छुध्येत् ॥ २८ ॥

पतितो बसहादिः । चण्डालसूतिकोदनयाश्यवाः प्रसिद्धा । एतेषां स्पृष्टी, तत्स्पृष्टी स्प्रष्ट्वणां च स्पृथावुपस्पर्शने तदुपस्पर्शने, स्प्रष्ट्वणां स्पर्शने च सचेले - दकोपस्पर्शनात्स्नानाच्छुध्येत् । स्नानेन सचैलत्वेन शुद्धो । अतः क्रियाविशेष-णपाठोऽयुक्तः । अबुद्धिपूर्वे मानवम्—

दिवाकीर्तिमुद्दक्यां च पार्वतं सूतिकां तथा । यावं तत्स्पृष्टिनं चैव स्पृष्ट्वा स्नानेन ग्राध्याति । इति ॥२८॥ श्वानुगमने च ॥ २९॥

अनुगम्येच्छयाऽप्येतं ज्ञातिमज्ञातिमेव वा । स्नात्वा सचैलं स्पृष्ट्वाऽाम्नं घृतं पाश्य विशुध्यति ॥ इति ।

घृतपाश्चनादूर्ध्वमिपि स्नानं केचिदिच्छन्ति । तत्र मूळं मृग्यम् । याज्ञव-ल्क्योऽपि 'सृष्ट्वाऽभिं घृतभुक्शुचिरित्येतावदेवाऽऽह । इदं सजातीयविषयम् । ब्राह्मणस्य क्षत्त्रियानुगमये वसिष्ठोक्तम् । निरुष्यास्थि स्पृष्ट्वा त्रिरात्रमाश्चीचशस्थिर्म त्वहोरात्रं शवानुगमने चैव।मिति १ रवमिति त्रिरात्राहोरात्रयोरति श्वः । अत्र क्षाः त्वियानुगमन एकरात्रं वैश्यानुगमने त्रिरात्रमिति व्यवस्था शूद्रानुगमने त्विद्धाराः –

> पेतीभूतं तु यः शूदं बासणो ज्ञानदुर्बछ: । अनुगच्छेन्नीयमानं तिरात्रं सोऽशुचिभेवेत् ॥ त्रिरात्रे तु ततः पूर्णं नदीं गत्व समुद्रगाम् । पाणायामशतं कृत्वा घृतं पाश्य विशुध्यति ॥ इति ।

क्षत्त्रियवैश्ययोर्वेश्यश्रदानुगमने ब्राह्मणवत्करःयम् । क्षत्त्रियस्य श्रदानुगमन एकरात्रं पाणायामशतं च । मनुः- नारं स्पृष्ट्वाऽस्थि सस्नेहं सवासा जलमाविशेत् । आचम्यैव तु निःस्नेहं गां स्पृष्ट्वा वीक्ष्य वा रविम् ॥ इति ।

इदमब्दिपूर्वविषयम् । वृद्धमनुः-

दहनं वहनं चापि मेतस्यान्यस्य गर्भवान् । न कुर्यादुभयं तन् कुर्यादेव पितुः सदा ॥ ज्येष्ठस्य वाऽनपत्यस्य मातुसस्य सुतस्य वा ॥ इति ।

पितुरिति मातुरप्युपछक्षणम् । आतुररोदने पारस्करः-

अस्थिसंचयनादवींग्रुदित्वा स्नानमाचरेत् । अन्तर्दशाहे विषस्य ऊर्ध्वमाचमनं स्मृतम् ॥ इति ।

विषस्य मृतस्यान्तर्दशाह रुद्तां सर्वेषां वर्णानां समानिषदम् । अत्र विष्णुः— सर्वस्येव प्रेतस्य बान्धवैः सहाश्रुपातं कृत्वा स्नानेन । अकृतास्थिसंचये सचैल स्नानेन शुंद्धिरिति पकरणादम्यते । इदं क्षत्त्रियादिमरणे समानापकृष्टानां रोदने शूदवर्णम् । त्रिवर्णविषयातुररोदने ब्रह्मपुराणे पठान्ति—

अनस्थिसंचया विमो रौति चेत्सत्त्रवैश्ययोः । तदा स्नातः सचैलस्तु द्वितीयेऽहानि शुध्छति ॥ कते तु संचये विमः स्नानेनैव शुचिर्भवत् ॥ इति ।

क्षत्वियस्य वैश्यातुरव्यञ्जनेऽप्येवमेवोहितव्यम् । शूदातुरव्यञ्जने पार-

अस्थिसंचयनादर्वाग्यदि विपोऽश्रु पातयेत् । मृते शूदे गृहं गत्वा त्रिरात्रेण विशुध्यति ॥ अस्थिसंचयनादूध्वं मासो यावद्द्विजातयः । अहोरात्रेण शुध्यन्ति वाससां क्षालेनन च ॥

इत्यलं पसकानुपसङ्गेन ॥ २९ ॥

ज्ञुनश्च॥ ३०॥

उपसपस्तमप्यपेक्षते । शुनश्चोपस्पर्शने सचैलादकोपस्पर्शनाच्छुध्येत् । पृथ करणं तत्स्पृष्ठिन्यायनिवृत्यर्थम् ॥ ३० ॥

यदुपहन्यादित्येके ॥ ३१ ॥

ंएके तु यदङ्गं श्रोपहन्यात्तस्येव पक्षालनामिच्छन्ति । अत्राऽऽपस्त-

म्बीयो विशेष: -शुनोपहतः सचैठोऽवगाहेत । पक्षाल्य वा तं देशमाग्नेना संस्पृश्य पुनः प्रक्षाल्य पादौ चाऽऽचम्य पयतो भवतीति । ऊर्ध्वीङ्गन्सपर्शे स्नानमधः पक्षालनमिति व्यवस्थां जातूकण्ये आह्—

ऊर्ध्वं नाभेः करो मुक्ता स्पृश्यत्यङ्गं खरो यदि । स्नानं तत्र विधातव्यं शेषे प्रक्षाल्य शुध्याति ॥ इति ॥३१॥ उद्कदानं सिपिण्डैः कृतचूडस्य ॥ ३२॥

कृतचूडान्तस्य पेतस्य सापिण्डैरुद्कदानं कर्तव्यं यावदाशीचम् । न ततोऽ-वीगिति । अग्निसंस्कारोऽप्यस्येव । यथाऽऽह लौगाक्षिः—

> तृष्णीमेवोद्कं दद्यात्तृष्णीमेवाशिमेव च । सर्वेषां कृतचूडानामन्यत्रापीच्छया द्वयम् ॥ इति ॥

एवं च कृतचूडस्य नियतोऽश्विसंस्कार उद्कदानं च । अकृतचूडस्य त्वनि-यतं तद्करणे न पत्यवायः । चूडाकरणेन कालो लक्ष्यते तृतीयं वर्षम् । बहुषु स्मृतिषु तथा दर्शनात् । मनुरिष-

> ातिवर्षस्य कर्तव्या ब्राह्मणैरुद्काक्रिया । जातदन्तस्य वा कुर्यान्तामि चापि कृते सति ॥ इति । अग्न्युद्कग्रहणमौर्ध्वदेहिकस्योपलक्षणम् । तत्र देवलो विशेषमाह-द्रादशाद्वत्सराद्वीक्षोगण्डमरणे सति । सपिण्डीकरणं न स्यादेकोदिष्टानि कारयेत् ॥ इति ॥ ३२ ॥

तत्स्त्रीणां च ॥ ३३ ॥ तदुद्कदानं स्नीणां च कृतचूडानां कार्यम् ॥ ३३ ॥ एके प्रतानाम् ॥ ३४ ॥

एके मन्यन्ते पत्तानामव स्त्रीणामुदकदानमपत्तानां तु नैवेति । पत्तानां च भर्तृपक्षेदेंयम् ॥ ३४ ॥

अथाऽऽशौचकाले ज्ञातयः कथं वर्तेरन्-

अधःशय्यासनिनो ब्रह्मचारिणः सर्वे ॥ ३५॥

भूमादेव शयीरनासरिश्च न कटासनादिषु । मैथुनं च वर्जयेयुः । सर्व-ग्रहणं समानोदकार्थम् ॥ ६५ ॥

न मार्जयरिन् ।' ३६॥ मार्जनं गात्रमलापकर्षणम् । तच्च न कुर्युः ॥ ३६॥ न मांसं भक्षयेयुरा प्रदानात् ॥ ५७॥ पदानं श्राद्धम् । आतदन्तं गांसं न भक्षयेयु ॥ ३७॥ प्रथमतृतीयसप्तमनवमेषूद्किकिया ॥ ३८॥

मथमादिष्वहःसु सापिण्डैः मेनाय तिल्यामिश्रमुद्दकं देयमेवंगोत्रायैवंश्यमेणे मेतायैतातिलोद्कं द्दामीति । मधमे त्रीन । तृतिये नव । सप्तमे त्रिंशत् । नवमे त्रयास्त्रिंशत् । इति पश्चसप्तातिर्जलाञ्चलयो देयाः । आचारस्तु पथमेशह्ने त्रयः । द्वितीयादिष्वेकोत्तरं दीयत् ॥ ३८॥

वाससां च त्यागः ॥ ३९॥

उद्कदानकाले पारीहितानि वासांसि प्रथमतृतीयसप्तमनवमेषु त्याज्यानि अन्यानि कमेण परिधेयानि ॥ ३९ ॥

अन्ते(न्त्ये) त्वन्त्यानाम् ॥ ४ = ॥ वर्णेष्वन्त्याः श्रूदास्तेषामन्त्ये नवमेऽहानि वासँसां त्याग ॥ ४० ॥ दन्तजन्मादि मातापितृभ्याम् ॥ ४३ ॥

दन्तजनमम्भाति पुत्रस्य मातापितरौ जलं दद्याताम् । तूष्णीं माता ॥ १॥ बालदेशान्तरितप्रज्ञजितासपिण्डानां सद्यःशौचम् ॥४२॥

बालोऽक्टतचुड: देशान्तरितो देशेन व्यवहितो देशान्तरस्थः। प्रविजति निष्ठकवानप्रस्थपित्वाजकाः । असपिण्डाः समानोदकाः। तेषां मरणे ज्ञातीन सद्यःशौचं स्नानेन शुद्धिः। बालविषये याज्ञवल्क्यं—

ऊ()निद्ववार्षिकं प्रेतं निखनेकोदकं ततः । आ दन्तजन्मनः सद्य आ चूडाचैशिकी स्मृता ॥ त्रिरात्रमा वतादेशादृशरात्रमतः परम् ॥ दति ॥

अध्निरा:-यद्यप्यकृतचूडो वे जातदन्तस्तु संस्थितः ॥
दाहियित्वा तथाऽप्येनमाशैष्चं त्र्यहमाचरेत् ॥ इति ॥
मनु तु-ऊनिद्दिवार्षिकं पेतं निद्द्युर्बान्यवा यहिः ।

अलंकत्य शुचौ भूमावस्थिसंचयनादते ॥

नास्य कार्योऽभिसंस्कारो नास्य कार्योदकिनया॥ अरण्ये काष्टवत्त्यक्त्वा क्षपेत त्र्यहमेव तुः॥ इति ॥

आश्वलायनः - अद्न्तजाते परिजात एकाहम् । इति । आपस्तम्बन्तु -मातुश्च योनिसंबन्धेभ्यः पितुश्चा सप्तमात्पुरुषाद्यावतो वा संबन्धो ज्ञायते तेषां भेतेषूद्कोपस्पर्शनं गर्भान्परिहाप्यापारिसंवत्सरान्मातापितरावेव तेषु हर्तारश्चेति । एतेषां देशकुलधर्मापेक्षया व्यवस्था । अत्र कन्याविशय आपरतम्बः -

> अमोढायां तु कन्यायां सद्यःशौचं विधीयते ॥ इति ॥ अप्रीढाऽकतचुडा ॥

[याज्ञवल्क्यः--] अहस्त्वद्त्तकन्यासु बालेषु च विशोधनम् ॥ इति । इदं चौछादूर्ध्वम् । व्याघर आह-

बाले मृते सपिण्डानां सद्यःशौचं विधीयते ।

दशाहेनैव दंपत्योः सोदराणां तथैव च ॥ इति ॥

इदं तु सूतकं दशाहान्तर्भरणविषयम् ॥ तथा च--

अन्तर्दशाहे जातस्य शिशोर्निष्क्रमणं यदि ॥

सूतकनैव शुद्धिः स्यात्यित्रोः शातातपोऽत्रवीत् ॥ ४२ ॥

राज्ञां च कार्यविरोधात्॥ ४३॥

राज्ञश्व सद्यःशौचं कार्यविरोधात् । कार्यं प्रजारक्षणादि । बहुवचनिन्दें-शाद्ये चान्येऽमात्याद्यस्तत्कार्यवन्तस्तेषामपि । यस्य चेच्छति पार्थिव इति मनुः 11 83 11

ब्राह्मणस्य च स्वाध्यायानिवृत्त्यर्थः

स्वाध्यायानवृत्त्यर्थम् ॥ ४४ ॥

ब्राह्मणस्य च सद्यःशीचं स्वाध्यायनिवृत्तिर्मा भूदिति । बहुशिष्यस्या ध्यापयत इद्मुक्तम् । [अभ्यासोऽध्यायसमाप्त्यर्थः] । इत्याशीचम् ॥४४॥

इति श्रीगौतभीयवृत्तौ हरदत्ताविरचितायां मिताक्षरायां द्वितीयप्रश्ने पश्चमोऽध्यायः॥ ५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

अथ श्राद्धम् ॥ १ ॥

अथरान्दोऽधिकारार्थः । श्रादं नाम कर्माधिकियते । श्रद्धा यत्र विद्यते तच्छादम । तच्च पश्चविधम् –

नित्यं नैिमित्तिकं काम्यं वृद्धिश्राद्धमथापरम् । पार्वणं चेति विज्ञेयं श्रादं पश्चविधं बुधेः ॥

तत्र नित्यं मनुराह-

द्द्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा । पयोमूलफलेर्वाऽपि पितृभ्यः मीतिमावहन् ॥ एकमप्याशयेदिमं पित्रथे पाश्चयाज्ञिके । न चैवात्राऽऽशयेत्किचिद्वैश्वदेवं मतिद्विजम् ॥ इति ।

ब्रहणादिषु यत्कियते तन्नैमित्तिकम् ' तस्य मयोगः पार्वणवत् । एकोादृष्टं सापिण्डीकरणमष्टकंत्येतान्यपि नैमित्तिकान्येव । तत्रैकोादृष्टं षोडर्राविधम् ।

> मृतेऽहानि तु कर्तव्यं पतिमासं तु वत्सरम् । पतिसंवत्सरं चैवमाद्यमेकादशेऽहानि ॥ इति याज्ञवल्क्यः ।

एकोहिष्टं तु कर्तंब्यिभित्योद्यपादे सौगाक्षिः। ब्याहर:-एकाद्शेशक्क कर्तव्यं त्रिपक्षे च तथैव च।

> षण्मासे च ततः कुर्यादेकोहिष्टं मयत्नतः ॥ इति । ततः संवत्सरे पूर्णे तिपक्षे वा तथैव च । सापिण्डीकरणं कुर्यादवीग्वा वृद्धिसंभने ॥ इति । जातूकण्यः-चतुर्थे पश्चमे चैव नवमैकादशे तथा । यद्वं दीयते जन्तोस्तन्तवश्राद्धमुच्यते ॥

इति च पठिन्त । वर्णानुपूर्व्यव्यवस्थित नि चत्वार्येतानि । तद्व श्राख्मेक मकादशेऽहनीति प्रधानम् । एकादशग्रहणमाशौचान्तोपलक्षणम् । तत्र च मासे तदैव मासिकम् । सापिण्डोकरणे पेतस्यैकोद्दिष्टं पित्र!दिभ्यः पार्वणम् । तत्रापि

[🕟] १ कृ. ख. घ. त्याद्यो छौ। २ कृ. स्त्र. घ. म्। अस।

मासे तदेव मासिकन मध्ये दश मासिकानि त्रिपक्षषाण्मासिकयोः प्रतिसंवत्सरं चापरं मृताहे सांवत्सरिकामिति षोडशैको दिष्टानि ।

पठन्ति च-

नवित्रभषण्यास्यसांवरसरिकमासिकम् । श्रादैः पोडराभि मे । विशानत्वं विमञ्जात ॥ यस्यैतानि न कुर्वन्ति एकोहिष्टानि पोडश । पिशाचत्वं स्थिरं तस्य कृतैः श्राव्हशतैरपि ॥ इति ।

हेमन्तिशिशिरयोश्यतुर्णामपरपक्षाणामष्टमीष्वष्टका एकस्यां वा । प्रथमेऽहानि कियमाणे स्त्र्यपत्यं जायत इत्यादि कामसंयोगन कियमाणं काम्यम्। तद्पि पार्वणवदेव । विवाहादिवृद्धिकर्मसु पूर्वेद्यः कर्तव्यं वृद्धिश्राद्धम् । तस्माप्तितृभ्यः पूर्वेद्युः कियत इति ब्राह्मणमूलम् । तत्र पुग्मा ब्राह्मणा यवास्तिलार्थाः । अन्य त्पार्वणवत् । पार्वणं तु वक्ष्यते ॥ १ ॥

अमावास्यायां पितृभ्यो द्यात्॥ २॥

सूर्याचन्द्रमसौ यस्यां सह वसतः साऽमावास्या । पितृम्य इति बहुवचना त्पितृपितामहपितामहेभ्यो दद्यात् । दानपकारो गृह्ये कुः: 'होमो ब्राह्मणभोजनं विण्डानिर्वेषणम् १ इति । इह तु ब्राह्मणभोजने विशेषः ॥ २ ॥

पश्चमीप्रभृतिषु वाऽपरपक्षस्य ॥ ३ ॥

अपरपक्षः रुष्णपक्षः । तस्य पश्चमीपभृति वा दद्यात् ॥ ३ ॥

यथाश्रद्धं सर्वस्मिन्वा ॥ ४ ॥

सर्वस्मिन्वाऽपरपक्षे दद्याद्यथाश्रद्धं यथा श्रद्धा भवतीति ॥ ४ ॥ द्रव्यदेशबाह्मणसंनिधाने वा कालानियमः॥ ५॥ तिलमाषेत्यारभ्य वक्ष्यमाणं तत्तत्पशस्तं दृष्यम् । देशो गयापुष्करादिः । पुष्करष्वक्षयं श्राखं करुक्षेत्रे तथैव च।

दद्यान्महोद्धी चैव हदगोष्ठे गिरौ तथा ॥ इति व्यासः ।

यद्दाति गयाम्थश्य सर्वमानन्त्यमश्नुते । इति याज्ञवल्क्य ।

I

-4

Sele.

يتناو

ब्राह्मणाः पङ्क्तिपावना वक्ष्यमाणाः षडङ्गाविदादयः । एतेषां दृव्यादीनं संनिधाने समवाये कालनियमः सांनिधिरेव वाल इति । वाश्रव्दो विकल्पार्थः ॥ ५॥

शक्तितः प्रकर्षेद्गुणसंस्कारविधिरन्नस्य ॥ ६ ॥

अन्नस्य भक्ष्यभोज्यादेगुणाविधयः पायसत्वावेशद्सिद्धत्वाद्यः संस्कारवि धयो भर्जनमरीचीजीरकछवणादिभिः सुरभीकरणाद्यः । एतान्यथाशिक पकर्षे त्परुष्ठानकुर्यात् ॥ ६ ॥

नवावरान्भाजयेदयुजः॥ ७॥

नवसंख्याऽवरा येषां ते नवावरास्तावतो ब्राह्मणान्भोजयेत् । अयुजोऽ युग्मसंख्यान् । नवपक्षे पितुस्त्रीन्पितामहस्य जीन्मिपतामहस्य जीन् । अवरयह णादिधका आपि भवन्ति पश्चद्रशैकविद्यातिरित्यादयः । अयुज डाते वचनाद्द्वाद- शादिव्यावृत्तिः ॥ ७॥

यथोत्साहं वा ॥ ८ ॥

यथासामर्थ्यं नवभ्योऽर्वागिप भोजयेत् । अयुज इत्यनुवृत्तेस्त्रश्चेवः तथ -चाऽऽपस्तम्बः-अयुग्मांस्त्र्यवरानिति । शास्त्रान्तरेषु विधेभ्यो देवेभ्यो ब्राह्मणभो र्जिनमाम्नातं मातामह नां च । यथाऽऽह याज्ञवल्क्यः-

> द्वौ दैवे पाक्त्रयः पित्र्य उद्गेककमेव वा । मातामहानामप्येवं तन्त्रं वा वैश्वदेविकम् ॥ इति ।

दैवे द्वी बाह्मणी प्राङ्मुखावुपवेश्यो । पित्रथें तत्रोदङ्मुखाः । एकैकस्य-कमेव वेति । देवानामेकः पित्रादीनां त्रयाणामेक इति । मातामहानामण्येवं पितृ-श्राद्धवत् । द्वी दैवं मातामहाद्यर्थे त्रयः । वैश्व^{द्}विकं तन्त्रं वा भवति पितुः द्वियस्न मातामहश्राद्धस्य च ॥ ८ ॥

कीदशान्भोजयेत्तत्राऽऽह-

श्रोत्रियान्वाग्र्पवयःशीलसंपन्नान् ॥ ९ ॥

श्रीतियानधीतवेदान् । वाक्संपत्तिः सुशिक्षितं ताक्यं संस्कृतभाष-णादि । रूपसंपन्नान्सौम्यवेशनन्यनानधिकाङ्गगञ्धित्राद्यद्षिशन्वयःसंपन्नाः

1

7

ननतिबाठान् । शीलमन्तःकरणशुद्धिस्तत्संपन्नान् । एवंगुणान्भोजयेत् ॥ ९ ॥ युवभ्यो दानं प्रथमम् ॥ १० ॥

> एवंगुणेभ्यो युवभ्यः श्राद्धदानं मुख्यः कल्पः ॥ १०॥ एके पितृवत् ॥ ११॥

एके मन्य ते पितृवत्पित्राद्यनुरूपं दानामिति । यथा पित्रे तरुणाः पितामहाय वृद्धाः प्रिपतामहाय वृद्धतरा इति ॥ ११ ॥

न च तेन मित्रकर्म कुर्यात्॥ १२॥

न च तेन श्राव्हेन मित्रक्यं कुर्यात् । येन मैत्री कार्या तस्मिन्नर्थापक्षितं न भोजयेत् । मित्रलोभकारार्थं न भोजयेदित्यर्थः । आपस्तम्भस्तु - अनर्थापेक्षो भोजयोदिति विशेषेणाऽऽह ॥ २ ॥

पुत्राभावे सपिण्डा मातृसपिण्डाः शिष्या अ द्युः ॥१३॥

पुत्रा दद्युरिति पथमः कल्पः । तद्दभावे सिपण्डा भातृतत्पुत्रादयः । तद् भावे मातृसिपण्डी मातृभातृतत्पुत्रादयः । तद्दभावे शिष्य ॥ १३ ॥ तद्भाव ऋत्विमाचार्यौ ॥ १४ ॥

> शिष्याभाव ऋत्विक् । तदभाव आचार्यश्च दद्युरिति ॥ १४ ॥ श्रोतियाधीनत्वे सत्यपि वर्ज्यानाह—

> > न भोजयेग्स्तेनक्कीचगतितनास्तिकतदवृत्तिवीर-हाम्रदिधिषुपतिस्त्रीमामयाजकाजापालोत्सृष्टा-मिमद्यपकुचरक्टसाक्षिप्रातिहारिकान्॥ ५ ॥

स्तेने हिरण्यस्तेनः । क्लीबो मोघवीयों न तृतीयाप हितः । अश्रोतिय-त्वात्पतितो ब्रह्महादिः । नास्तिक पेत्यभावापवादी । तद्वृत्तिनास्तिकवृत्तिः । प्रेत्यभावमङ्गिकत्यापि यस्तद्नकूलं न चेष्टते संसर्गवशात् । वीरहा यो बुद्धिपूर्व -मग्नीनुद्दासयीत सत्यापप्यपपत्तो । श्रूयते हि—वीरहा एष देवानां योऽशिमुद्दास-यत इति । अग्रेदिधिषू इति दीर्घान्तं केचित्पठन्ति । पतिशब्दः पत्ये के संबध्यते अग्रेदिधिषुपतिदिधिषुपतिरिति ।

ज्येष्ठायां यद्यनूढायां कन्यायामूसतेऽनुजा । सा त्वग्रेदिधिषुर्ज्ञेया पूर्वा तु दिधिषु: स्मृता ॥ इति । तयोः पती । नैवण्टुकास्त्-

पुनर्भूर्दिधिषूरूढा दिस्तस्या दिथिषु पतिः।

स तु द्विजोऽग्रेदिधिषुः सैव यस्य कुटुम्बिनी ॥ इति ।

स्त्रीयामयाजकः । स्त्रीणां वतानामुपदेष्टाऽनुष्टापयिवा स स्त्रीयाजकः। ग्रामयाजको बहुयाजकः अजापालोऽजारक्षणजीवकः । उत्मृष्टाभिराशौचाद्यनुप-पत्त्या प्रमादाद्वा विच्छिन्नाभिः । मधपः सुराव्या शिरकपद्करद्वव्यस्य पाता । सुरापस्तु पतितत्वेनोकः । कुचरः कुत्सिताचारः । साक्ष्येऽनृतवका कृटसाक्षी । पंतिहारिको द्वारपालवृत्तिः । एताच भोजयत् । येषां पतितादीनां दर्शनस्पर्शना-दिकं प्रतिविदं तेषां प्रतिषेधः कृतपायश्चित्तानामपि वर्जनार्थः ॥ १५ ॥

उपपतिः॥ १६ ॥

उपपितर्जारः ॥ १६ ॥

यस्य च सः॥ १७॥

स उपपतिर्यद्विषये स च साक्षात्पतिस्तावुभावापे न भोजनीयौ ॥१७॥ कुण्डाशिसोमविकय्यगारदाहिगरदावकी-णिंगणप्रेष्यागम्यागामिहिं स्रपरिवित्तिपरिवे नृपर्याहितपर्याधातृत्य कात्मदुर्वालकुनसिश्या वदन्तश्वित्रिपौनर्भवकितवाज । राजप्रेष्यप्राति क्षिकज्ञूद्रापतिनिराकृतिकिलासिक्सीदिव-णिक् शिल्वोपजीविज्यावादित्रतालनृत्यगीत[,]

शीलान् ॥ ५८ ॥

परदारेषु जायेते द्दी सुतौ कुण्डगोलकौ । पत्यौ जीवति कुण्डः स्यान्मृते भर्तरि गोलकः ॥ इति मनुः ।

तस्य कुण्डस्यानमश्रातीति कुण्डाश्री । कुण्डयहणं गोलकस्याप्युपलक्ष-णम् । कुण्डादीनां तु पतिषेची दण्डापूंषिकवा सिद्धः । अगर आह-पारुभाजनं कुण्डं तत्रैव क्वचिद्देशेऽश्निन्त तन्न त्येजिन्त ते कुण्डाशिनः । सोमविक्रयी यत्री सोमस्य विकेता । अगारदाही वेशमदाहकः । गरदो विषस्य दाता । अवकीणी वतभ्रष्टः । अथवा यो बसचारी श्रियमुपेयात्सः । गणवेष्यो गणानां भेषणकत् । अगम्यागामी समानपवरस्रीगायी । हिंस्रः पाणिवधरुचिः ।

10

30

X

परिवेत्ताऽनुजोऽनूढे ज्येष्ठे दारपारिग्रहात् । परिवित्तिस्तु तज्ज्यायान् ॥ इति निघण्टुः ।

ज्येष्टे छताधाने छताधानः कनिष्ठः पर्याधाता ज्येष्ठः पर्याहितः ।

वसिष्ठ:-उन्मत्तः किल्विषी कुष्ठी पतितः क्लांब एव च ।

यक्ष्मामयावी च तथा ने त्याज्यः स्यात्परीक्षितुग् ॥ इति ।

शातातप:-क्लांचे देशविनष्टे च पतिते प्रमणिते तथा।

योगशास्त्राभियुक्ते च न दोषः परिवेदने ॥ इति च ।

त्यक्तः साहितिक उद्घन्यनाहो पृतृतः । दुर्वाछः खळातः । वेष्टितशेफित्यन्ये । कुनली विना कारणेन विवर्णनलः । विनष्टनल इत्यन्ये श्यावदन्तः
स्वभावतः छष्णदन्तः । धित्री धेतकुष्ठी । पौनर्भवा दिक्तढा पुनर्भूस्तस्याः पुतः ।
कितवो द्युतकरः कितं वार्ताति पणपूर्वजीवी वा । अजपो ।वहितस्य तावित्र्याः
दिज्यस्याकर्ता । राजिष्यो दृतादिः । पातिक्तिपकः कूट । छामानादिक्यतिहारी ।
श्रूद्रापतिः सेव भार्या यस्य । निराक्तिरस्पाध्यायः । श्रोत्रियानित्युक्तेऽपि पुनः
पतिषधाद्रायुपवयःशीलासँपत्तावैष्यसत्यां गतो यहणं भवति । किलासस्त्यद्योपः
पतिषधाद्रायुपवयःशीलासँपत्तावैष्यसत्यां गतो यहणं भवति । किलासस्त्यद्योपः
वर्छलीति द्विडानां पसिद्धः । भूष्त्रं मत्वर्थीयः । कुसीदी वार्धुषिको वृद्ध्या
जीवी । वश्यवृत्त्या वाणिज्योपजीवी । श्रीक्षशब्दो ज्यादिभिः पत्यकं संबध्यते ।
ज्याशीलो धनुर्वेदोपजीवी । वादित्रशिलो भेर्यादिताडनवृत्तिः । तालशीलस्ताल
वृत्तिः । नृत्यगीतशीलो च तथैतान भोजयत् ॥ १८ ॥

पित्रा वाऽकामेन विभक्तान् ॥ १९॥ ये चानिच्छता पित्रा विभक्तास्तान्न मोजयेत् ॥ १९॥ शिष्यांश्चैके समोत्रांक्च ॥ २०॥

एक आचार्याः शिष्यान्सगोत्रांश्वाभोजनीयानाहुः । एकग्रहणाद्गोजनीया इति स्वमतम् । तत्र गुणवद्संभरे तेषां गुणवत्त्वे सतीति । तथा चाऽऽपःतम्बः-समुद्दतः सोदयोऽपि भोजायतन्य इति ॥ २०॥

१ ग न न्यायः स्यात्प्रतीक्षितुम् । २ ग विष स ३ ग. बतंस्री ।

भोजयेदृध्वं त्रिभ्यः ॥ २३ ॥

यथोत्साहं वेत्यनेन सर्वार्थमेकस्यापि प्रसङ्गन्स्तानिवृत्त्यर्थामदम् त्र्यवरा-न्भोजयेत् । त्र्यवरानित्यापस्तम्बीये द्शीनाच्च ॥ २१ ॥

गुणबन्तम् ॥ २२ ॥

एकवचनप्रयोगेण गुणवांश्चेदेकपपि भोजयेत्। वृत्तिष्ठोऽपि-

आपि वा भोजयदेकं ब्राह्मणं वेदपारगम् ।

शीलंबृत्तगुणोपेतमवलक्षणवार्जित् ।। इति ।

मनुरपि-ए कैकमपि विद्वांसं दैवे पित्र्ये च भोजयेत् ।

पुष्करुं फलमामोति नामन्त्रज्ञानबहुनपि ॥ इति ॥ २२ ॥

सद्यः श्राद्धी जूद्रातल्पगस्तत्पुरीषे मासं नयति पितृन् ॥ २३॥

येन श्राखं भुक्तं स तस्मिन्नहोरात्रे श्राखीत्युच्यते । श्राख्मनेन भुक्तमिति, अत इनिठनौ । समानकालः स यदि तदहः जूदातल्पं गच्छेत् । तल्पयहर्णं भार्यार्थम् । ऊढामिप जूदां यदि गच्छेत्सद्य एव तस्याः पुरीषे पितृन्मासं नयति ॥ २३॥

इतरासु भार्यासु कल्प्यमत आह-

तस्मात्तदहर्बह्मचारी च स्यात् ॥ २४ ॥ मानवे दातुरि नियम उक्तः-

निमन्त्रितो द्विजः पित्र्ये नियतात्मा भवेत्सदा ।

न च च्छन्दांस्यधीयीत यस्य श्राखं च तद्भवेत् ॥ इति ॥ २४ ॥

श्वचाण्डालपतितावेक्षणे दुष्टम् ॥ २५ ॥

थादिभिरवोक्षेतमनं दुष्टमभाज्यं भवति । श्राखं चावेक्षितं दुष्टमकतं भवति ।। २५॥

यस्मादेवम् -

तस्मात्परिश्चिते द्यात् ॥ २६ ॥ ' परिश्चयणं तिरस्करिण्यादिना व्यवधानम् ॥ २५ ॥ तदशकौ-

ातिलैर्वा विकिरेत् ॥ २७॥

अत्र भृगु:--पानीयमपि यहत्तं तिलैमिश्रं दिजस्य तु ।

पितृभ्यः कामधुक्तत्स्यात्पितृगृक्षमिदं ततः ॥ इति ॥ २७ ॥ पङ्क्तिपावनो वा शमयेत् ॥ २८ ॥

पङ्क्तिर्येन पान्यते स पङ्क्तिपावनः । धाद्यवेक्षणे यो दोपस्तं शमयेत् ॥ २८ ॥

स कः पुनरती तमाह-

पृङ्क्तिपावनः पडङ्गविज्ज्येष्ठसामिकश्विणाचिकेतः श्विमंधुश्विसंपर्णः पश्चाप्तिः स्नातको मन्त्रबाह्मणः

विद्धर्मज्ञो बह्मदेयानुसंतान इति ॥ २९ ॥

शिक्षा कल्पो व्याकरणं ज्योतिषं निरुक्तं छन्दोविचितिरिति षडङ्गानि । त्यां पाठतोऽर्थतश्च ज्ञाता षडङ्गावित् । ज्येष्ठसामिकः—तछवकाराणामुद्दर्यं चित्रभित्येतयोगीयको ज्येष्ठसामगरछन्दोगानां तु तिद्दासीती तीर्यं तैयोगयेति (?) ज्येष्ठं साम तद्देदिता ज्येष्ठसामिकः । त्रिणाचिकतो नाचिको । बहुषु शाखासु विधीयते तैत्तिरीये कठवछीषु अतपथे च । तं यो वेद बासणेन सह स तिणाचिकतः । "मधु वाता ऋतायते " इत्येतत्तृत्वं त्रिमधु । तत्र पत्यृचं त्रयो मधुश्वन्दाः । आध्वष्ठायनोऽप्याह—'तृष्ताञ्ज्ञात्वा मधुमतीः श्रावयेत् १ इति । इह तु तद्ष्यायी पुरुषित्वमधुः । त्रितुपणं ऋग्वेदे ' एकः सुपणः स समुद्रमा विवेश १ इत्यादिकस्तृचः । तैत्तिरीयके ' ब्रह्मतेतु माम् १ इत्यादयस्त्रयोऽनुवाकाः । तत्र हि " य इमं त्रिसुपर्गमयाचितं ब्राह्मणाय द्यात् " इति श्र्यते । पूर्वव-तपुरुषे वृत्तिः । पश्चाभिः सम्यावसध्याभ्यां सह पश्चानामनुवाकानामध्येता । स्नातको विद्यावताभ्याम् । मन्त्रबाह्मणाविन्यन्त्रबाह्मलायोरर्थज्ञः । धर्मज्ञो धर्म-शाह्मणामर्थज्ञः । बह्मदेयानुसंतानो ब्राह्मिवाहोढासंतानः । इतिकरणाद्यश्चान्य एवंयुक्तः । थे मातृतः पितृतथित दश्चवं सर्यनिष्ठिता विद्यातपोभ्यां पुण्येश्च

१ ग. सीर्वं ती । २ ग. तद्वेग । ३ ग. नुतिष्ठता ।

कर्मभिर्येषामुभयतो नाबासणं निनयेयुः । पितृत इत्येक इत्येतमादिस्रकाः। स एष सर्वः पङ्किपावनः ॥ २९ ॥

हविःषु चेवम् ॥ ३० ॥ -

हवि:राब्देन दैवानि मानुषाणि च कर्माण्युच्यन्ते । ज्येष्ठा अप्रेवमक्तसणा एव ब्राह्मणा भोजयितव्या न तु प्रतिषिद्धाः स्तेनाद्य इति ॥ ३० ॥

दुर्वालादीञ्श्राद्ध एवैके ॥ ३१ ॥

एके तु दुर्वालानारभ्य येऽनुकान्तास्ताञ्ज्ञाद एव न भोजयेच तु दैवमा-नुषयोरिति मन्यन्त । स्वमते तु ते तत्राप्यभोज्या एवेति ॥ ३१ ॥

अकृतान्नश्राद्धे चैवं चैवम् ॥ ३२ ॥ 👙 💮

द्विरु।क्तिः पूर्ववत् ॥ ३२ ॥

इति श्रीगौतमीयवृत्तौ हरदत्तविरचितायां मिताक्षरायां द्वितीयप्रश्ने पष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः।

श्रोवणादि वार्षिकं प्रोष्ठपदीं वोपाकृत्याधीयीत च्छन्दांसि ॥१॥

श्रवणेन युक्ता पौर्णमासी श्रवणा । नक्षत्रेण युक्तः काल इत्युक्तस्याणा लुबविशेष इति लुप्। युक्तवद्भावस्तु न भवति । विभाषा फाल्गुनि भवणति नि-देंशात् । श्रावणीत्यापे भवति । पौर्णमास्यां हि छुवविशेष इति न भवति । फ ल्युनी कार्तिकी चैत्रीति निर्देशात् । अवणशब्दे तूमयं भवतीति ।

मेपादिस्ये सावितरि यो यो दर्शः पत्रति । चान्द्रमासास्तत्तद्दन्ताश्चेत्राद्या द्वाद्य स्मृताः॥ तेषु या या पौर्णमासी सा सा चैत्र्य।दिका स्मृता। कादाचित्केन योगेन नक्षत्रस्योति निर्णयः॥

तदेवं सिंहस्थे सवितरि याऽमावास्या तदन्ते चान्द्रमसे मासे पौर्णमासी सा श्रवणा श्रावणीति चोच्यते । श्रवणयोगस्तु भवतु मा वा भूत्। एतेन मोष्ट- अदी व्याख्याता । पोष्टपदीमित्याधिकरणे द्वितीया । अत्यन्तसंयोगे वा कथंचित् । श्रवणायां पौष्ठपद्यां वा पौर्णमास्यामुपाकृत्योपाकर्माख्यं कर्भ यथागृह्यं कृत्वा तदा च्छन्दांसि मन्त्रवासणस्थणान्यधीयीत । आचार्योऽध्या येच्छिष्या अधीयीरन् । तदिद्रमध्ययनं वार्षिक्मित्याचक्षते । वर्षतौ पतिसंवत्सरं वा भवतीति । अध्योप नमप्यात्मापेक्षयाऽध्ययनं पारायणादिवत् । शिष्यापेक्षया त्वध्यापनम् ॥ १ ॥

कियन्तं कालमधीयीत-

-10:3 🔭 अर्धपश्चमान्मासान्पश्च दक्षिणायनं वा ॥ २ ॥ 👀

अर्धे पञ्चमं येषां तानर्धपञ्चमानर्घाधिकांश्रवुरो मासान्पूर्णान्वा पञ्च मासा-न्यावद्वा दक्षिणायनम् । एवमधीयानः ॥ २ ॥

बसचार्युत्सृष्टलोया न मांसं भुञ्जीत ॥ ३ ॥

बस्चारी मवेत्स्रीसङ्गं वर्जयेत् । उत्सृष्टलोमा न रुदण्मश्रः । अकस्मा-दित्यत्रोक्तं छोमकर्म तदुत्सृष्टं येन स उत्सृष्टछोमा । एवंभूतो भवेन्न मांसं भक्ष येत् । अयमध्यापयितुरुपदेशः । ब्रह्मचारिणः पाप्त्यभावात् । आपस्तम्बोऽप्याह्-भवचनयुक्तो वर्षाश्चरदं मैथुनं वर्जयोदिति । यश्च केवलानि वतानि पारं नीत्वा जायामुपयम्य पश्चाद्घीते सोऽप्येवं तस्यात्र ग्रहणार्थमप्येवम् । आश्वलायनोऽप्याह-संगवित्ती बेह्मचारिकल्पेनेति । तत्रै त्वृतुग्रमनं पाक्षिकमम्युपगतम् । यथाऽऽह जासोपे बेत्येके पाजापत्यं तदिति ॥ ३ ॥

दैमास्यो वा नियमः ॥ ४ ॥

दी मासी भूतमाविनी वा दिमास्यः । मासाइयसि यत्स्वजी । दिगार्यवव-यस्यपि प्रयुक्तते । स एव द्वैपास्यः । अयं बसचर्यदिनियमो मासद्वयं वा भवति। शक्त्यपेक्षो विकल्पः ॥ ४ ॥

अथानध्याया उच्यन्ते-

नाधीयीत वायौ दिवा पांसहरे ॥ ५॥

पांसू हरतीति पांसुहरः । वायौ दिवा पांसुहरे वाति सति नाधीयीत । अपांसुहरे न दोषः । पांसुहरेऽपि रानी न दोषः ॥ ५ ॥

१ घ. नमथाऽऽत्मपे। २ क. ख. घ. स्यार्थं च म । ३ क ख. घ. ञ त्वनुगमपा ।

कर्णश्राविणि नक्तम् ॥ ६॥

व्यत्ययेनायं कर्षोण कर्तृपत्ययः । कर्णाभ्यां श्रूयत इति कर्णश्रावी । एवंभूते महाघोषे वायौ वाति सति नक्तं नाधीयीत ॥ ६ ॥

वाणभेरीमृदङ्गगर्तार्तशब्देषु ॥ ७॥

वाणो वीणाविशेषः । वाणः श्रातन्तुरिति महावते दर्शनात् । मेरीमृरङ्गी प्रसिद्धौ । गर्तो रथः । ' आरोहतं वरुण भित्र गर्तम् ' । ' स्तुहि श्रुते गर्तसद्मुर' इत्यादौ दर्शनात् । आर्तो बन्धुमरणादिना दुःखितः । तेषां शब्दे श्रूयमाणे तावन्तं कालं नाधीयीत ॥ ७ ॥

श्वञ्चगालगर्दभसंहादे ॥ ८॥ -

संह्यदः सहराब्दनम् । शुनां शृगालानां गदैभानां संह्यदं नाधीयीत । त्रयाणां तु सहराब्देन दण्डापूपिकया सिद्धः प्रतिषेधः ॥ ८॥

रोंहितेन्द्रधनुर्नीहारेषु ॥ ९ ॥

आकाशे लोहिते, इन्द्रधनुषि दश्यमाने, निहारो हिमानी तस्यां च । ताव-न्तं कालं नाधीयीत ॥ ९ ॥

अभ्रद्र्शने चापतौ ॥ १०॥

अपर्तुरवर्षतुः । तत्र सोदकस्य मघस्य दर्शने नाधीयीत ॥ १०॥

मूत्रित उच्चारिते ॥११॥

संजातमूत्रेऽल्पे मूत्रितः । उच्चारितोऽपि तथा । तत्र श्रेयानपि नःधीयित् । उत्सर्गे तु मानसमप्यगुचिरिति वक्ष्यति ॥ ११ ॥

निशायां संध्योदकेषु ॥१२॥

निज्ञा रात्रेमध्यमो भागस्तस्मिन्संध्यायामुद्दके चावस्थितो नाधीधीत॥१॥।
वर्षति च ॥१३॥

वर्षाि च देवे तावनाधीयीत । धात्वर्थमात्रं विविक्षितं न परिमाणाविशेषः

एके वलीक मंतानाम्॥ १४॥

एक मन्यन्ते वलीकसंतानं वलीकं नीघं गृहपटलान्तस्तत्र वर्षधारा संत • न्यते यथा तथा वर्षति देवे नाध्येयम् ॥ १४०॥

आचार्यपश्विषणे ॥ १५ ॥

आचार्यो गुरुशुको तयोः परिवेषणे नाधीयीत । अपर आह-परिवेषणं अक्षेभोज्याद्यकोपहरणम् । ब्राह्मणानन्त्रेन परिवेष्येत्यादे। दर्शनात । आचार्यस्य परिवेषणे नाधीयीतेति ॥ १५॥

ज्योतिषोश्च ॥ १६॥

मसिद्धज्योतिषी सूर्याचन्द्रमसौ । तयोश्व परिवेषणे नाधीयीत । पूर्वसूत्रे द्वितीयपक्षेऽत्रानुवृत्तस्य परिवेषणशब्दस्यार्थभेदोऽङ्गीकरणीयः ॥ १६ ॥

भीतो यानस्थः शयानः प्रौढपादः ॥ १७ ॥

भीतो वर्तमानभयः । यानस्थोऽश्वाद्याः ढः । श्रयानः श्रय्यामासेवमानः । मौढपादः पादे पादान्तराधायी पीठासनाद्यारोपितपादो वा । एवँभूतेन नाध्येयम् ॥ १७॥

रमशानयामान्तमहापथाशौचेषु ॥ १८॥

श्मशानं शवदाहस्थानम् । ग्रामान्तो ग्रामसीमा महापथः पसिद्धः अश्रीचं शै.चराहित्यम् । एतेषु स्थानेषु नाध्येयम् । अथवाऽशीचं जननमरण - निमित्तमस्पर्शत्वक्षणं तस्मिन्नापि नाध्येयम् ॥ १८ ॥

पूर्तिगन्धान्तः श्विद्वाकीर्र्यञ्चाद्रसंनिधाने ॥ १९ ॥
पूर्तिगन्थे व्हाणगन्धे । दिवाकीर्र्यश्चण्डालः । अन्तः शब्दः उभाभ्यां संबध्यते । अन्तः शवेऽन्तिर्दिवाकीर्र्ये च ग्राम इति । शूद्रसंनिधाने (च) नाध्येयम् ।
देदैकवद्भावः । आपस्तम्बोऽपि-अन्तः शवेऽन्तश्चण्डाल इति ॥ १९ ॥

भुक्तके चोद्गारे ॥ २० ॥
भक्त (क) मम्लमम्ले चोद्गारे वर्तमा । नाधीयीत ॥ २० ॥
ऋग्यजुं च सामशब्दो यावत् ॥ २१ ॥
ऋक्च यजुश्च ऋग्यजुवम् । अतुरेत्यादिना निपातः । यावत्सामशब्दः

७सप्तमोऽध्यायः] हरदत्तकृतामिताक्षरावृत्तिसहितानि ।

श्रूयते तावद्यवेदं यजुर्देवं च नाधीयीत । षष्ठचन्तपाटस्तु नास्मभ्यं रोचते 11 39.1

आकालिका निर्घातभूमिकम्पराहुदर्शनोल्काः॥ २२॥

निर्धातोऽश्रानिपातः । भूमिकम्पो भूचलनम् । राहुदर्शनं ब्रहणम् । उल्को-ल्कापातः । एत आकालिका अनध्यायहेतव इति मकरणाद्गम्यते । यस्मिन्काल एते भवन्ति परेद्यस्तत्पर्यन्तं काल आकालः । तत्संबद्ध आकालिकः ॥ २२॥

स्तनयित्नुवर्षविद्युतश्च प्रादुष्कृताभिषु ॥ २ . ॥

स्तनियत्नुर्भेषदाब्दः । प्रसिद्धमन्यत् । पादुष्कृतेष्विम्निष्विमहोत्रहोमकाले संध्यायां स्तनायित्नुपभृतयो भवन्तः पत्येकमाकालिकानध्यापहेतवः । अपर्ताविद्यु 11 23 11

O

ऋत्वाह - अहर्ऋतौ ॥ २४ ॥

वर्षतीवेते यदि भवेयुः संध्यायां तदा पातश्चेदहर्भात्रमनध्यायः । सार्यं तु रात्रावनध्याय इत्यर्थसिद्धत्वादनुक्तम् ॥ २४ ॥

विद्युति नक्तं चाऽऽपररात्रात् ॥ २५ ॥ 🐃 🏸

यदि नकं विद्युदृध्श्यते न संध्यायां तदाऽऽपररात्राद्र।त्रेस्तृतियो भागीऽ-पररात्र आ तस्मादनव्यायः । ततोऽध्येयम् । मानस्तु सैध्यायां विद्युति जावास्र आह-विद्युति पातरहरनध्याय इति ॥ २५ ॥

त्रिभागादिप्रवृत्तौ सर्वम् ॥ २६ ॥

यद्यह्रस्तृतीयाद्भागादारम्य विद्युत्पवर्तने न केवलायां संध्यायां नापि नकं तदा सर्वरात्रमनध्यायः ॥ २६ ॥

उल्का विद्युत्समेत्येकेषाम् ॥ २७॥

उल्का च विद्युत्तुल्या । यथा विद्युत्यनध्यायो विद्युति नकं चापररात्रा-दित्येवमुल्कापातेऽपीत्येकेषां मतम् ॥ २७ ॥

स्तनायित्नुरपराह्मे । २८॥

स्ननिथित्नुरपराहणे यदि भवति न संघ्यायां तदा विद्युत्समो भवति । आऽपररात्राद्नध्यायं करोति ॥ २८ ॥ :

र्थकार विकास करा का**षि प्रदोषे । २९ ॥** विकास हा हा स्वासी व

पदोषेऽपि भवः स्तनयित्नुर्विद्युत्समः । आऽपररात्रादनध्यायहेतुः ॥२९॥ सर्वे नक्तमाऽर्धरात्रात् ॥ ३० ॥

पथमादातिभागादारभ्याऽऽर्धरात्रात्पवृत्तः स्तनियत्नुः सर्वे नक्तमनध्यायहेतुः 11 30:14 , 4 Pr. 3

् अहश्र्वत्सज्योतिः ॥ ३१ ॥

े अहम्भित्स्तनियत्नुर्भवति पागपराह्णात्तदा सज्योतिरनध्यायः । सकलं दि-वसीमत्यर्थः । ३ %।

विषयस्थे च रााज्ञी प्रेते ॥ ३२ ॥

यस्मिन्विषये स्वयं वसाति तत्रस्थे तस्याधिपतौ रााज्ञी भेते सज्योतिरनध्यायः आकालिकमित्यन्ये ।। ३२ ॥

विप्रेष्य चान्योन्येन सह ॥ ३३॥

यदा सहाध्यायितः परस्परं वित्रवसेषुः केचिच्चाऽऽचार्येण संगतास्तदा सज्योतिरर्नध्यायः अा परेषां मेलनादित्येके । आकालिकमित्यन्ये ॥ ३३ ॥

संकुलोपाहितवेदसमाप्तिच्छदिश्राद्धमनुष्ययज्ञभोजने-ष्वहोराञम् ॥ ३४ ॥

ं संकुलश्चोरादिभिर्वामाद्युपद्रवः । उपाहितोऽभिदाहः । वेदसमाप्तिः शाखा समाप्तिः । छद्नं भुक्तोद्गारः । श्राद्धमेकोदिष्टादि । मनुष्ययज्ञो वसन्तोत्सवादिः । भोजनवान्द उभाभ्यां संबध्यते । श्राद्धभोजने मनुष्ययज्ञभोजन इति । एतेषु निमित्तेष्वहोरात्रमनध्यायः । मनुष्यमक्तिनां देवानां यज्ञो मनुष्ययज्ञ इत्यन्ये । यथाऽऽहाऽऽपरतम्बः-मनुष्यपस्तती गं देवानां यज्ञे मुक्तेत्येक इति । ये मनुष्या भत्वा प्रकृष्टेन तपसा देवाः संपन्नास्तद्यज्ञस्तत्प्रीत्यर्थे बाह्मणभोजनम् ॥ ३४ ॥

अमावास्यायां च ॥३५॥ 🕟

अमावास्यायामहोरात्रमनध्यायः ॥ ३५॥

्रह्यहं वा॥ ३६॥

तद्दः पूर्वेद्यश्च द्रचहमनध्यायः । शुक्छचतुर्दश्यां त्वनध्यायस्य मूछान्तरं मृग्यम् । एवं पतिपत्सु च ॥ ३ ॥

कार्तिकी फाल्गुन्यायाही पार्शमासी ॥ ३७ ॥ कार्तिक्याद्यास्तिसः भौर्णमास्योऽनध्यायहतवोऽहोरात्रम् । पौर्णमास्य-तरे व्वनध्याये मूळं मृग्यम् ॥ ३७ ॥

तिस्रोऽष्टकास्त्रिरात्रम् ॥ ३८ ॥

ऊर्ध्वमायहायण्यास्त्रिष्वपरपक्षेषु िस्रोऽष्टकाः । तास्त्रिरात्रमनध्यायहेतवः तद्दः पूर्वेद्यरपरेद्यश्च ॥ ३८॥ .

अन्त्यामे के ॥ ३९ ॥

एकेऽन्त्यामेकाष्टकामनध्यायहेतुं मन्यन्ते ॥ ३ 👢 💮 💮

अभितो वार्षिकम् ॥ ४० ॥

श्रवणादि वार्षिकामिति यदुकं वार्षिकमनध्ययनं तद्भितस्तस्याभयो पार्ध गोर्ये कर्मणी उपाकरणोत्सर्जने तयोरपि छतयोस्त्र्यहमनध्यायमेक इच्छन्ति

उपाकर्मणि चोत्सर्गे तिरात्रं क्षरणं स्मृतम् । इति । उद्याना—उपाकर्मणि चोत्सर्गे व्यहमनध्यायः ॥ इति ॥ ४० ॥ सर्वे वर्षाविद्यत्स्तनियत्नुर्तंनिपाते ॥ ४१ ॥

वर्षोदीनां त्रयाणां यगपत्सानिपाते त्रिरात्रमनध्याय इति सर्वं एवाऽऽचास्तुः मन्यन्ते ॥ ४ १ ॥

प्ररूपान्दानि ॥ ४२ ॥

परुष्टं स्यन्दनं वर्षं प्रस्यन्द्स्तद्वृति च काले यावत्पस्यन्दन्वन्वयायो द्वचहं त्र्यहं चतुरहं वा ॥ ४२ ॥

ऊध्व भोजन। इत्सवे ॥ ४ ३ ॥

उपनयनादावुत्सवे भोजनादूर्ध्वं तदहरनव्यायः ॥ ४३ ॥

प्राधीतस्य च निशायां चतुर्मुहूर्तम्॥ ४४ ॥

उपाक्तत्याध्येतुं पृतृतः पाधीतः । आदिकर्मणि कः कर्तरि च । तस्य निशायां चतुर्मुहूर्तं चतुरा मुहूर्तानष्टौ नाडिका अनध्यायः । 'श्रावण्यां पौर्ण-मास्यामध्यायपुपाकृत्य मासं पद्षि नाधीयीत ' इत्यापस्तम्बीयेन समानार्थमिद्म् । चकारात्त्रयोदशीपद्षेषेऽपि निशायां चतुर्मुहूर्तं निषेधो दर्शितः ॥ ४४ ॥

नित्यमेके नगरे ॥ ४५ ॥

एक आचार्या नगरे नित्यमेवाध्ययनं नेच्छन्ति । नित्यग्रहणं निशाधि-कारनिवृत्त्यथेम् । ४५॥

मानसमप्यज्ञचिः ॥४६ ॥

अप्रयतः सन्मानसमप्यध्ययनं न कुर्यात् । एवं चान्येष्वनध्यायहेतुषु मान समानिषिद्धम् ॥ ४६ ॥

्रश्राद्धिनामाकालिकम् ॥ ४७ ॥

अप्रदूपस्यास्तीति श्राष्टी श्राष्टस्य कर्ता । अत इनिठनौ ः। न तु श्राष्ट्रमनेन भुक्तिमित । भोक्ति पूर्वमेव निषिद्धत्वात् । तेषां श्राष्ट्रदातृणामाकालिकमनध्यायः अपर आह—ये श्राष्ट्र केवलं नुक्तवन्ता न पित्राद्यर्थं पात्रतया तेषां पूर्वकोऽहो । त्राप्ति । अयं त्वाकालिकनिषेधः पित्राद्यर्थं पात्रतया भुक्तवतामिति ॥ ४७ ॥

अक्रतात्रश्राद्धिकसंयोगेऽपि ॥४८॥

भोजनासंभवे यद्य(द)क्रताचं धितृभ्यो दीयते तदकताचश्रादिकम् । तत्सं योगेऽन्याकाछिकमनध्यायः । न केवलं भुक्तवतः । तत्र मनुः—

पाणि वा यदि वाऽपाणि यत्किचिच्छ्राद्धिकं भवेत् ,

तदालभ्याप्यनध्यायः पाण्यास्या वासणाः स्मृताः । इति । आमश्राद्धस्यैतदेव लिङ्गम् ।। ४८ ॥

प्रतिविद्यं च यान्स्मरन्ति (यान्स्मरन्ति) ॥४९॥
पातिविद्यं प्रतिधर्मशास्त्रं याननध्यायान्स्मरन्ति स्मर्तारस्तेष्विपि हेतुषु नाधीयीत । तत्र वसिष्ठः—दिग्दाहपर्वतपपातेषूपछरुधिरपांसुवर्षेष्वाकाछिकिमिति ।

校

श्लेष्मातकस्य शाल्मल्या मधुकस्य तथाऽप्यधः । कदाचिद्रिप नाध्येयं कोविदारकिपत्थयोः ॥ इति ॥ एवमन्यत्रापि दृष्टव्यम् । (अभ्यासोऽध्यायसमाप्त्यर्थः) ॥ ४९ ॥ इति श्रीगौतमीयवृत्तौ हरदत्तविरचितायां मिताक्षरायां द्वितीयप्रश्ले सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्ट्रमोऽध्यायः।

मानसमप्यशुचिरित्युक्तम् । तच्चाशुचित्वमाहारजानित-पि भवतीति भ क्ष्याभक्ष्यपकरणमारभ्यते—

प्रशस्तानां स्वकर्मस द्विजातीनां बाह्मणो मुञ्जीत ॥ १ ॥

स्वकर्भसु वर्णपयुक्तेष्वाश्रमभयुक्तेषू भयपयुक्तेषू च ये प्रशस्ताः 'अहो अय स्वकर्मानुतिष्ठाते ' इति तेषां दिजातीनां गृहे ब्राह्मणो भुङ्जीत । क्षुदुपद्यातार्थां भोजने पवृत्तिः । शक्या च यस्य कस्यचिद्गृहे भुङ्जानेन क्षुदुपहन्तुन् । तत्र परिसंचष्ट एषामेव गृहे ब्राह्मणो भुङ्जीत नान्येषामिति ॥ १ ॥

प्रतिगृहणीयाच्च ॥ २ ॥

मितग्रहोऽप्येषामेव सकाशा नान्येषामिति ॥ २ ॥ अस्यापवादः—

> एधोदकयवसमूलफलमध्वभयाभ्युद्यतश्च्यासनावस-थयानपयोदधिधानाशफरीप्रियङ्गुस्रङ्मार्गशाका-न्यप्रणोद्यानि सर्वेषाम् ॥ ३ ॥

एधः काष्ठम् । उद्कं घटादिस्थमि । यवसं तृजादि । मूलमाईकादि । फलमाम्रादि । मधु माक्षिकम् । अभयं परित्राणम् । अभ्युद्यतमयाचितेनापि दात्रा स्वयमानितापिई गृहाणोति । श्रव्या केटादि । आसनं पीठादि । आवसथः प्रतिश्रयः । यानं श्रकटादि । दिधिपयसी प्रति । धाना भृष्टा यवाः । श्रक्ति मत्स्यविशेषः । (प्रियङ्गू राजिका) । सञ्जाला । मार्ग मृगमांसं पन्था

वा मार्गः । शाकं वास्तुकादि । एतान्येधादीन्यपणोद्यानि सर्वतः प्रतिग्राह्याणि याचित्वाऽपि । अभ्युद्यतं पक्वानाद्यपणोद्यमपत्यारूयेयं प्रत्यारूयाने दोषः । तथा चाऽऽपस्तम्बः—

उद्यतामाहतां भिक्षां पूरस्ताद्मवेदिताम् ।
भोज्यां मेने मजापितरिप दुष्कृतकारिणः ॥
न तस्य पितरोऽश्नान्ति द्या वर्षाणि पञ्च च ।
न च हब्यं वहत्याभिर्यस्तामभ्यवमन्यते ॥ इति ।
अस्यापवादः—चिकित्सकस्य मृगयोः शल्यकन्तस्य पाशिनः ।
कुलटायाश्च षण्ढस्य तेषामन्नमनाद्यम् ॥ इति ॥ ३ ॥

पितृदेवगुरुभृत्यभरणेऽप्यन्यत् ॥ ४ ॥

पितृभरणमिवच्छेदेन श्राद्धकरणम् । देवभरणमिश्रहोत्रादि । गुरवः पित्रा-दयः । भृत्याः पुत्रदासादयः ॥ तेषां भरणं भक्तादिदानम् । एतेषु निमित्तेष्व त्यदम्युकादन्यदम्यपणोद्यम् ।

मनुश्च-गुक्तन्भृत्यांश्चोद्धारेष्यन्नार्भेष्यन्देवतातिथीन् ।

सर्वतः प्रतिगृहणियाच तु तृष्येत्स्वयं ततः ॥ इति ॥ ४ ॥

वृत्तिश्चेन्नान्तरेण ज्ञूद्रात्॥ ५॥

यदि शूद्रमतिग्रहमन्तरेण वृत्तिर्जीवनं न निर्वर्तते तदा शूद्राद्षि प्रति गृह्णीयात् ॥ ५ ॥

पशुपालक्षेत्रकर्षककुलसंगतकारयिवपरिचारकः

भोज्यानाः ॥ ६॥

यो यस्य पश्चन्पालयित क्षेत्रं च कर्षति, यश्च यस्य कुले संगत पारम्पर्येण मित्ररूपेणाऽऽगतः, यश्च यस्य परिचारको दासस्ते तेषां भोज्यानाः । पक्वमप्यन्नं तषां मुर्झीरन् । कारुः कारियता । 'ऊर्ध्वं नापितः श्मश्राणि कारयति १ इति हि दृश्यते । स च विपादृश्यायामनूढायां जातः सोऽपि भोज्यानः । तत्र मनुः—

क्षेत्रिकः बुलिमित्रश्च गोपालो दासनापितौ । प्रते जूद्रेषु भोज्याच्या यश्चाऽऽन्मानं निवेदयेत् ॥ इति । एतच्चात्यन्तापदिषयम् ॥ ६ ॥

Ġ

वाणिक्चाशिल्पी॥ ७॥

विणक्च भोज्यात्रः, स चेदिशिल्पा कुम्भकारादिको न भवति ॥७॥ अथाभोज्यमाह-

नित्यअभोज्यम् ॥ ८ ॥

नित्यं परगृहे न भोक्तव्यम् । गृहस्थस्यायं प्रतिषेधः । 'उपसिते गृहस्था ये परपाकमबुद्धयः १ इति मानवे दर्शनान् । अन्येभ्यो यावत्पत्यहं दीयते तन्नि-त्यमभोज्यम् ॥ ८ ॥

केशकीटावपन्नम्॥ ९॥

यच्चानं केशेः कीरैर्वा संबद्धं तद्प्यमोज्यम् । अत्र वसिष्ठः-कामं तु केशकीटानुत्सृज्याद्भिः पोक्ष्य भस्मनाऽवकीर्य वाचा प्रशस्तमुप-युद्धीत । इति ।

मनुस्तु — पक्षिजग्धं गवा घरातमवधूतमवक्षुतम् ।

केशकीटावपनं च मृत्पक्षेपेण शुध्यति ॥ इति ।

तदेषां रुचितो व्यवस्था । अपर आह -पाकादारम्य यत्केशकीटावपनं तत्र गौतमीयमूर्ध्वं तु वासिष्ठमानव इति ॥ ९ ॥

रणस्वलाकृष्ण श्रकुनिपदोपहतम् ॥ १०॥

स्वा स्वाप्त का । । पद्यहण तुण्डादेरप्यवयवस्योपस्थाम् । रजस्व । स्या स्वाप्त का । । पद्यहण तुण्डादेरप्यवयवस्योपस्थाम् । रजस्व । स्या स्वाप्त का । पद्यहण तुण्डादेरप्यवयवस्योपस्थाम् । रजस्व ।

वृति द्रोणाधिकं चान्नं धकाकैरुपवातितम् । न त्याज्यं तस्य गुद्धचर्थं ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ॥ गायव्यष्टसहस्रेण मन्त्रपूतेन वारिणा । भोज्यं तत्पोक्षितं विभैः पर्यक्षिकृतमेव च ॥ इति ।

उपहर्त पदेशम्खृत्येदं कार्यम् ॥ १०॥

म्ह्णाचनाऽविक्षितम् ॥ ११ ॥

भ्रत्णहा ब्रह्महा। तथा च वसिष्ठः न ब्राह्मणं हत्वा भ्रत्वा भवति इति । तेन भेक्षितमप्यभोज्यम् ॥ ११॥

१ क. ख. घ. पास्थाये गृ। २ क. ख. अनाथेम्यो ।

भावदृष्टम् ॥ १२॥

भोजायित्राध्वज्ञानेन दत्तं भोकुर्वा मनसो दुष्टिकरं भावदुष्टम् । तद्प्य रे ज्यम् ॥ १२ ॥

गवोपच्सतम् ॥ १३॥

गवा चोपसमीपे घरातमभोज्यम ॥ १३ ॥

ठ्ठाक्तं केवलभद्धि ॥ १४ ॥

यत्पकं कालवशादम्लरसं तत्केवलं शक्तम । तर्भोज्यम् । केवलग्रहणातेक्षी-रोदकादिसंष्टकमम्लमपि भाज्यम् । दिध तु केवलमप्यम्लं भोज्यम् । तककाञ्जिक-योरपक्वत्वान्नार्यं पतिषेधः । आचारोऽपि तके निविवादः । काञ्जिके सविवादः a 11 9 8 11

पुनःसिद्धम् ॥ १५ ॥

सक्टत्पक्वस्य तादृश एव पाकः पुनः क्रियते पूर्वे शुक्तपक्वामिति तत्पुनः सिद्धम् । तद्भोज्यम् । अन्यथापक । स्य तु पाकान्तरे भर्जनादौ न दोषः ॥१५॥ पयुापतमश्ाकभक्षरनेहमांसमधूनि ॥ १६ ॥

उद गस्तमयान्तारितं पर्युषितम् । दिवा पक्वं रात्रौ रात्रिपक्वं दिवा तद शुक्तमप्यभोज्यम् शाकादि तु पर्युवितमपि भोज्यम् । शाकमुक्तम् । भक्षाः पृथ कापूपादयः । स्नेहो घृततैलादिः । मांसं पसिद्धम् । मधु च । एतानि पर्युषि-तान्यपि भोज्यानि । स्नेहमध्यादीनामपक्वत्वादेवापर्युषितत्वं तस्मात्स्रोहमधुग्रहणं तत्तं सुष्टस्यााप पर्याषतस्य पर्युदासार्थम् । तेन तत्तं सुष्टं पर्युषितमपि भोज्यमग् हितम ।

तत्पर्युषितमप्याद्यं हविःशेषं च यद्भवेत् ॥ इति ॥ १६॥ उत्मृ युंश्वल्य भिश्नास्तानपदेश्यदण्डिकृतक्षकद्र्यंबन्धानिक चिकित्सकपृगरः निषुचार्यं च्छिष्टभो जिगणविद्विषाणाना म 11 90 11

उत्सष्टः पितृभ्यां परित्यक्तः ।

ग डस्योपरिजातानां परित्यागो विधोयते ।

P

इत्यादिना कारणेन दुर्भिक्षे रक्षणाशकत्या, पातिकूल्येन वी । पुंश्वली-अनियतै-पंस्का व्यभिचारिणी गणिका च । अभिश्र तः सताऽसता वा दोषेण ख्यातः । अनपदेश्यैवंभूतोऽयमिति व्यपदेशानर्हः । स्त्रीत्वपुँस्त्वाभ्यामनिदेशया तृतीयापक्रति-रित्यन्थे । दाण्डको राज्ञा दण्डाधिकार नियुक्तः । गूदात्पातिलोम्धेन वैश्यायां जातस्तक्षा । वैश्यात्क्षात्त्रयायां जातो. माहिष्यः । शूद्रायामूढायां वैश्याज्जाना करणी, तस्यां माहिष्याज्जातो रथकारः । स तक्षेत्यन्ये । कदयों लुब्धः । यम-धिकत्य मन्राह-

श्रोतियस्य कदर्यस्य वदान्यस्य च वार्धुषेः इति ।

बन्धनिको बन्धकागाररक्षी । चिकित्सको वैद्यः शल्यकर्ता वा । यो मृगयुः सनिषुचारी न भवति किंतु पाशचारी स मृगय्वनिषुचारी वागुरिकः। उच्छि-ष्टभोजी निगदासिदः । गणा जनसमुदायः । विद्विषाणः शतुः । एतेषामुन्सृष्टादी नामन्नमभोज्यम् । येऽत्र प्रशस्ता द्विजातयो न भविना तेषां यहणमुद्तिपतिषे-धार्थम् । तथा चाऽऽपस्तम्बः चिकित्तकस्य मृगयोरित्यादि । आपद्यपि मतिषे-धार्धीमत्यन्ये ॥ १७ ॥

अपङ्कत्यानां प्राग्दुर्वालात्॥ १८॥

ये चापङ्कचाः पागुपदिशस्त्यकात्मपर्यन्तास्तेषामप्यन्नमभोज्यम् ॥१८॥

वृथान्नाचमनोत्थानव्यपेतानि ॥ १६॥

यदातमार्थं पच्यते नातिथ्याद्यर्थं तद्वृथान्नम् । श्रूयते हि—' मोधमन्नं विन्दते अपनेताः १ इत्यादि । भोजनमध्ये यत्र कोपादिना पुनराचम्यत उत्थीयते वा । अपेताद्न्यद्व्यपेतं सहितमिति । एते आचमनोत्थानव्यपेते अन्ते । एतानि वृथान्नादीन्यभोज्यानि । अत्रोशना - अगुरुभिराचमनोत्थानं चेति । एकस्यां पङ्कौ बहुषु भुद्धानेध्वेकनापि गुरुव्यतिरिक्तेनाऽऽचमन उ त्थाने वा कृत इनरेषामप्यभोज्यामिति । गुरुमिः कृते न दोषः ॥ १९॥

समासमाभ्यां विषयसमे पूजातः ॥ २०॥

कुलकीलादिभिस्तुल्यः समः । विषरीतोऽसमः । विषमसमशब्दौ भाव-परे। विषमसम इति समाहारद्वंदः । पूजातः पूजायामासनपरिचरणादि-

कार्यो समेन सह पूजायां विषमेऽसमेन च साम्ये कियमाणे तदन्नम भाज्य म

अनिर्चितं च ॥ २१॥

यच्चानर्चितं दीयते 'वैधवेय मक्षण श्राति तद्प्यभोज्यम् । प्रतिग्रहेऽपि तुल्यमेतत् । यथाऽऽह मनु:-

योअर्चितं प्रतिगृहणाति ददात्यर्चितमेव यः। तावुमो गच्छतः स्वर्गं नरकं तु विपर्यये ॥ इति ।

' सायं पातरशनान्यभिपूजयेत् ' इति वसिष्ठं । तदकरणमनचितिमित्यच्ये ॥ २१॥

गोश्च क्षरियनिर्दशायाः सूतके ॥२२॥

सूतकं पसवः । पसूताया अनितकान्तद्शाहायाः गोः क्षीर्मभोज्यम्

अजामहिष्योर्च ॥२३

अजामहिष्योः सूतकेऽनिर्दशाहयोः शीरमपेयम् ॥ २३ ॥

नित्यमाविकमभेयमौष्ट्रमैकशकं च ॥ २४॥

नित्यग्रहणान्न विवलमनिर्दशाहमेव । अविरेवाबिकः । उष्ट्रः प्रसिद्धः एकशका एकखुरा अश्वादयः । अविकादीनां संबन्धि क्षीरं नित्यमीयम् । मनुस्तु-आरण्यानां तु सर्वेषां मृगाणां महिषं विना ।

स्रीक्षीरं चैव वर्ज्यानि सर्वभु(यु) क्तानि चैव हि ॥ इति

11 38 11

स्यन्दिनीयमसूसंधिनीनांच ॥ २५ ॥

यस्याः स्तनेभ्यः क्षीरं स्यन्दते सा स्यन्दिनी । यमसूर्युग्मवत्सपसूतिका । या गर्मिणी दुग्धे सा संधिनी । एककालदोहनेत्यन्ये । एवंभूतानां गवादीनां क्षीरमपेयम् ॥ ५५॥

विवत्सायाश्च ॥२६॥

वत्सेन वियुक्तः विवत्सा । तस्याश्च गवादेः क्षीरमपेयम् । अत्र पकरणे मिति। द्विकारस्यापि द्वादेः मितिषधिमिच्छन्ति । आंचारस्विनिर्देशायां तथाऽ न्यत्रानियतः ॥ २६॥

पञ्चनखारुचाराल्यकराराश्वाविद्रोधाखङ्गकच्छपाः ॥२७॥

अभक्ष्या इत्युत्तरत्र वक्ष्यति । येषां पाणिपादेषु पश्चोच्चा नलास्ते पश्चनला वानरादयोऽभक्ष्याः । शल्यादीन्वर्जियत्वा । शल्यको वराहिवशेषो यस्य नाराचाकाराणि लोमानि । शशः प्रसिद्ध । श्वावित्कल्पको यस्य चर्मणा तनु-त्राणं कियते । गोधा क्रकलासाक्रितिमहाकायः । खड्गो मृगावशेषः । शृङ्ग-मृत्युः कच्छपः प्रसिद्धः । अत्र पठनित

अभक्ष्याणां तु यन्मूत्रं तदुच्छिष्टं तथैव च । अभोज्यमिति निर्दिष्टं विष्ठा चेव पयत्नतः । इति ॥ २७॥

उभयतोद्द्रकेश्यलोभेकश्यकलिबङ्कण्लब चक्रवाकहंसाः ॥२८॥ उभयतेद्द्रता अधाद्यः द्द्राव आर्षः। केशिनः केशातिश्ययमुक्ताश्चान्याद्यः। अलोमानः सर्पाद्यः। एकशका एकखुराः। अनुभयतोः न्तार्थिनि दम्। कलविङ्को ग्रामचटकः प्रवः शकटिबलिखः पक्षी हंसचक्रवाके प्रासिदौ । एते चाभक्ष्माः॥ २८॥

काककङ्कगृध्रश्येना जलजा रक्तपादतुण्डा श्राम्यकुक्कट्कराः॥ २९ ॥

काकाद्यः प्रसिद्धाः । जलजा अपि पक्षिण एव काकादिसंनिधानात् । तेषां विशेषणं रक्तपादतुण्डा इति । य्रामे भवी याम्यः । उत्तरयोश्येतद्विशेषणं याम्यकुक्कुटो याम्यसूकर इति । आरण्ययोरप्रतिषेघः ॥ २९ ॥

धेन्वनडुहै। च ॥ ३० ॥

धनुः पयस्विनी गौः । अनड्वाननोवहन ोग्यो बलीवर्दः । द्वेदेऽच रुत्या-दिसभासान्तिनपातनाव्देन्वनड्वाहाविति न प्रामो(ती ति तदनादतम् । अपपाठेह्न वा । धेन्वनडुही चाभक्ष्यौ । आपस्तम्बीये तु गात्राभ्यां ।या मांसं भक्ष्यमुक्त्वा धेन्वनडुहो (हयो भक्ष्यं मेध्यमानडुहामिति वाजसनेयकमित्युक्तम् । आनडहं न केवलं भक्ष्यं किं तर्हि मेध्यमपीत्यर्थः । वह्ववृचवाह्मणेषु श्रू के -तद्यथैवादो मनुष्य-राज आगतेऽन्यस्मिन्वाहर्हत्यक्षाणं व। वहतं वाऽक्षदन्त इति । तत्रातिथेभेक्ष्यमन्ये

[२द्वितीयपश्चे-

षामभक्ष्यमिति । वधोऽपि किल तत्रानुज्ञातः 'दोशगोघ्नौ संपदाने ' गौर्यस्मे हन्यते स गोघ्नोऽतिथिरिति । एवं किल पूर्वमाचारः । इदानीं गन्धोऽपि (?) ॥ ३०॥

अपन्नद्ववसन्नवृथामांसानि ॥ ३१ ॥

अपन्नदन्नपतितद्न्तः , सोऽपतिषिद्धोऽपि न भक्ष्यः । ' यदा वै पशोर्द्न्ताः पद्यन्तेऽथ्य स मेध्यो भवति ' इति बह्वृचवासणम् । योऽपन्नदन्मलं तत्पश्चनािमति विज्ञायत इत्यापस्तम्बः । अवसन्तो व्याधितः । वृथामांसं वृथान्तेन व्याख्यातम् । पुनः प्रतिषेधस्तु मांसस्य पायचित्तगौरवार्थः ॥ ३१॥

किसलयक्यांकुर किम्पाकु) लञ्जननिर्यासाः ॥३२॥

किसलयः पह्नवोऽयमरोहः । क्याकु(किम्पाकु) श्वनाकः । ल्यानं मसिद्धम् । निर्यासो वृक्षत्वरभूतो धनीभूतो रसो हिङ्ग्वादिः । किसलयाद्योऽप्त- भक्ष्याः ॥ ३२ ॥

लोहिता बश्चनाः॥ ३३॥

वृक्षादिषु वृक्णमदेशे भवा ब्रश्चना निर्यासास्ते छोहिताश्चेन्न भक्ष्याः । स्वयं सूना निर्यासा छोहिता अछोहिताश्चाभक्ष्याः । ब्रश्चनपभवास्तु छोहिता एव । मनुस्तु - छोहितान्वृक्षानिर्यासान्वश्चनपभवांस्तथा । इति ।

केचितु छोहितराब्दं किसलयादिष्विप पठन्ति । हिङ्गुस्तु निर्यासो वध-नप्रभवो न वेति चिन्त्यम् । सर्वथा शिष्टा अपि मक्षयन्ति । कर्पूरस्तु न निर्यासो न वधनप्रभवो न छोहितस्तस्माद्भक्ष्य एव ॥ ३३॥

निचुदारुवकवलाकाशकमद्गुटिद्दिभमास्थालनक्तचरा अभक्ष्याः ॥ ३४ ॥

निचुदारुदीवीघाटः । मद्गुर्जलवायसः । मास्थालो वाग्वदः । नक्तंचरा उल्कादयः । अन्ये पसिद्धाः । अभक्ष्या इति पश्चनखा इत्यारभ्य संबध्यते ॥ ३४ ॥

भक्ष्याः प्रतुद्विष्क्रिरजालपादाः ॥ ६५॥

मुण्डेन पतुद्य पतुद्य ये भक्षयन्ति ते पतुदाः । ये पादाभ्यां विकीर्यं भक्ष यन्ति मयूरादयस्ते विध्किराः । जालाकारी पादी येषां ते जालपादाः । एते

भक्षाः । यद्यप्यभक्ष्येषूक्तेब्वन्ये भक्ष्या इति गम्यते तथाऽपि भक्ष्या इत्युपादानम-नुक्तानामापद्येव भारणं (यथा) स्यादनापदि मा भादिति ॥ ३५ ॥ मत्स्याश्वाविकृताः ॥ ३६ ॥

विकता मनुष्याशेरस्कादयस्ताद्वेपरीता अविकता भक्ष्या इति ॥३६॥ वध्यारच धर्मार्थे ॥ ३७ ॥

ये भक्ष्या उक्तास्ते न केवछं स्वयं मृता अन्यहता वा भक्ष्या अपि तु वध्याश्व । धर्मार्थेऽतिथिपूजादौ । अपरश्वाऽऽह ये धर्मार्थे यज्ञादौ वध्या ()ह... तिषा अपि भक्ष्या अनृत्विजामपीति । धर्मार्थं इति वचनादवकीर्णिपशोमांसमभ -क्ष्यम् । तस्य पायश्चित्तार्थत्वात् ॥ ३७ ॥

> व्यालहतादृष्टदोषवाक्प्रशस्तानभ्युक्ष्योपयुक्ततोपयुक्त<u>ी</u>त 11 35 11

अतिथीनप्याशयेद्धक्षयेच्य । न तु धार्रुरुच्छिष्टमिति वर्जयेत् । मनुरुप्याह्-था मृगग्रहणे शुचिरिति । द्विरुक्तिरुक्ता । अत्र भुनुः — 🦈

अनुमन्ता विश्वसिता निहन्ता कयविकथी। संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥ न मांसमक्षणे दोषे न मद्ये न च मैथुने। मवृत्तिरेषा भूगानां निवृत्तिस्तु महाफलम् ॥ इति । अगतिषिद्धेष्विषे मक्षणानिवृत्तिरेव ज्यायसीत्यर्थः ॥ ३८ ॥ इति श्रीगौतमीयवृत्तौ हरदत्तिराचितायां मिताक्षरायां

द्वितीयप्रश्नेऽष्टमोऽध्यायः॥८॥

अथ नवमोऽध्यायः।

अथ स्त्रीधर्मानाह—

अस्वतन्त्रा धर्मे स्त्री ॥ १ ॥ श्रीते गार्से च धर्मे स्त्री भतुरेवानुष्ठानमनुपरिशा । वता । साहिभरापे.

() अत्र किंचित्सर्वपुस्तकषु त्रुटितम् ।

स्मार्ते: पौराणिश्च धर्मैर्नान्तरेण भर्तुरनुज्ञां स्वातन्त्र्येणाधिकियते । आह शङ्खः -न च व्रतोपवासैनियमेज्यादानधर्मो वाऽनुग्रहकरणं स्त्रीणामन्यत्र पतिशुश्रूषायोः । कर्मं नु भर्तुरनुज्ञया व्रतोपवासःनियमादीनामभ्यातः स्त्रीधर्म इति । नारदोऽण्याह-

स्त्रीक्रतान्यप्रमाणानि कार्याण्याहुरनापाद ।
विशेषतो गृहक्षेत्रदानाध्ययनिक्यात् ॥
एतान्येव प्रमाणानि भर्ता यद्यनुमन्येत ॥ इति ।
मनुस्तु—बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठत्याणिग्राहस्य योवने ।
पुत्रस्य स्थिवरामावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमहिति ॥
बाल्या वा युक्त्या वा वृद्धया वाऽपि योषिता ।
न स्वातन्त्रीण कर्तव्यं कार्यं किंचिद्गृहेव्विष । इति ॥ १ ॥

नातिचरद्धतारम् ॥ २ ॥

भर्तारं नातिकामेद्भर्तुरन्यं मनसाअपि न चिन्तयेत्॥ २ ॥

वाक्चक्षुःकर्भसंयता ॥ ३ ॥

य।वदर्थसंभाषिणी वाक्सैयता । पेक्षकाः निमिन्ने क्षिणी चक्षुः सयता स्व कुटुम्बार्थकर्मव्यतिरिक्तानां कर्मणामकत्रीं कर्मसंयता । एवं मूता स्यात् ॥३॥

अथ नातिचरेन्द्रतरिमित्यस्यापवादः-

अपतिर्यत्यलिप्सुर्देवरात् ॥ ४ ॥

अनपत्याया यस्याः पतिर्मृतः साऽपत्यं लिप्समाना सती देवराक्षिप्सेत । र पत्युर्भाता देवरः कानिष्ठ इत्युपदेशः ॥ ४ ॥

तत्र पकार:-

गुरुशसूता नर्तुमतीयात् ॥ ५ ॥

गुरुभिः पतिपक्षैः पितृपक्षैर्वा नियुक्तः सनी संयुज्येत । तत्रापि नर्तुमती यादतुकालं नातिक्रामेत् । तत्रापि पर्थमे गमने गर्भसंभवः । श्रूयते हि तवलकाराणां बालणे — यदा पर्थमेऽहानि रैतः सिच्यते स गर्भः संभवत्यय यत्र तिसच्यते मुधेव तत्परासिच्यते ' इति । ततश्चर्तावापि

सक्टदेव गमनम् । अत्रीवानसो विशेषः -नियुक्तः सर्वाङ्गः घृताभ्यक्तम् । तेन सर्वाङ्गमात्मानमभ्यज्य गच्छेदिति ॥ ५ ॥

देवराभावे ऋषेण गमनीयानाह-

ि पिण्डगोत्रर्षिसंबन्धेभ्यो योनिमात्र।द्वा ॥ ६ ॥ -

पिण्डसंबन्धः सापिण्डः । गोत्रसंगन्धः सगोतः । ऋषिसंबन्धः समान पवरा हरितकुत्साद्यः । एतेभ्यः ऋषेणापत्यं लिप्सेतः । योनिमात्राद्दाः । अत्र स्मृत्यन्तरम् । सर्वाभावे योनिमात्राद्त्राह्मणजातिमात्रादिति ॥ ६ ॥

नादेवरादित्येके ॥ ७ ॥

एके मन्यन्ते देवरादेव छिप्सेत नादेवरादिति ॥ ७॥

नातिदितीयम् ॥ ८॥

मथममपत्यमतीत्य द्वितीयं न जनयोदीते ॥ ८ ॥

अथवमुत्पादितमपत्यं क्षेत्रिणो बीजिनो वेति विषये निर्णयमाह-

जनयितुरपत्यम् ॥ ९ ॥

जनियतुस्तद्पत्यं भवति न क्षेत्रिणः । आपस्त बोऽपि—उत्पादायितुः पुत्र इति हि ब्राह्मणमित्यादि ॥ ९ ॥

्समयादन्यस्य ॥ १०॥

यदि ज्ञातयः समयं कत्वा नियुक्तते क्षेत्रिणोऽतत्यमस्तिति यथा विश्वित्र वीर्यस्य क्षेत्रं सत्यवती तस्यां व्यासेनोत्पादितमपत्यिमिति ॥ १०॥

जीवतश्च क्षेत्रे ॥ ११ ॥

यदा च जीवनेव क्षेत्री बन्ध्यो रुग्णो वा पार्थयत ममं क्षेत्रे पुत्रमुत्पादयोति तदा क्षेत्रिण एवापत्यं न बीजिनः ॥ ११ ॥

परस्मात्तहः ॥ १२॥

परस्माद्देवरादिब्यितिरिक्तात्तद्दिनियुक्तायामण्यपत्यवत्यामनपत्यायां चोत्पन्नः
पुनस्तस्यैवः बीजिनो भवति न क्षेत्रिणः ॥ १२ ॥

द्वयोर्वा ॥१३॥

एवमुत्पादितमपत्यं द्वयोर्वा भवनि वीजिक्षेत्रिणोः । इदं नियुक्ताविषयम् ।

तथाच याज्ञवल्क्यः-अपुत्रेण परक्षेत्रे नियोगीत्पादितः सुतः। उभयोरप्यसौ रिक्थी पिण्डदाता च धर्मतः॥ इति ॥ १३॥

रक्षणाचु भर्तुरेव () ॥ १४ ॥

यदि भर्ता क्षेत्र्येव रक्षणं भरणं पोषणं संस्कारादि कराति न बीजी तदा भर्तुरेव तद्पत्यामिति । एवं मृते ॥ १४ ॥

श्रयमाणेऽभिगमनम् ॥ १५ ॥

यदा तु भर्ता श्रूयते तस्मिन्देशे स्थित इति तदा तमेभिमच्छेत् ॥१५॥

प्रविति तु निवृत्तिः प्रसङ्गात् ॥ १६॥

यदि तु भर्ता पविजातो भवति मोक्षाश्रमं पात्तो भवति तदा सर्वस्मात्मसः क्षानिवृत्तिः । स्वयमपि निवृत्तिमुखी संयतैव स्यादिति ॥ १६॥

द्वादश वर्षाणि बाह्यणस्य विद्यासंबन्धे ॥ १७ ॥

विद्याधिगमार्थं पोषितस्य ब्राह्मणस्य भार्या द्वादश वर्पाणि क्षपयेत् । नापत्योत्पत्तिर्नाभिगमनम् ॥ १७॥

भगतिर चैवं ज्यायसि यवीयान्कन्याग्न्युषयमेषु ॥ १८ ॥

ज्येके भ्रातर्यक्रतदारेऽनाहिताशी च पोषिते कनीयानभातैनं द्वादश वर्षाणि प्रतिक्षेत । ततः कन्यामुषयच्छेदशींश्वाऽऽद्धीत । अत्र वासिष्ठो विशेषः— अष्टी दश द्वादश वर्षाणि ज्येष्ठं भ्रातरमिनिष्टं न प्रतीक्षमाणः पायश्चित्तीयो भवतीति ।

> द्वादशैव तु वर्षाणि ज्यायान्धर्मार्थयोग्यतः । न्याय्यः प्रतीक्षितुं भ्राता श्रूयमाणः पुनः पुनः इति च ॥१८॥ पाडित्येके ॥ १९॥

एके मन्यन्ते षडेव वर्षाणि पतीक्षेतेति । पोषिते चात्यन्तवृद्धे स्थिते चा

गतं पासिङ्गकं पुनरिप स्त्रीयमानाह-

() इत उत्तरं ङ. च. संज्ञयोर्मूलयन्थयोः - 'नष्टे भर्तरि षड्वार्षिकं पक्षणम् (क्षपणम् / एतत्सूत्रं वर्तते । त्रीन्कुमार्थृतनतीत्य स्वयं युज्येतानिन्दितेनोत्सुज्यं पित्रयानलंकारान् ॥ २०॥

यदि कन्यां पित्रादिनं दद्यात्ततस्त्रीनृतूनतीत्य स्वयमेवानिन्दितेन कुछवि-द्याशीलादियुक्तेन भर्ता युज्येत पित्र्यान्पितृकुलायातानलंकारानृत्सृज्य

अत्र मनु:-अलंकारं नाऽऽददीत पित्र्यं कन्या स्वयंवरा।

मातृकं भ्रातृद्तं वा स्तेयं स्याद्यदि किंचन ॥ इति ॥ २० ॥

अत एव-

X

-

प्रदानं प्रागृतोः ॥ २१ ॥

ऋतुद्र्यनात्पागेव देया कन्या ॥ २१ ॥

अप्रयच्छन्दोषी ॥ २२ ॥

तस्मिन्कालेऽपयच्छिन्पत्रादिदाँपवान्भवति । अत्र याज्ञवल्कयः-

पिता पितामहो भागा सकुल्यो जननी तथा । कन्यामदः पूर्वनारो प्रकृतिस्थः परः परः ॥

अपयच्छन्समामोति भ्रूणहत्यामृतावृतौ इति ॥२२॥ 🞺

प्राग्वाससः प्रतिपत्तेरित्येके ॥ २३ ॥

एके मन्यन्ते यदा कन्या वास प्रतिपद्यत्रथ्यवा छण्जते तावदेव पदेयोति।। २३॥

द्रव्यादानं विवाहसिद्ध्यर्थं धर्मतन्त्रसंयोगे च ज्ञाद्रात् ॥२४॥ द्रव्यमननुज्ञातमापि ज्ञाद्राचेलादिकमादयं विवाहसिद्ध्यर्थं यावता विवाह सिध्यति तावत् । आधिके दोषः । तथा धर्मस्य पज्ञुबन्धादेः पृवृत्तस्य यत्तन्त्र मङ्गमधादि तस्य संयोगेऽविच्छेदसिद्ध्यर्थं यावता तन्तिव(वे)तेते तावदननुज्ञात मप्यादेयं ज्ञाद्रात् । आधिके दोषः ॥ २४ ॥

अन्यत्रापि ज्ञाद्वाद्वहुपशोहीनकर्मणः ॥ २५॥

' इतराभ्याऽपि दृश्यन्ते । इति पश्चम्यास्त्रः । शूद्रादन्यतोऽपि दृव्यमादेयें स चेद्रहुपशुस्तथा हीनकर्मा भवति । तदनुरूपं कर्म न करोति निषिद्धं वा कर्म सेवते । शूद्रश्रःणं विधिरयं यथा स्यादिति । तेन शूद्रालाभे वैश्याः । तदलाभे क्षत्तियात् ॥ २५ ॥ उक्तमेवार्थमुद्राहरणेन द्रीयति-

शतगारनाहितासः ॥ २६ ॥

गोय ,णमुपलक्षणम् । यस्तावद्द्रव्यो भवत्यग्नीश्च नाऽऽधत्ते । निषिद्धकर्म सेवी तु दण्डाभूपिकया व्याख्यातः ॥ २६ ॥

सहस्रगोश्चासामपात्॥ २७॥

पूर्वेण गतम् । यः सहस्रगुश्च भवति सोर्भं च न पिवति तस्मादिति ॥२७॥
सप्तभीं चाभुकत्वाऽनिचयाय ॥ २८ ॥

सप्तम्यर्थं द्वितीया । षट्सु वेलासु भोज्यालभिनाभुक्तवा सप्तम्यां वेलायां यावता वृत्तिस्तावदननुमतमप्यादेयम् । आनिचयः पुनस्तेन निचयो न कर्तव्यः । श्वो भोज्यमपि नाऽऽदेयम् । अत्र मनुः -

तथैव सप्तमे भक्ते भक्तानि-षडनश्रता । अधस्तनविधानेन हर्तव्यं हीनकर्मणा इति ॥२८॥ अप्यहीनकर्मभ्यः ॥ २९॥

अस्यामवस्थाः । महीनकर्मम्योऽप्यादेयम् । अपिशन्दः कथंचिदस्यानुज्ञात-भीति दर्शयति । तेन पाणसंशय एवेदं भवति ॥ २९ ॥

.आचक्षीत राज्ञा पृष्टः ॥ ३ : ॥

यद्यसावेवं कुर्वन्स्यामिभिर्गृहीतो राजसकारां नी स्तेन पृष्टः किमित्थमका-पीरिति तदा स्वामवस्थामाचक्षीत ! न तु मिथ्या वदोदिति । ३०॥ तेन हि भर्तव्यः श्रुतङ्गीलक्षंपञ्चश्चेत् । ३१॥

हिश्यार्थे। तेन च राज्ञा स न केवलमदण्डयः किं तार्हें तत आरम्य भर्त-व्यस्तवेयमवस्था मया न ज्ञातिति सान्तः यित्वा। स चेच्छ्रुतवृत्तशीलसंपन्नो भवति। श्रुतं शास्त्रपरिज्ञानम्। शिलं तदनुकूल आचारः। इतरे। अपि नं दण्डयः। भरणं तु तस्य तादृशं न कार्यम् । दण्डाभावः पूर्वयोरि निमित्तयोः समानः।। ३१॥

धर्मत त्रपीडायां तस्याकरणे दोषो (ऽकरणे दोषः) । ३२॥ यदि पशुबन्धारी धर्मे पवृत्तस्य तदङ्गं पथादि केनाचित्रीडितं भवाते हतमपहतं वा तस्मिनिवेदिते तदैव तस्य पितिधानं कार्यं राज्ञा । अकरणे दोषा भवति । अभ्यासोऽध्यायसमान्त्यर्थः ॥ ३२॥

इति श्रीगौतशीयवृत्तो हरदत्तविरचितायां मिताक्षरायां द्वितीयप्रश्ने नवमोऽध्यायः॥ ९ ॥

इति दितीय प्रश्नः।

अथ तृतीय पश्नस्तत्र प्रथमोऽध्यायः ।

.... पञ्चविधो धर्मः - वर्णधर्म आश्रमधर्म उमयध्रों गुणधर्मों नैमित्तिक धर्म श्रेमेति । त्तत्र वर्णभयुक्तो धर्मी, वणधर्म, उपनानं बालणस्याष्टम इति । आश्रमायुक्त आश्रमधर्मो त्रह्मचार्यादेः सामेदाधानादिरिति । उमयमयुक्त उभयधर्मी ब्राह्मणस्य ब्रह्मचारिणः पालाशो दण्ड, इत्यादि । अभिषेकगुणयुक्तस्य मजापालनादिगुणेधर्मः ब्रह्महत्यादौ निमित्ते कर्तव्यो नैमित्तिको धर्मः मायश्चित्तम् । तत्र नैमित्तिकं वक्ष्यन्नुक्तमनुभाषते--

उक्तो वर्णधर्मश्र्वाऽऽश्रमधर्मश्र्व ॥१॥

उभयधर्मगुगधर्मयोरप्युपलक्षणभेतर् । यद्यप्यन्यत्रोकं नानुभाष्यतेऽननु भाषणेऽपि वक्ष्यमाणं वाक्यते वक्तुमिति तथाऽपीहानुभाष्यत आं गङ्करानिवृत्त्यर्थम् । अन्यथोपरिष्टाद्देविकानि पुनःस्तोमादीनि पायश्चित्तान्युदाहरिष्यन्ते तानि च शूदस्य न संभवन्त्यतस्तद्वदेव पायश्चित्तान्तराण्यापे शूद्रस्य न स्युरिति कश्चिदा-राष्ट्रन । अपर अ ह—य उक्तो धर्मः स एव वर्णिन माश्रमिणां च धर्मः । वक्ष्यमाणस्तु पुरुषमात्रधर्मः । यदाह-अथ खल्वयं पुरुष इति । किं सिद्धं भवति । प्रतिलोगानामपि पायश्चित्तेष्वचिकारः सिखो भवति । यद्यपि तेषां भक्ष्याभक्ष्यविवेको नास्ति तथाऽवि गोवासणादिवये बासणस्वर्णादिहरणे च पायिश्वनं भवत्येव । अकुर्वाणा एव तु प्रायिश्वनं राज्ञा वध्याः । आहेंसास-त्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहादियनुष्यमात्रधर्मा न वर्णेष्वाश्रमेषु वा नियताः । अतस्त -दतिक्रमे युक्तमेव पायाश्चित्तम् । यत्तु पूर्वमुक्तं प्रतिलोगास्तु धर्महोना इति । तदै हिकामुध्निकश्रेयःसाधनेषु कर्मस्वाधकारनिवृत्तिपरमिति ॥ १ ॥

पायश्चित्तस्य निमित्तान्याह अथ खल्वयं पुरुषो याप्येन कर्मणा लिप्यते यथै तद्याज्ययाजनमभक्ष्यभक्षणभवद्यवद्नं शिष्टस्याकिया प्रतिषद्धसेवनामिति ॥२॥

अथ खाल्विति वाक्यालंकारे । अयं पुरुष इति संघातवार्तिनं पत्यगात्मानं निर्दिशति । याप्यं कृतिसतम् । याप्येन पापेन कर्मणा लिष्यते । तण्जन्येनाधर्मण लिप्यमाने कर्मणा लिप्यत इति भाक्तो वादः । याप्यस्य कर्मण उदाहरणपपश्ची यथैतदित्यादि । यथत्युदाहरणे । अयाज्याः पतितादयस्तेषां याजनम् । अभक्ष्या लशुनादयस्तेषां भक्षणम् । अवद्यमृतासम्यादि तस्य वदनं कथनम् । शिः विद्विः संघ्योपासनादि तस्याक्रियाऽकरणम् । पतिषिद्धस्य हिंतदिः सेवनं कर्णाम् । इति समाप्ती । एतावदेव याप्यं कर्मेति । प्रतिषिद्धसेवनित्येव सिद्धेन्याध्याजनादिग्रहणं याजनाध्यापनपतिग्रहाः सर्वेषामित्यापद्यनुज्ञा तत्रापि पाग्रिश्वत्तार्थम् । तत्रोश्चना—आपद्दिहितेः कर्मभिरापदं तीत्र्यं पुनस्पेषां पाग्रिश्चतं वतुर्भांगं कुर्यादिति । अभक्ष्यभक्षणग्रहणमप्यापदि व्याध्यादौ लश्चनाःभक्षण-विषयं च । अवद्यवदनग्रहणं तु पाणिनां तु,वधो यत्र तत्र साक्ष्यवृतं विदेशित्या-दिविषयं च । तथा यत्र बाह्मण इति ज्ञात ताड्येयुरर्थं वा हरेयुस्तत्र तद्ग्रहण्णार्थम् । असम्यानृतभाषणेनापि तन्निवार्य पश्चात्तामापदं तीरः । पायित्रतं चतुर्भागं चरोदिति ॥ २ ॥

तत्र प्रायश्वित्तं कुर्यांच कुर्यादिति मीमांसन्ते ॥६॥

तत्र तिसन्याःयकर्मछेपे पायश्चित्तम्-

मायो नाम तपः मोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते । तपोनिश्चयसंयोगात्मायश्चित्तमिति स्मृतम् ।।

इत्येवं छक्षणं कर्तव्यं न कर्तव्यमिति विचारयन्ति ब्रह्मवादिनः ॥ ३ ॥ तत्र केचित्-

न कुर्यादित्याहुः ॥४॥

॥ ४ ॥ तत्र हेतुः-

न हि कर्म क्षीयत इति ॥५॥

हिशाब्दी हेती। यस्मात्कृतं कर्म पुण्यं पापं च नान्तरेणोपभोगं क्षीयत इति । तथा च शङ्खः - W--

यथा पृथिव्यां बिजानि रत्नानि निधयो यथा । एवमार्त्मानि कर्माणि तिष्ठन्ति मसवन्ति च ॥ इति ।

उत्पन्ने तु फले नश्यित यथा बीजमङ्कुरे । पायश्चितानि तु निमित्ते कर्मान्तराणि । यथा गृहदाहादौ क्षामवत्यादयः ॥ ५ ॥

कुर्यादित्यपरम् ॥ ६॥

कुर्यात्मायाश्चित्तिम् दर्शनम् नास्मात्परमम्तीन्यपरसिद्धान्तः ॥६॥ तत्र प्रमाणत्वेन श्रुतिवाक्यान्यदाहरति—

पुनःस्तोमेनेष्ट्व। पुनः सवनमायान्तिति विज्ञायते ॥ ७ ॥
अपित्रयाहाद्बह्म पितृगृह्म पुनःस्तोमेन यजेतेति श्रूयते । अभक्ष्यभक्षणमनद्यवद्नं पुनःस्तोमेन तरतीति च। असत्पति श्रहादिदोषदूषिताः पुनःस्तोमनान्नेकाहेनेष्ट्या पुनः सवनमायान्ति । सवनश्रब्देन कर्मोच्यते । पुनरि। श्रीतानि
स्मार्तानि च कर्माण्यायान्त्याप्नुवान्ति । तद्योग्या भवन्ति ॥ ७ ॥

बात्यस्तोमश्चेष्ट्वा ॥ ८॥

पुनः सवनमायान्तोत्यनुषङ्गः । बात्या यथाकालमनुषनीताः । तेषां कर्तव्याः भायश्यित्तयागा बात्यस्तोमाः । बहुवचननिर्देशाद्धहवस्ते पत्येतव्याः ॥८॥

> तरित सर्व पाष्यानं तरित ब्रह्महत्यां योऽश्वेषधेन यजते ॥ ९ ॥

इति चेति वक्ष्यमाणमपेक्ष्यते । विज्ञायत इत्यनुषङ्गः ॥ ९ ॥ अभिष्ठुताऽभिश्रस्ययानं याजयेदिति च ॥ १ ॥

अग्निष्ठनामैकाहरतेनाभिश्वस्यमानं याजयेत् । अत्र पुनःस्तेमिदिनां दाप निर्धातार्थतया श्रुतत्वाद्वपभोगेनेव पायश्चित्तेनापि पापकं कर्म श्रीयते । राङ्ख्यः चनं चारुतपायश्चित्तविषयं पुण्यविषयं च । अथ कस्माद्वचनगम्येऽथ विचारः कियते । कुर्यान कुर्यादित । न झपनयनादावेवं विचारः रुत द्वात उच्यो । पायश्चित्तस्तुत्यथाऽयं विचारः ॥ १०॥ यथा पृथिव्यां बीजानि रत्नानि निधयो यथा । एवमार्त्माने कुर्माणि तिष्ठन्ति पसवन्ति च ॥ इति ।

उत्पन्ने तु फले नश्यित यथा वीजमङ्कुरे । पायश्चितानि तु निमित्ते कर्मान्तराणि । यथा गृहदाहादौ क्षामवत्याद्यः ॥ ५ ॥

कुर्यादित्यपरम् ॥ ६ ॥

कुर्यात्मायश्चित्तमित्यपरं दर्शनम् नास्मात्परमम्तीत्यपरसिद्धान्तः ॥६॥ तत्र प्रमाणस्वेन श्रुतिवाक्यान्यदाहरति—

पुनःस्तोभेनेष्ट्व। पुनः सवनमायान्तीति विज्ञ।यते ॥ ७ ॥ अपितमासाद्वस पितमूस पुनःस्तोमेन यजेतेति श्रूयते । अभक्ष्यभक्षणः वस्यवदनं पनःस्तोभेन तस्तीति च। असत्पतिमहादिदोषद्पिताः पुनःस्तोमनान्नै-

मवद्यवदनं पुनःस्तेर्भेन तरतीति च। असत्प्रतिश्रहादिदोषदूषिताः पुनःस्तोमनाम्ने-काहेनेष्ट्वा पुनः सवनमायान्ति । सवनश्रब्देन कर्मीच्यते । पुनरि। श्रीतानि स्मार्तानि च कर्माण्यायान्त्याप्नुवान्ति । तद्योग्या भवन्ति ॥ ७॥

बात्यस्तो मैश्र्यष्ट्वा ॥ ८॥

पुनः सवनमायान्तीत्यनुषद्भः । त्रात्या यथाकालमनुपनीताः । तेषां कर्तव्याः भायश्चित्तयागा त्रात्यस्तोमाः । बहुवचननिर्देशाद्धहवस्ते प्रत्येतव्याः ॥८॥

तरति सर्व पाप्यानं तरति ब्रह्महत्यां योऽश्ववेधेन

यजते ॥ ९ ॥

-0

इति चेति वक्ष्यमाणमपेक्ष्यते । विज्ञायत इत्यनुषङ्गः ॥ ९ ॥ अभिष्ठुताऽभिशस्ययानं याजयेदिति च ॥ १ ॥

अग्निष्ठनामैकाह्स्तेनाभिशस्यमानं याजयेत् । अंत्र पुनःस्तोमादीनां दाष निर्घातार्थतया श्रात्वादुपभागेनेव पायिश्वतेनापि पापकं कर्म क्षीयते । शङ्खवनः चनं चाकृतपायिश्वत्तविषयं पुण्यविषयं च । अथ कस्माद्वचनगम्येऽथ विचारः कियते । कृषीन कुर्यादिति । न झपन्यनादावेवं विचारः कृत द्वात उच्यते । प्रायश्चित्तस्तुत्यथाऽयं विचारः ॥ १०॥

१ इ. म्हणहत्यां। २ ग. अथ पु।

इदानीं येष्वाहत्य न प्रायश्चित्तं विहितं तेषु प्रायश्चित्तान्युपदिश्चाति—
तस्य निष्क्रयणानि जपस्तपो होम उपवासो दानम् ॥ ११ ॥
तस्य याप्यस्य कर्मणो जपादीनि पश्च निष्क्रयणानि शोधनानि ॥११॥
तत्र जप इत्युक्तं जपानाह—

उपानिषदो वेदान्तः सर्वच्छन्दः स संहिता मधून्य घमर्षणमथर्वाशिरो रुद्धाः पुरुषसूक्तं राजतरौहिणे सामनी वृहद्धथंतरे पुरुषगतिर्महानाम्न्यो महावै-राजं महादिवाकीत्यं ज्येष्ठसाम्नामन्यतमद्रहिष्य-वमानं कृष्माण्डानि, पावमान्यः सावित्री चेति पावमानानि ॥ १२॥

उपनिषदो रहस्यत्राह्मणान्याध्यात्मिकानि । तद्द्वानिरिका आरण्यकभागा वेदान्ताः । सर्वेच्छन्दःसु सर्वेषु पवचनेषु संहिता संहितापाठो न पदकमादिपाउः : मधूनि मधुराव्दयुक्तानि यजूंषि ब्रह्ममेतु मामित्यादीनि । अधमर्पणम् ' ऋतं चं। सत्यं च ' इति सूक्तं षड्ऋचमधमर्षणेन ऋषिणा दृष्टम् । अथर्वशिरोऽधववदे प्रसिद्धम् । 'देवा ह वै स्वर्गं लोकमगमन् । इत्यादि । रुद्धाः "नमस्ते रुद् मन्यवे ' इत्याद्या अनुवाका एकादश । एकशतं यजुःशाखास्तासु सर्वासु पठचन्त । पुरुषसूक्तम् ' सहस्रवीर्धा ' इत्यादि । राजतरौहिणे सामनी ' इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते । इत्यस्या मृति गाँयते । 'त्वामिन्दि हवामहे । इत्यस्य बृहत्। अभि त्वा शूर ने।नुमः १ इत्यत्र रथंतरम् । अहमस्मि प्रथमज ऋतस्य १ इतस्यां पुरुषगातिः । महानाम्न्यः ' विद्यमव । न् १ इत्याचा ऋचः । महावैराजम् ' पिबा सोमम् ' इत्यस्यां गीतं साम । महादिवाकीत्र्यम् ' विश्वाड्बृ-हत्पिबतु १ इत स्याम् । ज्येष्ठसामानि तलवकारिगाम् ' उदुन्यं चित्रम् १ इत्ये-तयोगीतानि । छन्दोगास्त्वाहुः - पूर्वानं दिय १ इत्यस्यां गोतानि त्री।ण सामान्याज्यदोहादीनि । ब्राह्मणे तथा श्रुतत्वात् । बहिष्पवमानम् । ' उपारम गायता नरः ' इत्येतासु गीतम कूब्माण्डानि वैत्तिरीयके स्वाध्यायत्राह्मणे यद्देवा देवहेडनम्' 'यद्दीव्य नुणाम्' 'आयुष्ट विश्ववीऽद्यः 'इति त्रयोऽनुवाकाः - यजुष्वाभिषायो नपुंसकानर्देशः। तत्रैवाच्छिद्राख्ये पश्ने 'यद्देवा देवहेळनम् ' इत्युनुवाके या क्रवस्ताः कूष्माण्डयः। पवमानः सोमो देवता यासां ताः पावमान्य ' स्वादिष्ठया मदिष्ठया ' इत्याद्या आ मण्डलसमाप्तेः । ' तत्सिवतुर्वरेण्यम् ' इत्येषा सावित्री प्रसिद्धा । न या काचन सवितृदेवत्या । इति—शब्दः प्रकारव चनः । एवंप्रकाराण्यन्यान्यिप पावमानानीति ।

तत्र मनु:-कौत्सं जप्त्वाऽप इत्येतद्वासिष्ठं च तृचं प्रति ।

माहित्रं शुद्धालिङ्कः च सुरापोऽपि विशुध्यति ॥

सक्टजप्त्वाऽस्यवामीयं शिवसंकल्पमेव च

सुवर्णमपहत्यापि क्षणाद्भवति निमंतः ॥

हविष्पान्तीयमभ्यस्य न तमंह इतीति चं ।

जप्त्वा तु पोरुषं सूक्तं मुच्यते गुरुतल्पगः ॥

सोमारौदं तु बह्येना माससभ्यस्य बुष्यति । इत्यादि ।

भायश्चित्तगकरणे पुनः पावमानानीतिवचनात्मायश्चित्तव्यतिरेकेणाप्यृद्धि-कामस्याहरहरेतानि जप्यानि ॥ १२॥

जपे पवृत्तस्याऽऽहारानियममाह—

पयोवतता शाकभशता फलभक्षता प्रसृतयावको हिरण्यप्राशनं घृतप्राशनं सेष्मपानिषिति मेध्यानि ॥ १३॥

पयोवतता क्षीराहारता । वत्यहणादुपवासन्यायेन । शाकं वास्तुकादि । फलं कद्ल्यादैः । प्रमृतयावकः प्रमृतपरिमितैर्यवैः पक्त ओद्नः । तत्रीश्चनसो विशेषः—स्नात श्रुचिर्भूत्वोदितेषु नक्षत्रेषु ताम्रभाजने प्रमृतयावकं श्रुपयेद्यथा यवागर्भवति । तस्य श्रुपण गले रक्षां कुर्यात् । निमो रुद्राय भूताधिपतये पर्वतानां पतये त्विमिनं रक्षस्य १ इति । शृतेऽवरोप्य देवस्य त्या सावितुरित्यादि-नो पर्यं ततो भिमन्त्रयेत् –

यवोऽसि धान्यराजोऽसि वारुणो मधुसंयुतः । निर्णोदः सर्वपापानां पवित्रमृषिभिः स्मृतम् ॥ वाचा क्रतं कर्मकतं मनसा दुर्विचिन्तनम् । अलक्ष्मीं कालकण्ठीं च सर्वे पुनत मे यवाः ॥

[।] ग. केण शुद्धिका। २ क. ख. घ. य साभिमन्त्र्य त। ३ ग. तो निम।

महापातकसंयुकं दारुणं राजिकित्विषम् । बालवृत्तमधर्मं च सर्वे पुनत मे यवाः ॥ सुवर्णस्तैन्यमवत्यमयाज्यस्य च याजनम् । ब्राह्मणानां परीवादं सर्वे पुनत मे यवाः ॥ धस्करावभूतं च काकाद्युच्छिन्नेव च । मात।पित्रोरशुक्षां सर्वे पुनत मे यवाः ॥ गणान्वं गणिकःत्वं च शूद्वान्वं श्राद्धसूतकम् ।

चौरस्यान्न तथाऽभक्ष्यं सर्वं पुनत मे यवाः ॥ इत्येतः षड्भिः ।
ततो ब्रह्मा देवानामिति पाश्य ततः प्राणाय स्वाहेत्यादिभिर्यथोक्तं सर्वं
भाश्नीयात्पष्ट्रात्रम् । ततो नियमातिक्रमजात्मितिषद्धसेवनजाद्भक्ष्यभक्षणजाच्च
सर्वस्मात्पापात्ममुच्यते । सप्तसात्रं पीत्वा अस्त्रणहत्यां गरुनत्व सुवर्णस्तन्यं सुरापानं
च पुनाति । एकाद्शर त्र पीत्वा सर्वस्त्रतपापं नद्ति । एकविंशतिरात्रं गीत्वा
गणान्पश्यति गणाधिपातिं पश्यति विद्यां पश्यति विद्याधिपातिं पश्यि । एवमहरह
रनन्याहारो यवाग्रं पाश्नीयािति । सार्परादे हिरणयं निघृष्य पाशनं हिरणयः
पाश्चनम् । घृतपाशनं पसिद्धम् । सोमपानं कतावुक्तम् । बहिरण्यन्ये । इतिकरः
णाद्यच्चान्यदे मुक्तं पश्चगव्यशङ्खपुष्पादि तस्य पाशनं मेध्यं विद्येयम् ॥ ३॥

अथ जपादीनां स्थानमाह—

सर्वे शिलोच्चयाः सर्वाः ख्रवन्त्यः पुण्या ह्रदास्तीर्थान्यृषिनिदासा गोष्ठपरिस्कन्धा इति देशाः॥ १४॥

शिलोचयाः शैलाः । स्रवन्त्यो नद्यः । सर्वग्रहणात्पुण्यापण्यविभागो नाऽऽइरणीयः । पुण्या ह्रदाः पुष्कारिण्यादयः । प्रयागादीनि तथिनि । ऋति-निवासा वसिहादिनामाश्रमाः । गोष्ठं गवां स्थानम् । परिस्वन्धा द्वालयः । इतिकरणान्तिभिषारण्यादीनि ॥ १४ ॥

॰याख्यातः सहपरिकरेग जपः । तपःस्यरूपमाह-

ब्रह्मचर्यं सत्यवचनं सन्नेष्द्कीपरूपर्शनमार्द्रवस्त्र-ताऽधःशायिताऽनाशक इति तपां।सि ॥ १५ ॥

ब्रह्मचर्यं मेथुनत्यागः । सत्यवचनं दृष्टार्थवादिन्वम् । सवन्षु पातं-

भैध्यंदिने साथं चोदकस्पर्शनं स्नानम् । आईवस्त्रता स्नानसमये परिहितस्य वाससस्तथैवापीडितस्य धारणम् । अधःशायिता स्थणडिलशायिता। अञ्चनमाराः। स एवाऽऽशकस्तस्याभावोऽनाशकोऽनशनम् । अत्रापीतिकरणात्भाणायामादीनां ग्रहणम् ।

> अत्र मनुः -सन्याहतिकाः सप्तणवाः पाणायामारेतु वोडश । अपि भ्रुत्णहनं मासात्पुनन्त्यहरहः छताः इति ।

होमाः कूष्माण्डगणहोमादयः प्रासिख्यवादिहानुक्ताः। तत्र श्रातिः 'कूष्मा-ण्डैर्जुहृयाद्योऽपूत इव मन्येत १ इत्यादि । गणहोमस्तु बौधायनोकः -

> क्षापिततं सहस्राक्षो मृगारों ऽहो मुचौ गणौ । पावमान्यश्च कूष्माण्डचो वैश्वानर्य ऋचश्च याः ॥ घृतौदनेन ता जुह्वत्सप्ताहं सवनत्रयम् । मौनवती हिवष्याची निगृहीतेन्द्रियकियः॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो महतः पातकादिष इति ।

याज्ञवल्क्यः-यत्र यत्र च संकीर्णमात्मानं मन्यते जनः । तत्र तत्र तिस्त्रेहीमः सावित्र्याः पत्यहं जपः इति ।

मनुः-न सावित्रीसमं जप्यं नाऽऽज्याहुतिसमं हुतम् । नान्त्रतोयसमं दानं न चाहिंसापरं तपः इति ।

उपवासी भक्तत्यागः । स एव तपःस्विप पुनः पुनः पठचत आदर्ख्या-पनार्थम् । अपर आह—निष्क्रयणेषु पठित उपवास इन्द्रियनिग्रहः ।

> व्यावृत्तस्येव दोषेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह । उपवासं तमाहुस्तु न शरीरस्य शोषणात्॥ इति पुराणं दर्शनादिति॥ १५॥

अथ देयान्याह-

हिरण्यं गौर्वासोऽश्वो भूमिस्तिला घृतमनमिति दयानीति॥ १६॥

निगद्व्याख्यातमेतत् ॥ १६ ॥

لازس

अथ कियान्कालो जपादीनामित्यत आह-

संवत्सरः पण्मासाञ्चत्वारस्त्रयो वा द्वौ वेकश्चतुर्वेवश्वत्यहो द्वादशाहः पडहरूव्यहाँऽहोरात्र इति कालाः ॥ १७ ॥

मिक्नि एतेषु यावता शुद्धी मन्यते तावान्कालः ॥ १७॥

एतान्येवानादेशे विकल्पन कियरन् ॥ १८ ॥

एतान्येव जपादीनि निष्क्रयणान्यनादेशे यत्राऽऽहत्य प्रायश्चित्तमानिर्देष्टं
तत्र विषये विकल्पेन कर्तव्यानि । एवकारः पौनर्वचनिकः । तद्यथा—देवदत्तो

यामं गच्छतु स एवारण्यामिति । किं सिद्धं भवातः । येषु नियते (मित्ते) व्वाहत्य

पायश्चित्तमुक्तं तेष्वन्यभ्यामानुबन्धादो प्रतिपूरणापेक्षायां जपादीनामनुपवेशः सिद्धो

भवति ॥ १८ ॥

किं तुल्यवद्विकल्पो नत्याह -

एनःसु गुरुषु गुरुणि लघुषु लघूनि ॥ १९ ॥

अभिसंधिकतमेनो गुरु ताद्विपरीतं छचु । एवनभ्यासानुबन्धादानापि द्रष्ठ । व्यम् । यथाऽऽहाऽऽपस्तम्बः –यः पमनो हन्ति पाप्तं दोषफलं सह संकल्पेन भूय एवमन्येष्णपि दोषवत्सु कर्मसु () तथा पुण्यफलेषु यथा कर्माभ्यास इति ॥१९॥ क्रच्छातिकच्छो चान्द्रायणामिति सर्वप्रायश्चित्तं

[सर्वप्रायाश्चित्तम्] ॥ २०॥

क्रच्छातिकच्छ्रो चान्दायणं चोपरिष्टाद्दक्ष्यन्ते । सर्वयहणाच केवलमना देशे । एतानि च गुरू(रु)ण्येनां (न)सि समस्तानि समुदितानि प्रायिधत्तं लघू (घु) न्येकमेकं लघुतरेऽतिकच्छ्रो लघुतमे कच्छः । मनुरप्याह –

संवत्सरस्यैकमपि चरेत्क्रच्छं दिजात्तमः।

अज्ञातभुक्तशुद्ध्यर्थं ज्ञातस्य तु विशेषतः ॥ इति ।

इतिकरणाद्यचान्यदेवपुक्तम् ।

तत्र मनुः - यतात्मनोऽप्रमनस्य द्वादशाहमभोजनम् । पराकां नाम छच्छ्रोऽयं सर्वपापमणाशनः ॥ इति ।

[अभ्यासोऽध्यायसमाप्त्यर्थः] ॥ २०॥

इति श्रीगौतभीयवृत्तौ हरदत्तविरचितायां मिताक्षरायां वृतीयप्रश्ने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

⁽⁾ आगस्तम्बसूत्रे तु -तथा पुण्याकियासु इति वर्तते ।

अथ द्वितीयोऽध्याय:।

अथ यो याप्यं कत्वाऽपि पायश्चित्तं न पतिपद्यते स कि कर्तञ्यः । त्याच्य इत्याह—

त्यजेत्पितरं राजघातकं शूद्ध्याजकं शूद्धार्थयाजकं वेद्विण्लावकं अक्षणहनं यथ्यान्त्यानमायिभिः सह

राजाऽत्राभिषिको न जातिमात्रीपजीवी । तं हतवान्राजघातकः । शूदं यो याजयत्यतया निषादस्थपतिं याजयेदित्यादौ विषये स शूद्रयाजकः । यः शूद्रयाजकः । यः शूद्रयाजिकः । यः शूद्रयाजिकः । यः शूद्रयाजिकः । यः शूद्रयाधिमम्य यजते स शूद्राधियाजकः । अनध्यायानध्याप्याध्ययनादिना यो वेदं विष्ठवायति व्याकुछी करोति स वेद्विष्ठावकः । भूकणहा ब्रह्महा एतं निम्हापातिकनामण्युपछक्षणम् ।

चण्डालः थपचः क्षत्ता मूर्ता वैदेहिकस्तथा । मागधायोगवौ चैव संप्रेते न्त्यावसायिनः ॥ इत्याङ्गिगः ।

तैः सहैकस्मिन्स्थाने यो वसित स तथोकः । अन्त्यावसायिन्याम् । यः सह वसतीत्यपेक्षते । तस्यां संवासो पेथुनाचरणम् । एतेषु निमित्तेषु ितरमि त्यजेत् । पितृग्रहणातिक्मृते पुत्रादिकामिति ॥ १ ॥

अथ त्यागमकार:-

तस्य विद्यागुरू-योनिसंबन्धांश्च संनिपात्य सर्वाण्यु-दकादीनि प्रतकार्याणि कुर्युः ॥ २ ॥

तस्य त्याज्यस्य ये विद्यागुरव आचार्युगुरूषायाया योनिसंबन्धा मातु ठाद्यस्तान्सर्वान्संनिपात्येकत्र समवेतान्कत्वोद्कादीनि श्राद्धान्तानि सर्वाणि पेतकर्माणि कुर्युः । के । पुत्रादयो ज्ञातयः । पितरमित्युपक्रमाद्धहुवचननिर्देश्याञ्च ॥ २ ॥

पात्रं चास्य विपर्यस्येयुः॥ ३॥

अस्य त्य ज्यस्य पात्रं किंचित्कलपित्वा त एव विपर्यस्येयुः । विपर्याः सोऽधोमुखीकरणम् । यथा तदनुइकं भवति ॥ ३ ॥

8

C

तत्र पकार:-

दासः कर्मकरो वाऽवकरादमेध्यपात्रमानीय दासीघटा-त्पूरियत्वा दक्षिणामुखो यदा विपर्यस्येदमुकमनुदकं करो-

मीति नामग्राहम् ॥ ४ ॥

द्शसः प्रसिद्धः । कर्मकरो भृतकः । तयोरन्यतरोऽवकरादवस्करान् । वेर्चे स्केऽवस्करः । अमेध्यात्स्थानादश्चाचि पात्रं किंचिदुपादाय येन दास्युदकमाहरति तस्माद्धटाद्गृहीतेनोदकेन पूरियत्वा दक्षिणामुखो भूत्वा यदाऽपसके न विपर्यस्यद पर्सव्यमधोमुखं विक्षिपेत् । तत्र मन्तः - अमुकमनुदके करोमीति । नामग्राहम् । अमुकामिति स्थाने त्याज्यस्य नाम द्वितीयान्तं गृहीत्वा । नामन्यादिशिग्रहोतिति णमुछ् । ग्राह इति पाठे रूपसिद्धिश्चन्त्या ॥ ४ ॥

तं सर्वेऽन्वालभेरन्प्राचीनावीतिनो मुक्तिशिखाः॥ ५॥

A.

.

तं विषयंस्यन्तं सर्वे ज्ञातयः पाचीनावीतिनो मुक्तशिखाः सन्तोऽन्वास्रभेरः न्सृत्रीयुः॥ थ ॥

विद्यागुरवो योनिसंबन्धाश्च विक्षेरन ॥६॥

न तु संस्पृशेयुः ॥ ६ ॥

अप उपरुपृश्य ग्रामं प्रविशन्ति ॥ ७ ॥

एविमिरं कर्म करवाऽप उपस्पृश्य स्नात्वा यामं संविक्तन्ति विक्षेयु: । अत एव ज्ञायते यामाद्बहिरिदं कर्मेति ॥ ७॥

अत उत्तरं तेन संभाष्य तिष्ठेदेकरात्रं जपन्मावित्री-

मज्ञानपूर्वम् ॥८॥

अतस्त्यागादूर्ध्वं तेन त्यक्तेन सह संभाषणमज्ञानात्कृत्वैकमहोरात्रं तिष्ठेच मुर्झीत न रायीत नाऽऽसीतेति । अज्ञानपूर्वभितिवचनाद्कवचननिर्देशाच्च ज्ञाति व्यतिरिक्तस्यापीदं भवति ॥ ८॥

१ (ण० सू०६। .। १४८)। २ (पा० सू०३। ४-। ८)

ज्ञानपूर्वं च त्रिरात्रम् ॥ ९ ॥

यस्तु तेन ज्ञानपूर्व अंभाषते स तिरात्रमुक्तक्रमेण तिष्ठेत् । कार्याकार्यनिरू पणादाविदम् । परिप्रश्नादो तु परावारोक्तम् –

क्षंत निष्ठीवने चैव दन्तस्पृष्टे तथैव च ।

पितानां च संभिष दक्षिणं अवणं स्पृशेत् ॥ इति ॥९॥ यस्तु प्रायिश्वत्तेन जुध्येत्तस्थिज्ज्ञुद्धे ज्ञातकुम्भमयं पात्रं पुण्यतथादृध्रदात्पूर्यित्वा स्त्रवन्तीभ्यो वा तत एनमप उपस्पर्शयेयुः ॥ १० ॥

पायश्चित्तेनेति वचनादाजदण्डेन शुद्धस्य वक्ष्यमाणस्वीकरणाविधिर्न भवति । तस्य केवलं परत्रैव शुद्धिः ।

> राजभिधृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः । निर्मलाः स्वर्गनायान्ति सन्तः सुकृतिन्तो अथा॥ इति ॥

तिस्महाँकसमर्शं युद्धे शातकम्भमयं सीवर्णं पात्रं पुण्यतमाद्धदानदिश्यो वाऽऽहतेन जलेन पूरियत्वा ततस्तस्मादावर्जिता अप एनं चरितशायाश्चित्तमुपस्पर्शं येयुस्ताभिराद्भः स्नापयेयुर्जातयः॥ १०॥

अथारूमे तत्पात्रं दशुस्तत्संप्रतिशृह्य क्षिणिक्छान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तं शिवमन्तरिक्षं यो रो न्वनस्ताभयं गृह्णायीति ॥ ११॥

अथ स्नापनानन्तरमस्मे स्नाताय तत्सीवर्णं पात्रं दद्युर्जातयः । स च तत्पात्रं पतिगृह्य जपेच्छान्ता द्योरित्यादि गृहणामीत्यन्तम् ॥ ११॥

एतैयजुर्भिः पावमान।भिस्तरत्स १न्दीभिः कष्माण्डै ।

रचाऽऽन्यं जुहुय द्धिरण्यं बाह्मणाय द्यात् ॥१२॥ हामान्ते दानम् ॥ १२ ॥

गांबा॥ १३॥

इच्छान्तो विकल्पः ॥ १३ ॥

80

(1)

आचार्याय च ॥ १४ ॥

य आत्मन आचार्यस्तस्मा अपि हिरण्यं दद्यादां वा ॥ १४ ॥

यस्य तु प्राणान्तिकं प्रायश्वित्तं स श्वतः शुध्येत् ॥१५॥ उत्तरिवक्षयदमुच्यते । पायश्चित्तत्य गुद्धवर्थत्वादेव सिद्धा गुद्धिः

11 94 11

सर्वाण्येव तस्मिन्नुद्कादीनि प्रेतकवर्गण कुर्युः॥ १६॥

यद्यपि तस्य नास्मिक्षीकं पत्यापत्तिस्तथाऽपि मरणादेव शुद्ध इति सर्वा-ण्येव पेतकर्माणि कर्त-यानि । सर्वग्रहणादाशौचमपि । योऽपि द्वादशवार्षिकादौ प्रायश्चित्ते पवृत्तो मध्ये म्रियते तद्विषये व्यास आह-

यजमानः सदा धर्म्ये न्नियते यदि मध्यतः ।

पामी त्यव तु तत्सर्वमत्र मे नास्ति संशयः ॥ इति ॥ १६ ॥ एतदेव शान्त्युदकं सर्वेषूष्यातकोषु सर्वेषूपपातकेषु

11 79 11

प्तदेवानन्तरोकं शान्ता द्यौरित्यादिभिरभिमन्त्रितं सर्वेषूपपातकेषु कर्तव्यं भायश्चित्तस्यान्ते आदावित्यन्ये । द्विरुक्तिः पूर्ववत् ॥ १७ ।

इति श्रीगैतिसीयवृत्ती हरदत्तविरचितायां मिताक्षरायां वृतीयप्रश्ने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः।

पतितानां त्यागविधिरुक्तः के पुनस्ते तानाह-

ब्रह्महसुरापगुरुतल्पगमातृपितृयोनिसंबन्धागस्तेनना स्तिकनिन्दितकर्माभ्यासिपितितात्यारयपतितत्यागि-

नः पतिताः ॥ १ ॥

बासणस्य हन्ता बसहा।

गौडी मार्घ्वा च पैष्टी च विज्ञेया त्रिविया सुरा । यथैवैका न पातन्या तथा सर्वा दिजोत्तमेः इति॥ मनुः। A .,

Mi.

तत्र या यस्य सुरा प्रतिषिद्धा स तस्याः पातः सुरापः । गुरुः पिताऽऽ-यार्यश्च । तल्पराब्देन भार्या छक्ष्यते । गमनं मैथुनम् । मातृसंबन्धा मातृपक्षे पाक्पश्चमाद्भवाः पितृसंबन्धाः पितृपक्षेऽवीक्सप्तमाद्भवाः । योनिसंबन्धा भागन्या-दयः । य एता भार्यात्वेनााधिगच्छाति स मातृपितृयोनिसंबन्धागः । स्तेनो त्रासण सुवर्णापहारी । नास्तिकः पेत्यभावापवादी । निन्दितं प्रतिषिखम् । तस्य कर्मणो बुद्धिपूर्वं सातत्येनानुष्टाता निन्दितकर्गाभ्यासी । पतितानेव सतः पुत्रा दिन्स्निहादिना वो न त्यजाति स पातितात्यागी । यस्त्वपातितानेव देषादिना त्यजित सोऽपतितत्यागी । एते ब्रह्महाद्य पतिताः ॥ १ ॥

पातकसंयोजकारच॥ २॥

् पातकैः कर्मश्रिर्ये परान्संयोजयन्ति तत्र पर्वतयन्ति द्रव्यपदानादिना म च्छत्रुमित्थं व्यापाद्य त्वच्छत्रोव्यापाद्देन ध्यमभ्युपाय इति । तथा कनिचिन्निषां सितं पलायमानं यो निवारपाति निवारितश्च हन्यते सोऽपि पयोजकः । यस्या नुमितमन्तरेणार्थों न निव (वं)तिते स मन्ता । स इह पृथङ्नोपादीयते प्रयोजक कोटिरेवायमिति । आपस्तम्बस्तु कियताऽप्यवान्त भेदेन तमेव पृथगुदितवान् -प्रयोजिता मन्ता कर्ता चेति स्वर्गनरकफलेषु कर्मसु भागिना यो भूय आरभेत तस्मिन्फलाविशेष इति ॥ २ ॥

तैइचाद्दं समाचरन् ॥ ३ ॥

तैः पतितैः सह योऽन्दं समाचरित यानासनशयनादीनि सोऽपि पतितः । अंत्र कण्व:-संवत्सरेण पतित पतितेन समाचरन् ।

यानासनादानैनित्यमित्याहुर्बसवादिनः इति ।

.याजनारी तु याज्ञवल्क्य आह-

याजनं योनिसंबन्धं स्वाध्यायं सहभोजनम् ।

कृत्वा सद्यः पतत्येव पतितेन समाचरन् इति ।

सहभोजनमेकस्मिन्पात्रे ।

संवत्सरेण पतित पतितेन समाचरन्।

याजनाध्यापनाद्दनाच तु यानासनाश्चनात् इति .

मानवमप्येवं व्याख्येयम्-यानादिभिः संवत्सरेण पताति न तु याजनादिभिः किंतु तै: सद्य एवाति ॥ ३ ॥

b

किं पुनरेषां पतितत्वम्-

दिजातिकर्मभ्यो हानिः पतनम् ॥ ४ ॥

द्विजानीनां यानि कार्या कर्मा)ण्यष्ययनादीनि श्रीतानि गाह्यीणि स्मार्तीनि च तेभ्यो हानिस्तेष्वनिध हारः ॥ ४॥

तथा परत्र चासिद्धिः॥ ५॥

यान्यनेन पागार्जितानि कुशलानि कर्माणि तान्यप्यस्य परत्र न सिध्यान्ति फलदानि न भवन्ति । तदेतदेताभ्यां पतितश्चदस्य निर्वचनं कर्तं कर्तव्यभ्यः कर्मभ्यः पूर्वार्जितानां सुकर्मणां फलेभ्यश्च पातः प्रच्यवनं पतितत्वामिति ॥ ।।।

तथेके नरकम् ॥ ६॥

येयं कर्भभ्यो हानिर्या च परत्रासिद्धिस्तामेवे के नरकं मन्यन्ते । नरकसा मानाधिकरण्यालुं छिङ्गमकवचनं च । कर्भभ्यो हीनस्य बन्धुभिस्त्यक्तस्य दुःखमुत्प- द्यते परत्रासिद्धेः सुखलवो न भवत्यतो नरक एवायामिति । स्वमतं तु विशिष्टे देशे दुःखैकतानस्य वातो नरक इति ॥ ६ ॥

त्रीणि प्रथमान्यनिर्दश्यान्यनु ॥ ७ ॥

अनुकान्तानां पातकानां मध्ये प्रथमानि त्रीणि ब्रह्महत्यासुरापानगुरुतल्प-गमनान्यनिर्देश्यान्यनिर्देश्यपायाश्चित्तानि तेषां पायश्चित्तमानिर्देश्यामिनि ।: ब्रह्मवधे । मनुराह—

> कामतो ब्राह्मणवधे निष्कृतिर्न विधीयते इति । सुरापनि --

मिष्द्रमानदिश्यं पाणान्तिकामिति स्थितिः । इति । गुरुत्तो मृष्यम् ।।७॥ न स्त्रीष्वगुरुतलपं पततीत्येके ॥८।

एक मन्यन्ते स्रीषु पवृत्तो गरुतल्ष एव पितितो नान्यत्रोति । स्वयं त्वन्य नापि पततीति । आह मनुरपि -

१ ग. सिद्धये सु। २ क. ख. घ. मृग्या ।

चाण्डालान्त्यास्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च मतिगृह्य च । पतत्यज्ञानतो विभो ज्ञानात्साम्यं तु गच्छति इति ।

अथ स्त्रियाः पतनहेतुमाह-

N

100

भ्रत्मणहिन हीनवर्णसेवायां च स्त्री पति ॥ ९ ॥

भ्रतणहेति आंवपिरम् । भ्रतणे। गर्भः । आत्मापेक्षायां गर्भहत्यायां स्ती पति । यो हीनवर्णो बालण्याः क्षत्त्रियादिः क्षत्त्रियाया वश्यादिष्यायाः शृद-स्तत्तेवायां च स्त्री पति । चकाराद्बलहत्यादिषु च । अपर आह—भ्रत्नणहनं हीनवर्णं च या सेवते न तस्य भार्या भवति सा पति । चकाराद्बलहत्यादिषु चेति । भ्रत्नणहग्रहणं पतितोपस्रक्षणम् ॥ ९ ॥

कौटसाक्ष्यं राजगामि पैज्ञुनं गुरोरनृताभिशंसनं महापातकसमानि ॥ १०॥

कृटसाक्षिणो भावः कौटसाक्ष्यं साक्षिणोऽनृतवचनम् । सतोऽसतो वा षरदोषस्य रूपापनं पैशुनम् । राजनीति वक्तव्ये राजगामीति वचनं यत्रोक्तं पारम्पर्येणापि राजानं गच्छति तदपि वर्ज्यमित्येवमर्थम् । गुरोः पितुराचार्यस्य वाऽनृतेन(श्रत्येन दोषेणाभिशंसनं दुष्टतारूपापनं गुरोरनृताभिशंसनम् । एतानि (महा)पातकसमानि । साम्यातिदेशे पायश्चित्तमर्थमिति स्मार्तो व्यवहारः ॥ १०॥

अपङ्कत्यानां प्राग्डुकीलाद्गोहन्तृबह्मध्नतन्मन्त्रः कृद्वकीणिपतितसावित्रीकेषूपपातकम् ॥११॥

स्तेनादयो गीतशीलान्ता एकपश्चाशक भोजियतव्या इत्युक्षाः श्राद्धमकः रणेऽपङ्कचाः । तेषामपङ्कचानां मध्ये दुर्बालात्माग्यावन्तस्त्यकात्मपर्यन्ता एकिनिंश्चेषु पतितः कूटसाक्षी चान्तर्भूतः तत्र पतितस्य पतितत्वं कूटसाक्षिणः स्तत्साम्यमुक्तम् । व्यतिरिक्तेषूपपातकं पापम् । नास्तिकोऽि तेषु पितः । स च त्रिविधः । यथाऽऽहः पौराणिकाः—

नास्तिका त्रिविधा ज्ञेया धर्मज्ञैस्तत्त्वदार्शिभिः। कियादृष्टो मनोदुष्टो वाग्दृष्टश्चोति ते त्रयः॥ इति । अत्र वाग्दुष्ट उपपातकोऽभिषेतः । इतरयोः पातक एव । गोहन्ता हन्त्र दण्डकाष्ठादिना ताडनम् । ब्रह्म वेदस्तमधीतं यः प्रमादादभिहतवान्विस्मृतवान्स ब्रह्मः । बुद्धिपूर्वे मानवम्—

ब्रह्मच्नत्वं वेदानिन्दा कोटसाक्ष्यं सुहद्वधः। गर्हितान्नाद्ययोर्जिग्धः सुरापानसमानि पट् इति।

तन्मन्त्रस्त्रोहन्तृब्रह्मच्नयोर्याजनादिस्त । यो ब्रह्मचारी स्त्रियमृपेयात्सी । ऽवकीणी । अस्यापङ्क्तयेषु पठितस्य पुनर्वचनं स्रोतेऽप्यवकीणिप्रायश्चित्ते पृथगुरपातकप्रायाश्चत्तपि कर्तेऽयमित्येवपर्थम् । एतच्चापत्योत्पादनपर्यन्तगमने द्रष्टव्यम् । पतितसावित्रोको यथाकालमनुपनीतो वात्यः । एतेषूपपातकं पापामिति ॥ ११॥

अज्ञानादनध्यापनाद्यात्विगाचार्यौ पतनीयसे । यां च हेयौ ॥ १२ ॥

अज्ञानादनध्यापनादिति यदि(यं:) कर्माण पवृत्त ऋत्विङ्गन्त्रान्कमैपद्धातें वा न जानाति स च, य आलस्यादिना नाध्यापयत्याचार्यस्तावुभौ हेयौ व्याज्यौ । इदं पतितेन सह ज्ञायनासनादेः सेवायां प्रागप्यव्दात्परित्यागार्थम् । तार्हि संवत्तरेण पततीति वचनमनर्थकम् । न ताह्यस्त्यागोऽत्र विवक्षितः । किं त रिवगाचार्यान्तरमुपादेयम् । अनुपादाने दोष इति ॥ १२ ॥

अन्यत्र हानात्पतिति ॥ १३ ॥

अन्यत्राज्ञानाद्नध्यापनाद्न्यत्र तयोस्त्य गे न कर्तव्यः । कुर्वन्पति

तरुव च प्रातिअहीतेत्येके ॥ १४॥

तस्यर्त्विजमाचार्यमिटिशं त्यजतः प्रतिमहीता तं य प्रतिगृहणाति याज्यत्वेन ब्रिष्यत्वेनार्त्विगाचार्यौ वा सोऽपि पततित्येकं मन्यन्ते। एके महणाज्ज्ञात्वा प्रतिमहे पातित्यं नान्यत्रेति ॥ १४ ॥

न कहिंचिन्यातापित्रोरवृत्तिः॥ ३५॥

न कस्यांचिद्रप्यवस्थायां मातापित्रोरवृत्तिरद्याश्रूषा कर्षेच्या किंतु पतितयोरपि तयो मस्कारादिका द्याश्रूषा कर्तव्या । तथा चाऽऽ

વે દે ઉ

पस्तम्बः-माता पुत्रस्य भूयांसि कर्माण्यारभते तस्यां शुश्रूषा नित्या पारितायाम-पीति ॥ १ ५ ॥

दायं तु न भजेरन् ॥ १६ ॥ प्रति विकेत

तदीयं तु धनं तदभावे न भजेरनपुत्रादयः । राजगामि तद्भवति ।। ६॥

बाह्मणाभिशं मने दोषस्तावान् ॥ १७॥

यो ब्राह्मणमभिशंसाति तस्य सन्तं दापं प्रथमं रूपापयाति तस्य दोषस्ता । वान्भवति यावान्कतुरिति । यथाऽऽहाऽऽगस्तम्बः—

दोषं दृष्ट्वा न पूर्वः परेम्यः परितस्य समारूपाने स्याद्वर्जयेन्वेनं धर्मेषु ।

क्ष्या के के देखे, के क्षेत्र के **द्वित्रनेनासिः॥ १८**०॥ के क्षेत्र के क्ष्य

भवति । विषये दोषाभिशंसने दिशेषोऽस्या भवति । दिदिगुणकाः अनाः भिशंसनमात्रे दोषा उक्तः। मानवे तु –

> पतितं पतितत्युक्त्वा चोरं चोरेति वा पुनः । वचनात्तुल्यदोषः स्यान्मिथ्या द्विदीषभाग्भवेत् ॥ इति ।

पातित्यचौर्यविषयमभिशंसनपुक्तम् । वसिष्ठस्तुं—वासणमनृतेनाभिशस्य पतनीयेनोपपतनीयेन वा मासम्ब्भक्षः शुद्धवतीरावर्तयेत्पूतो भवतीति विज्ञायते ॥ १८॥

दुर्वलिहेंसायां च विमोचने शक्तश्चेत् ॥ १९॥

दुर्बेले प्रबलेन हिंस्यमाने यः श्राक्तः सन्त मोचयित तस्यापि तावान्दोषो यावाह्मितुः ॥ १९॥

अभिकुद्धावगोरणं बाह्मणस्य वर्षशतमस्वर्यम् ॥२०॥

योऽभिकुद्धः सन्ब्राह्मणं पहर्तुं हस्तमायुधं वाडिनगुरत उद्यभ्य कम्पयति तस्य तद्वगोरणं वर्षाणां शतमस्वर्ग्यं भवति स्वर्गपाप्ति निरुणाद्धि । तनिभित्तानि सुक्रतानि हन्तीत्यर्थः । अस्वर्ग्यामिति नरकपाती वा उक्ष्यते । सजातीयविषये । मिद्रम् । विजातीयविषये तु—

• अर्थकारिक कर्मियुणं विशुणं विशुणं विषय चतुर्गुणमधापि चामः । १००० वर्षः १००० वर्षः

क्षत्त्रविट्यूद्रजातीनां बाह्मणस्य वधे स्मृतम् ॥ इति । । हि अनेनैव न्यायेन बाह्मणेनावगोरणे क्रवे विषाद्यं द्विपाद्यं पाद्यं पाद्योति क्षित्रयादिषु दृष्ट्व्यम् । एवमन्यत्रापि मतिकोमानुकोमभेदेनाध्योत्तरभावे तारतम्यं

कल्प्यम् ॥ २०॥

Willer State

निघात सहस्रम् ॥ २१ ॥

येः स्वर्णेन हन्ति तस्य वर्षसहस्तमस्वर्ण्यम् । उपसमस्तं वर्षेपदमपेक्षते

॥ २१ ॥ लोहितद्र्शने यावतस्तत्प्रस्कन्य पांसून्सगृहणियात् (संगृह्णीयात्)॥ २२ ॥

यदि तेन निघातेन लोहितमुत्पादयेत्ततस्तल्लोहितं पस्कन्ध निःसत्य यावतः पितृन्संगृहणियात्पिण्डान्कुर्यात्तावन्ति वर्षाणि तदस्वर्ग्यं भवति । तस्माद्बालणाय नावगुरेत न निहन्यात्र लोहितं कुर्यादिति गम्यमानत्वादनुक्तम् ॥ (अस्यासिष्टः ध्यायसमाप्त्यर्थः)॥ २ ॥

इति श्रीगौतमीयवृत्तौ हर त्तविरचितायां मिताक्षायां रतीयप्रश्ने रतीयोऽध्यायः ॥ ३॥

अथ चतुर्थोऽन्यायः।

एवं पायश्चिमानितान्युकानि । अथ पायश्चितान्युच्यन्ते – प्रायश्चिमम् ॥ १ ॥

अधिकारोऽयम् । निश्चित्य तपसोऽनुष्ठानं पायश्चित्तम् । किर्मान

पायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते । तपोनिश्चयसंयोगत्मायश्चित्तामिति स्मृतम् ॥ इति ॥ १ ॥ अभौ सक्तिर्बक्षप्रस्थिरवच्छातस्य ॥ २ ॥

सकिः सङ्गः पतनम् । अवच्छाताऽवशीणी भक्तत्यागेन कृशीभूतः।

बसहा भक्त्यागेन छशो भूत्वाऽमी विः पतदुत्थायोत्थाय । इद्मस्य पायश्चित्तम्। अत्र मानवो विशेष:-

पास्येदात्मानमग्री वा समिद्धे निरवानिशराः। इति ।

काठकश्रातः- ' अनवानकर्वितोऽभिमाराहेत् भ इति । अ

नेदं मरणान्तिकं त्रिरिति नियमात् । त्रिः पतने जीवन्त्राप शध्यतीति 11 3 11

लक्ष्यं वा स्याज्जन्ये शस्त्रभृताम् ॥ ३ ॥

जन्यं युद्धम् । शस्त्रभृतं इष्वासाः । लक्ष्यमिति वचनायुद्धं इष्वासानामि-पूनस्यतां मध्ये छक्ष्यं वेष्यं भूता तिष्ठेत् । तैर्विद्धो जीवन्मृतो वा शुध ति । याज्ञवल्क्यः -

संयामे वा हतो छक्ष्यभूतः शुद्धिमवाप्नुयात् ।

मृतकल्पः पहारातीं जीवन्त्रपि विज्ञाध्यति इति ॥ ३ ॥

खद्वाङ्गकपालपाणिव**िदादशं मंवत्सरान्बस्मचारी**

🎏 🐬 भैक्षाय ग्रामं प्रविशेत्कर्माऽऽचेक्षाणः ॥ 😵 🗎 🦠

खट्वाङ्गं पाशुपतानां प्रसिद्धम् । कपालं स्वव्यापादितस्य बाह्मगस्य शि-रःकपालम् । ते पाण्योर्यस्य स खट्वाङ्गन्कपालपाणिः । खट्वाङ्गं दक्षिणे पाणै कपालं सन्ये भिक्षार्थं पानीयपानार्थं भोजनार्थं च । तत्रा १५प तम्बः पुरुषशिरः मितपानार्थमादाय खट्वाङ्गं दण्डार्थमिति । मनुस्तु कत्वा शनिकरोध्वजम् इति । तस्मिन्पक्षे खट्वाङ्गस्याये ध्वजः । तन्मूहे शवशिरः । भिक्षाचरणं तु छोहितन खण्डवारावेणाऽऽपस्तम्बीयद्र्यानात् । एवंभूता भेक्षाय थामं पविवेत् । एतावानस्य ग्राम पवेशाऽन्यदाऽरण्ये । भेक्षं च कर्माऽऽचक्षाणश्चरेत् ।

वेश्मनो द्वारि तिष्ठामि भिक्षार्थी बद्याचातकः । इति परादारः । ्र इदिश संवत्सरानेवं चरन्त्रहाचारी भवेत्। स्त्रीषु न प्रसन्तेत्। भिक्षाचरणे सम्भागाराण्यसंकित्पतानीत्यापस्तम्बः । संवर्तस्तु-

भिक्षाये पविदेशद्यामं वन्यैर्यदि न जीवति । इति । अन्य अ एककालाहार इति वसिष्ठः ॥ ४ ॥

पथोऽपकामेत्संदर्शनादार्यस्य ॥ ५ ॥

आर्यस्नैवर्णिकस्तस्मिन्द्रष्टे पथोऽषकामेद्रपयायात । अत्र व्याद्य:-

चाण्डालं पतितं दृष्या दूरतः परिवर्जयेत् ।

िगोवालव्यजनाद्विक्सचैले स्नानमाचरेत्॥ इति ।

शूद्रोऽपि स्पर्श वर्णयेत् । यथाङ्ड लौगाक्षः-

महापातिकसंस्पर्शे वर्णानां स्नानमुच्यते ।

अस्नात्वा भोजने चैव सप्तरात्रं समाविद्येत्॥

तिरात्रं स्याद्मत्या चेच्छुङ्खपुष्पीशृतं पयः ।

एवमार्तिविचण्डालश्रवानीमापे कीतेये ् ॥ इति ॥ ५॥

-िक् स्थानासन्धियां विरहन्सवनेषूदकोपस्पर्शी द्वाध्येत् ॥ ६ ॥ विषेदहानि रात्रावासीत यथाशकि पातर्मध्यंदिने सायमिति सवनेषु

निसंध्यमुद्कोपस्पर्शी स्यात्स्नायात् । एवं द्वादश वर्षाणि चरचनते शुध्येत्। स्नानविधानादेव तदन्तर्भृतमन्त्रादिपाप्तिरिति गम्यते । शुचिना कर्तव्यमिति च सर्वकर्भसाधारणम् । अतः संध्योपासनमप्यस्य भवति ।

सध्याहीनोऽवाचिनित्यमनहीः सर्वकर्मसु । यक्तिचित्कुरुते कर्म न तस्य फल्स्मारमवेत् ॥

इति दक्षस्मरणात् । द्विजातिकर्मभ्यो हानिः पतनिमत्यनेन तु पायश्चित्त वत्तचर्यानङ्गभूतानां कर्मणां हानिनं सर्वेषाम् । अत्र च यस्य द्वे ब्रह्महत्ये, स चतुर्वेशितवर्षाणि वर्तं चरेत् । यस्य तिस्रः, स षट्तिंशतं न पुनर्देहेकालक-त्रेक्यात्पायश्चित्तस्य तन्त्रता । यस्य चतस्रो, न तस्येह लोने निष्कृतिः । एतदे व वतमोत्तमादुच्छ्यासाच्वरेत् । तथा च मनुः-

विधेः भाश्यमिकाद्समादा ितीये दिगुणं चरेत् । तूर्तीये त्रिगुणं भोकं चतुर्थे नास्ति निष्कृतिः ॥ इति । याज्ञवल्क्यः—द्विगुणं सवनस्थे तु ब्राह्मणे वृतमादिशेत् । इति ॥६॥ प्राणलम्भे वा ति भित्ते ब्राह्मणस्य ॥ ७॥

यादे चोरव्याहरादिभिः प्रमाप्यमाणस्य ब्राह्मणस्य तिनिभित्तः पाणलाभे।
भवति तदा शुध्येत् । एकस्य चिछन्नाः पाणा अपरस्य दत्ताः को न्वत्र विशेषः।
अनिनैव न्यायेन सर्वेषाभेव हनने तज्ज तीयस्य तन्देतुके प्राणलाभे शुन्दिईष्टव्या
॥ ७॥

.独

्र दुर्व्यापचये त्र्यवरं प्रतिराद्धः ॥ ८॥ 📅 🧖 🛒 🔭

ब्राह्मणस्येति वर्तते । ब्राह्मणस्य द्रव्य चोरादिभिरपचीयमानेऽपाहियमाणे तस्य पत्यानयनाय चोरादिसपीपं गतस्तैः शस्त्रादिभिः क्षेतो वर्जि(तोऽविज)तः सकत् , भुनः पुनश्चवं त्रिवागन्न्यू)रन्यू)नं मतिराखोऽभियुक्तः सन्नगत्यानीतेऽपि द्रव्ये शुध्येत् । पत्यानीते तु सकत्पयोगेऽपि शुध्येत् ।

त्र्यवरं प्रतिराद्धो वा सर्वस्वमविजत्य च । इति मनुः । अनेनैव न्यायेन स्वद्रव्यप्रदानेनापि शुं दिर्शेया । तथा च मनु:-

सर्वस्वं वा वेद्विदे ब्राह्मणायोपपादयेत्। व्यवस्थितः व व्यवस् ं का अपने वा जीवनायालं गृहं वा सपरिच्छदम् इति ॥ ८ ॥ याज्ञवल्क्यस्तु-पात्रे धनं वा पर्याप्तं दत्त्वा शुद्धिम्बाप्नुयात् ।

आदातुश्च विशुद्धचर्थमिष्टिर्वैधानरी स्मृता इति ।

भड़ ता लेक कर महिला अश्वमधावभूथे वा ॥ देशा के ता प्राप्त

स्नात्वेति शेषः । परकीयस्याश्चमेधस्यावभृष्ये स्वयं स्नात्वा वा शुष्येत् । पाणलाभ इत्यादिसूत्रेषु वाशब्दो विकल्पार्थः । अत्र मानवो विशेषः-

शिष्ट्वा वा भूमिदेवानां नरदेवसमागमे । स्वमेनोऽवभृथे स्नात्वा हयमेचे विमुच्यते ॥

भूमिदेवा ब्राह्मणा ऋत्विजः । नरदेवो राजा यजमानः । तेषां समवाये स्वमेन: शिष्ट्वा विख्याप्य ॥ ९ ॥

अन्ययज्ञेऽप्यामिष्दुदन्तरुचेत् ॥ १० ॥

अध्मेधादन्ययज्ञेऽप्यवभृथे स्नात्वा दुाध्येत् । किमविशेषेण । न । तस्य चेदन्तर्मध्येऽग्रिष्टुन्नामैकाहो भवति । पश्चद्रारात्रादेग्रहणम् । अपर आह-अग्निष्टुदन्तोअग्निष्टुत्समापिको भवतीति । अत्र पक्षे सर्वमेघादेर्ध-अत्र च शुष्योदिति द्वादशवार्षिकमुपसंहत्य विधानाद्वाग्रह-सर्वाण्येतानि स्वतन्त्राणि वैकल्पिकानि प्रयोजकानि प्रयोजकादि विषयाणि वा दृष्टव्यानि । अन्ये तु द्वाद्शवार्षिकपवृत्तस्येत्याहुः शङ्खो दादशे वर्षे शुद्धिमामातीत्यभिधायाऽऽइ-अन्तराले वा नासणं मोचियत्वा गवां वा द्वादशानां परित्राणादिति । वाशब्दस्तु परस्परापेक्षया विकल्पार्थः ॥ १०॥

क्षाक्षा कर्म है स्टर्चेद्बास्यणवधेऽहत्वाऽपि ॥ ११॥ व हिन्तु हे व त

हिन्दी सर्ग उत्साही निश्चयंथा विदानमृष्टः । यदि ब्राह्मणवधे सृष्टी भवति केनचिद्दैवाद्वांअनिवारितः साअहत्वाअपि ब्रह्महा भवति । अतस्तरगण्यनन्तरोक्तेषु भायश्वित्तेषु यह्नचु तद्भवति ॥ ११,॥

न्य है है । आन्नेय्यार्चेवम् ॥ १२ ॥ । १३ ।

ऋतुस्नातामात्रेयीमाहुः । तत्र यद्पत्यं भवतीति विश्वष्टः । तस्यामि ब्राह्मण्यां हतायामेवं ब्रह्महा भ-तीति तदीयमेव पायश्चित्तामित । कतिवयाद्यात्रयीवधे तत्तत्पुरुषवधनिभित्तं गायश्चित्तम् । अन्ये त्वतिगोत्रामात्रेयीमाहुः ॥१२॥

गर्भे चाविज्ञाते ॥ १३॥

बासणस्य गर्भे स्त्रीपुँनपुँसकत्वेनाविज्ञाते बासण्यामाहित औषधादिना हत विज्ञात त्यापायाश्चित्तमः। विज्ञाते तु यथ छिङ्गम् । क्षत्तियादिगर्भेऽपि तदनुगुणम् । राजन्यवैश्ययोरिषि सवनं गतयोर्वध एतदेव । यथाऽऽह मनुः =

हत्वा गर्भमविज्ञातमेतदेव वर्त चरेत् । राजन्यविश्यकीजानां चाऽऽत्रेयीमिष च स्त्रियम् ॥ इति । अत पराशरः चातुर्विद्योपपन्नस्तु विधिवर्त्रसमातके ।

समुद्रसेतुगमनं पायिश्वनं विनिर्दिशेत् ॥ 🐩 👯 सेतुबन्धपथे भिक्षां चातुर्वणयितसमाहरेत् । वर्जियत्वा विकर्मस्थांश्छत्रोपानहवर्जितः॥ अहं ५०कतकर्भा व महापातककारकः। वश्मनो द्वारि तिष्ठामि मिक्षार्थी ब्रह्मचातकः ॥ गोकुछेषु च गोष्ठेषु ग्रामेषु नगरेषु च । तपोवनेषु तीर्थेषु नदीपस्रवणेषु च ॥ एतेषु रूयापयेदेन: पुण्यं गत्वा तु सागरम् । असहा विष मुच्येत स्नात्वा तस्मिन्महोदधी ॥

ततः पूतो गृहं पाष्य छत्वा बाह्मणभोजनम् विकित्त विकित विकित्त विकित्त विकित विकित विकित विकित्त विकित्त विकित्त विकित विकि

अत्र सुमन्तुः - त्रसहा संवत्सरं रूच्छं चरेद्धःशायी त्रिषवणी केर्मावद्को भिक्षाहारो दिव्यनदीपुलिनसंगमाश्रमगोष्ठपर्वतप्रस्रवणतपोवनविहासी स्थान्त वीरा-स्वी । संवत्सरे पूर्णे हिरण्यमणिगोधान्यतिलभूमिसपीषे वाह्मणेभ्यो, द्वारपूर्वो भवतीति । अत्र वर्णविशेष आश्रमविशेषे चाङ्गिराः-

पर्षद्या ब्राह्मणानां तु सा राज्ञां दिगुणा मता ।

वैश्यानां त्रिगुणा प्रोक्ता पर्षद्वच्च व्रतं स्मृतम्
गृहस्थोक्तानि पापानि कुर्वन्त्याश्रमिणो यादि ।

योचवच्छोधनं कुर्यादर्वाग्ब्रह्मानदर्शनात् (इति ।

एतच्छीचं गृहस्थानां दिगुणं ब्रह्मचारिणाम् ।

त्रिगुणं स्यात्तस्थानां यतीनां च चतुर्गुणम् इति ।

अत्र भागवः-अज्ञातिर्थस्य वर्षाणि वालो वाञ्यूनपोडवाः अव्यक्षित्र प्रियो व्याधित एव वा ॥ इति । व्यक्त हार हारीतः-भायश्चित्ते प्रवृत्तस्तु मध्ये यदि विषद्यते । गुद्धस्तद्हरेवासाविह लोके परत्र च ॥ इति च ॥ १३ ॥

उक्तं बाह्मणवधे पायश्चिगम् । अथ राजन्यवधे — राजन्यवधे पड्वार्षिकं प्राकृतं ब्रह्मचर्यमृपभैक सहस्राश्च गा दद्यान् ॥ १४ ॥

राजन्यवधे कते ब्राह्मणवधे यदुकं ब्रह्मचर्यं तत्पड्वापिकं कर्तव्यम्।
तदिप प्राक्तं स्वामाविकं खट्वाङ्गादिराहितं ब्रह्महत्यापायश्चित्तं पड् वर्षाणि
कुर्यात् । एकाधिकं सहस्रमृषम एकसहस्रां यासां ता ऋषभैकसहस्रा गा
दद्यात् । अत्रोधाना—राजन्यवधे पड्वापिकं ब्रह्मवतं तस्यान्त
ऋषभैकसहस्रगोदानं चेति । इदमिशिषकस्य श्रोतियस्य वैतवतो बुद्धिपूर्ववधे। तस्यवाश्रोतियस्य वस्तिहानस्य वधे केवलं गोदानम । उभयही-

१ ग. कमीनिन्द्को । २ क. ख. घ. स्थात्स्थानवी । २ ग. घ. वृत्तव । ४ ग. घ. वृत्तही ।

् [३तृतीयपश्चे_त

नस्यानिभिषिकस्य वधे केवलं षड्वार्षिकम् । अनिभिषिकस्य तूमयवतो वासिष्टम् ब्राह्मणा राजन्यं हत्वाऽऽष्टौ वर्षाणि व्रतं चरेदिति । एतेषामेवाबुद्धिपूर्वेऽर्धं क्ल्प्यम् । जातिमात्रवधे, स्त्रीशूद्विट्शत्त्रवधो नास्तिक्यं चोपपातकामित्युक्तवा —

एतदेव ब्रतं कुर्युरुपपातिकनो द्विजाः।

अवकीणिवर्ज शुद्ध्यर्थं चान्द्रायणमथापि वा ॥

ें इति मनुनोक्तं दृष्टव्यम् । किंचिद्गुणवतो वधेऽग्न्युत्सादिनिराक्तत्युपपातकेषु चैवाभिति वक्ष्यमाणं सांवत्सरिकं पाक्ठतं बसचर्थम् । एवमुत्तरत्रापि दृष्टव्यम् । सर्वत्राबुद्धिपूर्वेऽर्धं बुद्धिपूर्वे क्रत्स्निमिति । १४॥

अथ वैश्यवधे -

वैश्ये तु त्रैवार्षिक मृष्भेक शताश्च गा दद्यात् ॥ १५ ॥ इदमत्यन्त गृणवतो बुद्धिपूर्ववधे । एतेन परं व्याख्यातम् ॥ १५ ॥

शूद्रे संवत्सरमृषभैकादशाश्च गा द्यात् ॥ १६॥

इदमप्पत्यन्तगुणविद्वषयम् । अत्यन्तिनिर्गुणस्य शूद्धस् वध औशनसम्— शूद्धं हत्वा तप्तरुच्छ्रमिति । अधानुङोमविषये व । ।

सर्वेषामनुष्ठोमानां तन्मावहनने तु यत् । तदेव निर्िशेद्धिद्दान्स्रीणामवे तथैव च ॥ आवेपीहनने ब्रूपाद्य-सर्तुरुपदिश्यते । गर्भे चैव तथा ज्ञाते व्यावस्य वचनं यथा ॥ ति

गतिले। मवधे लौगाक्षिः —

हनने प्रतिलोगानां शुद्रजा गं कथं भवेत् । ज्ञानपूर्वे पराकः स्यादज्ञाने त्वेन्दवं स्पृतम् ॥ इतरेषां चतुर्भागं पिनुरुक्तं मनीषिभिः । इति ॥ १६ ॥ अनात्रेय्यां चैंथम् ॥ १७

अतियीव्यतिरि गया वधे चैवं शूद्रे संवत्सरमृवमै गाइशाश्च गा इ गाइति। इदं बासण्याश्चारित्रवत्याः कुटम्बिन्या बुद्धिपूर्ववय । याज्ञवरुक्यश्च --- अपदुष्टां स्त्रियं हत्वा शूद्रहत्यावतं चरेत् । इति । षण्मा(सा)ञ्जूदहाऽप्येतखेनूर्दधादशाथवा ॥ इति । दुर्वृत्ता ब्रह्मविट्क्षत्वशूद्रयोषाः प्रमाप्य तु । हतिं धनुर्वस्तमिं कमाद्दद्यादिशुद्धये ॥ इति ।

यत्तु हारीतेनोक्तम् षड्वर्षाणि राजन्ये पास्ततं ब्रह्मचर्यम् । वैश्ये नाणि ' सार्धमब्दं शूद्रे, क्षत्तियवद्बाह्मणीषु, वैश्यवत्क्षत्त्रियायां, शूद्रवद्देश्यायां, शूद्रां हत्वा नव मासानिति, तद्त्यन्तोत्कृष्टाचार्यादिविषयम् ॥ १७ ॥

गां च वैश्यवत्॥ १८ ॥

गां च हत्वा वैश्यवधे यत्पायश्चित्तं 'वैश्यवधे त्रवार्षिकमृषमैकशताश्च ग दद्यात् । इति तच्चरेत् । इदं वृत्तस्वाध्यायवतो दुर्गतस्य बहुकुटुम्बस्य या गौर्व हुक्षीरा तरुणी तस्या बुद्धिपूर्ववधे । तादृश्या एककछाया गर्भिण्याः कर्माङ्गभू-ताया वधे याम्यम्-

> गोसहस्रं शतं वाऽपि दद्यात्सुचरितवतः। अविद्यमाने सर्वस्वं वेद्विद्धचो निवेद्येत् ॥ इति ।

द्विमासिकं वतमत्र प्रकृतम् । अत्रैवं बुद्धिपूर्वे कात्यायनीयं गोदानराहितं नैवार्षिकम्-

गोघ्नस्तच्चर्मस्वीतो वसेद्रोष्ठेऽथ वा पुनः। गाश्चानुगच्छेत्सततं मौर्झीर्चाराजिनादिभिः॥ वर्षशीतातपक्केशविद्वपङ्कभयार्दितः । मोक्षयेत्सर्वयत्नेन पृयते वत्सरैस्त्रिभिः ॥ इति ।

वसिष्ठ:-गां चेद्धन्यात्तस्याश्चर्मणाऽऽर्द्वेण परिवेष्टितः षणमा सा)न्छच्छं तप्तकुच्छं वा तिष्ठेद्दषभवेहतौ च दद्याताम् । इति । वेहद्वृषभोपहता गौः। द्यातामिति कर्माण कर्तृपत्ययः। याज्ञवल्क्यः-

> पञ्चगव्यं पिबन्गोध्नो मासमासीत संयतः। गोष्ठेशयो गोनुगामी गोपदानेन शुध्यति ॥

१ ग. व परुतेषु का। २ ग हेषु वा।

कृष्कुं चैवातिकृष्कुं च चरेद्वाऽपि समाहितः । दद्यात्त्रिरात्रं चोपोष्य वृषभैकादशास्तु गाः इति ॥ जाबालः –पाजापत्यं क्विरेन्मासं गोहन्ता चेदकामतः ।

गोहितो गोनुगामी स्यादोपदानेन शुध्याति ॥ इति ।

विष्णुः -गोद्यस्य पञ्चगव्येन मासमेकं पलत्रयम् ।

पत्यहं स्यात्पराको वा चान्द्रायण नथापि वी ॥ इति ॥

काश्यपः—गां हत्वा तच्चर्मणा परिवृतो मासं गोष्ठेशयस्त्रिववणस्नायी ार्नत्य पञ्चगव्याहारः । इति । शातातपः—मासं पञ्चगव्याहारः । इति ।

राङ्खपचेतसौ -गोघ्नः पश्चगव्याहारः । पश्चविंरातिरात्रमुपवसेतिहारीखं वपनं कृत्वा गोचर्मणा परिवृतो गाश्चानुगच्छेद्देष्ठिरायो गां च द्द्यात् । इति ।

पेठीनसि:-गोघ्नो मासं यवागूं प्रमृततण्डुलशृतां भुद्धानी गोभ्यः िय कुर्वञ्शुध्यति । इति ।

मनु:-उपपातकसंयुक्तो गोध्नो भुद्धीत यावकम् ।

कतवापो वसेद्गोष्टे चर्मणाऽऽर्द्गेण संवृत: ॥ चतुर्थकालमश्रीयादक्षारलवणं मितम् ।

गोमूत्रेणाऽऽचरेत्स्नानं द्दी मासौ नियतेन्द्रिय: ॥

इत्याँरेम्यं-अनेन विधिना यस्तु गोघ्नो गा अनुगच्छति स गोहत्याकृतं पापं त्रिभिर्मासैर्व्यपोहति ॥

ऋषमैकाद्शा गाश्च दद्यात्सुचरितवतम् । इति ।

सुमन्तुः-गोघस्य गोपदानं गाष्ठे शयनं दादशरात्रं पश्चगःयगार्शन गा। मनुगमनं च । इति ।

संवर्तः - सक्त्यावकभैक्षाशी पयो दिध घृतं शक्तत् ।
एतानि कमशोऽश्रीयान्मासार्धं सुसमाहितः ॥
बाह्मणान्भोजियत्वा तु गां दद्यादात्मशुद्धये ॥ इति ।

बृहस्पति:-द्वादशरात्रं पश्चगव्याहारः । इति ।

एतेषां बुद्धिपूर्वाबुद्धिपूर्वभेदेन बाह्मणादिपरियहेण यथाईं विषयविभाग ऊहितव्यः। षट्तिंशन्मते विशेष —

पाद उत्पन्नमात्रे तु द्दी पादी दृढतां गते ।
पादीनं व्रतमादिष्टं हत्वा गर्भमचेतनम् ॥
अङ्गपत्यङ्गसंपूर्णे गर्भे चेतःसमान्वते ।
द्विगु गं गोव्रतं कुर्यादेषा गोव्यस्य निस्कृतिः ॥
बृहत्मचेताः एकवर्षे हते वत्से कृच्छ्रपादो विधीयते ।
अबुद्धिपूर्वे पुंसः स्याद्द्विपादस्तु द्विहायने ॥

त्रिहायने त्रिपादं स्यात्माजापत्यमतः परम् इति । स्मृत्यन्तरम्-अतिवृद्धामतिक्रशामातेबालां च रोगिणीम् ।

हत्वा पूर्वविधानेन चरेदर्धवतं द्विजः ॥ ब्राह्मणान्मे जयेच्छक्तया दद्याद्वेमतिलांस्तथा इति ।

संवर्तापस्तम्बौ-एका चेद्वहुभिः कैश्विद्दैवाद्व्यापादिता क्वित्। पादं पादं तु हत्यायाश्वरेयुस्ते पृथक्षृथक् ॥ व्यापनानां बहुनां तु रोधने बन्धनेऽपि वा ।

भिपङ्गिथ्योपचार च दिगुणं गोवतं चरेत् ॥ इति ।

बहून मि व्यापाद्ने द्विगुणमेव वचनबलात् १ न तु प्रतिनिमित्तं नौपिति-कावृत्तिः । व्यासः-

औषधं लवणं चैव पुण्यार्थमि भोजनम् । अतिरिक्तं न दातव्यं काले स्वल्पं तु दापयेत् ॥ आतिरिक्ते विपत्तिश्चेत्स्रच्छूपादो विधीयते इति ।

आपस्तम्ब:-पाषाणैर्छगुडैवीऽपि बास्त्रेबीऽन्येन वः बलात् ॥ निघातयन्ति ये गास्तु तस्मिन्कुर्युव्रतं हि ते । पाद्मेकं चरेद्रोधे द्वी पादो बन्धने चरेत् ॥ योजने पाद्हीनं स्याच्चरेत्सर्वे निपातने इति ।

विसष्ट: -न नालिकरेण न शाणवालैर्न चापि मौद्धेन न वर्धगृङ्खलै.। एतैस्तु गावो न निबन्धनीया । वद्ध्वाऽनुतिष्ठत्परशुं प्रगृह्य इति ॥ १८ ॥

मण्डूकनकुलकाकाबिम्बदहरमूषकश्वहिंसासु च ॥ १९॥

िम्बः कामरूपी क्रकलासः । दहरः स्वल्पकायो मूषकः । छुच्छुन्द्रीत्येके । अन्ये प्रसिद्धाः । एतेषां समुद्गितानां बधे वैश्यवत्पायश्चित्तम् । इदं
बुद्धिपूर्वाभ्यासविषयम् । अन्यबाऽऽपस्तम्बीयम्—वायस्()बकबलाकबाईणचकवाकहंसभासमण्डूकनकुलसैरिकाश्वहिंसायां शूद्रवत्पायश्चित्तम् । इति ।

मनुरिष-मार्जारनकुछो हत्वा चाषमण्डूकमेव च । श्रमोधोलूककाकांश्य शूद्रहत्यान्तं चरेत्॥ इति ।

मत्येकं वधे तु बुद्धिपूर्वे-

मार्जारगोधानकुलमण्डूकश्वपतात्रिणः ।

हतवा त्र्यहं पिबेत्क्षीरं कुच्छ्रं वा पादिकं चरेत् ॥

इति याज्ञवल्क्योक्तं दृष्टव्यम् । बुद्धिपूर्वे मानवम्-

षयः पिबेत्त्रिरात्रं वा योजनं वाऽध्वनो ब्रजेत् । इति ॥१९॥

अस्थन्वतां सहस्रं हत्वा ॥ २० ॥

अस्थिमतां क्रकलासादीनां सहस्रं हत्वा वैश्यवत्मायाश्चित्तम् ॥ २०॥ अनस्थिमतामनहुद्धारे च ॥ २१॥

येऽस्थिमन्तो न भवन्ति दंशमशकादयस्तेषां यावतोऽनङ्वान्भर्तुं शक्नोति तावतो हत्वा वैश्यवत्पायश्चित्तम् । इदं द्वयमपि पूर्वाभ्यासविषयम् । अन्यत्र याज्ञवल्क्योक्तम्-अस्थन्वतां सहस्रं तु तथाऽनस्थिमतामनः ।

शूद्रहत्यान्तरं पाण्मासिकं प्रकृतं दश धेनूर्वा द्यात् । इति च ॥ २९॥ अपि वाऽस्थन्वतामेकैकस्मिन्किंचिद्यात् ॥ २२॥

अपि वेति विकल्पे । अस्थन्वतां यावन्तो हताः सहस्रमूर्ध्वमवींग्वा तावत संख्याय पत्येकं किंचित्किंचिद्दद्यात् । इदं चास्थिमत्सु पायिश्वत्तं पूर्वकं वेति

⁽⁾ मुदितपुस्तके तु वायसम्मचलाकाति पाठो वर्तते ।

अष्टमुष्टि भवेतिंकचितिंकंचिदष्टौ तु पुष्कलम् । पुष्कलानि तु चत्वारि आढकः परिकीर्तितः ॥ चतुराढको भवेददोण इति मानस्य लक्षणम् । इति स्मृतिः ।

अनस्थिमतां तु तावन्तः प्राणायामाः । तथा च मनुः— किंचिदेव तु विपाय दद्यादस्थिभतां वधे । अनस्न्यां चैव हिंसायां प्राणायामेन शुध्यति इति ॥ २२ ॥

षण्ढे षलालभारः सीसमापरच ॥ २३ ॥

यं पति देवल आह-

*

60

षण्ढो यो हीनछिङ्गः स्यात्संस्काराईश्च नैव सः । इति ।

तिसन्हते पुरुषबाद्यः पछाछभारः सीसमापश्चेत्युभयं मिछितं देयं बुद्धिपू च इतरत्र त्वेकैकम् । सीसं छोहिविशेषो रजतसदृशः क्षणद्वतिः । मापप्रमाणं पूर्वमेव व्याख्यातम् । अत्र च न क्वापि स्मृतौ जातिविशेषः श्रूयत, षण्ढः षण्ढक इत्येतावदेव श्रूमते । तत्र यथा जातिसमवायेऽपि वास्तणादिपयुक्तः संस्कारो न भवति तथा तद्वधानिमित्तं पायश्चित्तमापि न भवति यावदुक्तमेव तु भवति । अन्ये मृगपिक्षाविषयं मन्यन्ते । मृगेषु पिक्षषु च ये षण्ढास्तेषु हतेष्ट्विति ॥ २३ ॥

वराहे घृतधटः ॥ २४ ॥

वराहे हते घृतपूर्णों घटो देयः ॥ २४ ॥ सर्पे लोहदण्डः ॥ २५ ॥

सर्पे हते होहदण्डो देयः । होहराब्देन कार्ष्णायसमुच्यते । अश्रीं कार्ष्णायसीं दद्यात्सर्पे हत्वा द्विजोत्तमः । इति मानवे दर्शनात् । सर्पे हत्वा मापं दद्यादित्यौरानसं बुद्धिपूर्वविषयम् ॥ २५ ॥

ब्रह्मबन्ध्वां चलनायां नीलः ॥ २६ ॥

जातिमात्रब्रासणी ब्रह्मबन्धः । चलना व्याभेचारिणी । तस्यां हतायाँ नीलो देयः । नीलो वृष इ।ति । मनुस्तु वर्णानुपूर्व्यम ह—

१ ग. ते असिं का । घ. ते । आश्रिको ।

नीलकामुंकवस्तावीः पृथग्दद्याद्विशुद्धये । चतुर्णामपि वर्णानां नारीहीत्वाऽनवस्थिताः इति ॥ २६ ॥ वैशिकोन किंचित् ॥ २७ ॥

आभिगच्छाति या नारी पुरुषेर्वहुभिर्मिथः ।

वयभिचारिणीति सा ज्ञेया पत्यक्षं गणिकेति च ॥ इति पजापतिः ।

वैश्विकेन वेश्याकर्मणा जीवन्त्यां ब्रम्हबन्ध्वां हतायां किंचिद्देयम् भ्रमुष्टि
भवेतिंकचिदित्येतत् ॥ २०॥

तल्पाञ्चधनलाभवधेषु पृथग्वनाणि॥ २८॥

तलपशब्देन शयनवाचिना भार्या छक्ष्यते । अन्नं इताचम् । धनं सुवणीदि । एतेषां छाभस्य वधे विघ्न एषु छभ्यमानेषु दोषोपन्यासादिना यो हन्ति
स प्रथक्षितिनिमित्तं भेदेन संवत्सरं पाछतं ब्रम्हचर्यं चरेत् । कन्याच्यधनविघ्ने
पाजापत्यमित्याशनसमबुद्धिपूर्वविषयम् । ब्राम्हणछाभविषयमिद्म् । क्षान्त्रियादि
विषयम् ॥ २८ ॥

हे परदार ॥ २९॥

परदारगमने दे वर्षे पाछतं ब्रम्हचर्यम् । ऋतुकालगमने बुद्धिपूर्व इदम् अकामिनः पुनरेतदेवार्धक्लप्त्या योज्यम् ॥ २९ ॥

त्रीाणि श्रोत्रियस्य ॥ ३०॥

पूर्वोक्त एव विषये श्रोतियस्य ब्राम्हणस्य दारान्यच्छतस्रीणि वर्षाणि ब्रम्हचर्यम् । अत्र राङ्खः—वैश्यायामवकीर्णः सवत्सरं ब्रम्हचर्यं तिषवणं चानुतिहेत् । क्षात्त्रियायां द्वे वर्षे । त्रीणि ब्राम्हण्याम् । वैद्या त्रच सूद्रायां ब्राम्हण्याम् । वैद्या

संवर्तः-शूदां तु त्राम्हणो गत्वा मासं मासार्धमेव वा ।

गोमूत्रयावकाहारस्तिष्ठेत्तत्पापमोक्षक: ॥ इति ।

कामतो मासमकामतौऽर्धमासामिति व्यवस्थितो विकलाः । अनृतुकाछे तु ब्राम्हण्यादिद्विजातिषु मानवानि त्रैमासिकद्वैमासिकवान्द्रायणानि । क्षिति यादीनां च क्षित्वयादिर्द्वाषु ब्राम्हणवत्पायश्चित्तम् । अत्रोशना—

गमने तु व्रतं यत्स्याद्गर्भे तद्दिंगुणं चरत् ॥ इति ॥ ३० ॥

-

ð.

द्रव्यलाभे चोत्सर्गः ॥ ३१ ॥

यदि च परस्रीतो यत्कि निट्द्रव्यं लब्धं तस्योत्सर्गस्त्यागः कार्यः ॥३१॥ यथारूथानं दा गष्ययेत् ॥ ३२ ॥

यत्र स्थाने लब्धं तद्दा गमयेत् ॥ ३२ ॥ प्रतिषिद्धमन्त्रयोगे सहस्रवाकश्चेत् ॥ ३३ ॥

मन्त्रयागे ये प्रतिषिद्धाः पितताद्यस्तैः सह मन्त्रयोगेऽध्ययनाध्यापनयाज्ययाजनलक्षणे संवत्सरं पाळतं ब्रह्मचर्यं स चेन्मन्त्रयोगः सहस्रवाको भवाते ।
वक्तीनि वाकः पद्म् । सहस्रपद्थेत् । अनुद्धिपूर्वं इदम् । बुद्धिपूर्वे तु पितत्व
स्यादिति । उपपातके तु वासिष्ठम् -पितचण्डालश्चत्रस्तकश्चवणे तु त्रिरात्रं
वाग्यता आसीरन्सहेस्त्रावरं वा तद्भ्यस्यन्तः पूता भवन्तीति विज्ञायते । एतेनैव
गहिताध्यापकयाजका व्याख्याताः । दक्षिणात्यागाच पूता भवन्तीति विज्ञायत

इति । अन्ये तु सहाध्ययनं सहयजनं च मन्त्रयोगं व्याचक्षते ॥ ३३ ॥

अउन्युत्सादिनिशः त्युपपातकेषु चैवम् ॥ ३४ ॥

अभिमुत्सादायतुं शीलमस्योति बुद्धिपूर्वमग्न्युत्सादी । निराकातिः शकौ सत्यामनध्येता । उपपातकानि, अपङ्कचानां पाग्दुर्बालाद्दोहन्तृब्रह्महत्यादीनि व्याख्यातानि । एष्वगन्युसा (त्सा)द्यादिष्वेवं संवत्सरं ब्रह्मचर्यमिति । या नास्तिक्यादेशोपण्ठवादिना वाऽभीनपिष्याति पुनस्तच्छान्तावपि बहुकालं नाऽधित्ते तद्विषयमिद्म् । तत्रैवाल्पकाले वासिष्ठम्—पोऽभीनपविष्यात्स्रच्छं द्वादश-रात्रं चरित्वा पुनरादधीत । आलस्येने त्यजतो मानवम्—

अग्निहोन्यपविध्यात्रीन्त्राह्मणः कामकारतः ।

चान्द्रायणं चरेन्मासं वीरहत्यासमं हि तत् ॥ इति ।

मासमपविध्येत्यन्वयः ।

अग्निहोन्यपविष्याञ्चीन्मासादृष्वं तु कामतः ।

क्रच्छ्रं चान्द्रायणं चैव कुर्यादत्राविचारयन् ॥ इति । मासाद्रीगपि चान्द्रायणाभिच्छन्ति । स्मार्ते त्वशी— योऽभिं त्यजाति नास्तिक्यात्पाजापत्यं चरेद्द्विजः । अन्यत्र पुनराधानं दानमेव तथैव च ॥ इति । मानवं तु-षष्ठान्यकालता मातं संहिताजप एव च । हामश्च शाकलैनित्यमपङ्कचानां विशोधनम् ॥ इति ॥ ३४ ॥

स्त्री याऽतिचारिणी गुप्ता पिण्डं तु लभेत ॥ ३५ ॥

या स्त्री भर्तारमतिचरित व्याभिचरित पुरुषान्तरेण संगच्छते सा चैतदेव पायश्चित्तं कुर्यात्संवत्सरं ब्रह्मचर्यम् । सा च यावत्समाप्यते पायश्चित्तं तावद्गुप्ता सती पिण्डमात्रं स्रभते । बुद्धिपूर्वे सरुद्रमन इदम् । अन्यत्र –

यत्पुंसः परदारेषु तचैतां चारयेद्वतम् । इत्येतत् ।

सजातीयविषये चेदम् । त्रासण्याः क्षत्त्रियविषये वासिष्ठम्-व्यवाये संवत्सरं घृतपटं धारयेद्रीमयकद्मे कुदापस्तरे () वा भुज्जानाऽधः द्यायीतोध्वं संवत्सरादण्सु निमन्नायाः सावित्र्यष्टं + सहस्रेण शिरोभिर्जुहुयादिति । वैश्य-विषये त्वौद्यानसम्—व्यभिचारिणी कृच्छाब्दं चरोदिति । अत्र बृहत्पचेताः –

विमा शूद्रेण संपृक्ता न चैतस्मात्मसूयते !

पायिश्वर्तं स्मृतं तस्याः छच्छ्रं चान्द्रायणत्रथम् ॥

चान्द्रायणे दे छच्छ्रं च विमाया वैश्यसंगमे ॥

छच्छ्रचान्द्रायणे स्यातां तस्याः क्षत्त्रियसंगमे ॥

क्षत्त्रिया शूद्रसंपर्के छच्छ्रे चान्द्रायणद्वयम् ।

चान्द्रायणं सछच्छ्रं च चरेद्वैश्येन संगता ॥

शूद्रं गत्वा चरे श्रेथा छच्छ्रं चान्द्रायणोत्तरम् ।

आनुष्ठोम्येन कुर्वीत छच्छ्रं पादावरोपितम् ॥ इति ।

पजाताया बासण्याश्वतुर्विशतिमते विशेषः--

विश्वमर्भे पराकः स्यात्क्षात्त्रयस्य तथैन्द्वम् । ऐन्द्वं च पराकश्च वैश्यस्याकामकारतः॥ जूदगर्भे भवेत्यागश्चण्डालो जायते यतः। गर्भस्रावे धातुद्रोषैश्चरेच्चान्द्रायणत्रयम्॥ इति ।

⁽⁾ मुदितपुस्तके--वाऽधः, इति वतते । + मुदितपुस्तके ष्टरातेनेति पाठो वर्तते ।

५पञ्चमोऽध्यायः।

कामकार पुनः पराकादिकं द्विगुणं कुर्यात् । वसिष्ठस्तु-ब्राह्मणक्षत्त्रियविशां भार्याः शूद्रेण संगताः । अप्रजाता विशुध्यन्ति पायश्चित्तेन नेतराः ॥

आहितपतिगर्भायास्तु पश्चाच्छूदादिसंगमे-अन्तर्वत्नी तु या नारी समेताऽऽक्रम्य कामिना । पायश्वित्तं न सा कुर्याद्यावद्गर्भो न निःसतः ॥ जाते गर्भे वतं पश्चात्कुर्यान्मासं तु यावकम् । न गर्भदोषस्तत्रास्ति संस्कार्यः स यथाविधि ॥

इति स्मृत्यन्तरोक्तं द्रष्टञ्यम् । या तु दोःशिल्यात्पायश्चित्तं न करोति तदा-भातिलोम्ये वधः पुंसां स्त्रोणां नासादिकर्तनम् । इत्येतन्द्रवाति । हीनवर्णीपमुक्ता या साम्या(साऽङ्कचा) वध्याऽथवा भवेत् । इति पराश्चरः । अङ्कनं पुंछिङ्गेन ॥ ३५ ॥

अमानुषीषु गोवर्ज स्त्रीकृते कृष्माण्डैर्घतहोमा घृतहोमः

॥ ३६ ॥

4

गोविजितास्वमानुषीषु महिषादिस्त्रीषु स्त्रीकृते मैथुन आचरिते कूष्माण्डेधः तहोमः कर्तवनः । गोवर्जामिति वचनं विस्पष्टार्थम् । वक्ष्यति गवि च गुरुतल्पसम इति । ततश्च तदेव गोगमने भाविष्यति । सक्टदमन इदम् । अभ्यासे शङ्खोकम्-पशुवेश्याभिगमने प्राजापत्यम् । इति । अत्र कण्ठः (ण्वः)-

प्रसूतो यस्तु वेश्यायां भेक्षभुक्संयतेन्द्रियः। शतसाहस्रमभ्यस्य सावित्रीमेति शुद्धताम् ॥ इति ।

द्विरुक्तिरुका॥ ३६॥

इति श्रीगौतमीयवृत्तौ हरदत्तविरचितायां मिताक्षरायां तृतियप्रश्ने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पश्चमोऽध्यायः ।

क्रमपाप्तं सुरापानपायश्चित्तमाहः २४

1-4

सुर पस्य बाह्मणस्योष्णामासिश्चेयः सुरामास्ये मृतः शुध्येत्

11 9 11

त्रिविचा सुरा । यथाऽऽह मनुः-

गौडी माध्वी च पेष्टी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा। यथैवैका न पातव्या तथा सर्वा दिजोत्तमै: ॥ इति।

द्विजोत्तमा वासणाः । क्षत्वियवैश्ययो तु पैष्टचेव । यथा स एवाऽऽह -

सुरा वै मलमनानां पाष्मा च मलमुच्यंत । तस्माद्बाह्मणराजन्यो वैश्यश्च न सुरां पिबेत् ॥ इति ।

अन्तानां मर्छ सुरा पेष्टी । अत्र ब्राह्मणग्रहणं द्विजात्युपरुक्षणम् । यस्य या प्रातिषिद्धा सुरा तस्याः पाता सुरापः । तस्य द्विजातेरास्ये तामेव सुरामुष्णा-मासिश्चेयुः । उपदेष्टृष्वयमासेचनारोपः । आसिश्चन्त्येव हि ते सुरामास्ये । येन सुरापेण सुरोष्णा पातव्या तस्येयं निष्कृतिरित्युपदिशन्तीति । स्वयमेव त्वासेचन-कर्ता । तथा चाऽऽपस्तम्बः—सुरापोऽश्चिस्पर्शां सुरां पिबेदिति । आसिश्चयुरिति बहुवचनमुपदेष्टृणां बहुत्वं सूचयति । मनुरप्याह —

तेषां वेदविदो ब्र्युस्त्रयोऽप्येनःसु निष्क्रातिम् । सा तेषां पावना यस्मात्पवित्रं विदुषां हि वारु ॥ इति ।

मृतः शुध्येदितिवचनात्तथा सुरा तापयितव्या यथा पातुर्मरणं भवति । आर्द्रवासाः पिबेदिति पैठीनासिः । आयसेन ताम्रेण वा पात्रेणेति प्रचेताः । अत्र याज्ञवल्क्यः—सुराम्बुघृतगोमूत्रपयसामग्रिसंनिभम् ।

सुरापोऽन्यतमं पीत्वा मरणाच्छु द्धिमृच्छाति ॥ बोलवासा जटी वाऽपि ब्रह्महत्यावतं चरेत् ।

पिण्याकं वा कणान्वाऽपि मक्षयेत्तु समां निशि ॥ इति ।

तत्र मरणान्तिकपायश्चित्तं बुद्धिपूर्वाभ्यासविषयम् । तत्रैव सक्तरपान-विषयं ब्रह्महत्यावतं द्वादश्चवार्षिकम् । अत्र स्त्रियोऽधिकृत्य शङ्खः---सुरालशुनपलाण्डुगृञ्जनमांसादीन्यभक्ष्याणि वर्जयेदाहारमपं शरीरामिति ।

1

वासिष्ठोऽपि-पतत्यर्धं शरीरस्य भार्या यस्य सुरां पिवेत् । पतितार्धं शरीरस्य निष्कृनिर्न विधीयते ॥ इति ।

**

अत्र स्त्रीणामापि प्रतिषिद्धा सुरा । प्रायश्चित्तं च भवति । तत्र स्त्रीणामधँ प्रायश्चित्तमित्युक्तं पुरस्तात् । तत्र मरणान्तिकेऽर्धक्छमेरराक्यत्वाद्बुद्धिपूर्वस्रकृत्पाने द्वादश्चाषिकस्यार्धम् । अभ्यासे तस्यैवाभ्यासः ॥ ३ ॥

> अमत्या पाने पयो घृतमुद्दकं वायुं प्रतिन्यहं तप्तानि स कृच्छ्रस्ततोऽस्य संस्कारः॥ २॥

यस्त्वमत्याऽबुद्धिपूर्वं यवाग्वादिबुद्ध्या सुरां पिबाति स पय आदीनि चत्वारि इन्याणि तप्तान्युष्णानि । द्वितीयाया निर्देशात्पिबेदिति गम्यते । प्रतित्र्यांह प्रथमे न्यहे पयो द्वितीये घृतं तृतीय उदकं चतुर्थे वायुम । वायोरुष्णत्वं सार्वे पदेशे । स क्रच्छः स एवंभूतस्तप्तक्रच्छोऽस्य पायश्चित्तम् । ततः क्रच्छानन्तरं पुनः संस्कारः पुनरुपनयनमस्य कर्तव्यम् । तत्र म नवो विशेषः—

वपनं मेखछा दण्डो भैक्षचर्या व्रतानि च । एतानि तु निवर्तन्ते पुनःसंस्कारकर्मणि ॥ इति ।

इदमीषद्भ्यासाविषयम् ।

अज्ञानाद्वारुणीं पीत्वा संस्कारेणैव शुध्याति ॥

इति मानवं सक्रत्पानविषयम् । यत्तु-

पिण्याकं वा कणान्वाअपि भक्षयेत्तु समां निशि ॥

इति याज्ञवल्क्यवचनम् । यच्चाऽऽपस्तम्बीयम्—' स्ते रे छत्वा सुरां पीत्वा' इत्यादि तदुभयमपि बहुकुत्वोऽभ्यास एव ।

कणान्वा भक्षयेद्ब्दं पिण्याकं वा सरुनिशि ।

सुरापानापनुत्त्यर्थं वाछवासा जटो ध्वजी ॥

इत्यादीनि मानवादीन्यबुद्धिपूर्वविषय एवःभ्यासगारतभ्यापेक्षया व्यवस्था-प्यानि ॥ २ ॥

मूत्रपुरीषरेतसां च प्राशने ॥ ३ ॥

मूत्रादीनां च पाशने तप्तस्रच्छ्रसहितः पुनःसंस्कारः त्रायश्चित्तम् । इदं बुद्धिपूर्वविषयम् । भुक्त्याऽतोऽन्यतमस्यान्तममत्या क्षपणं त्र्यहम् ।

मत्या भुक्तवा चरेत्क्रच्छ्रं रेतो विण्मूत्रमेव च ॥ इति ।

· Am

अज्ञानात्पाश्य विष्पूत्रं सुरासंमुष्टमेव च । पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः । इति च । कण्वश्य स्पष्टमाह-

> रेतो भूत्रपुरीषाणां पाश्चने मतिपूर्वके । नाश्नीयाच्च त्र्यहं मत्या तप्तक्रच्छ्रं चरेद्द्विजः ॥ इति ॥३॥ श्वापदोष्ट्रखराणां चाङ्गस्य ॥ ४ ॥

व्याद्यायो वनचराः थापदाः । उष्ट्रसरी प्रसिद्धी । तेषामङ्गं मांसचमादि । तस्य प्राचाने तप्तक्रच्छः पुनःसंस्कारथ । बुद्धिपूर्वीभ्यास उभयं मिलितम् । सक्ट-द्बुद्धिवूर्वे चाबुद्धिपूर्वीभ्यासे च तप्तक्रच्छः । सक्टद्मितिपूर्वे संस्कार एव भवति ॥ ४॥

ग्राम्यकुक्कुटसूकरयोश्च ॥ ५ ॥

याम्यकुक्कुटस्करयोधाङ्गस्य प्राश्चन एतदेव प्रायाधित्तम् । विषयव्यवस्था च पूर्ववत् ॥ ५ ॥

गन्धाच्राणे सरापस्य प्राणायामा घृतप्राञ्चं च ॥ ६ ॥

यस्तु सुरायस्तस्य तं सुरागन्धमाजिन्द्राति न पुनः श्रारागन्धं नापि भाण्ड-स्थायाः सुराया गन्धं तस्य पाणायामास्त्रयो घृतपाशनं च पायश्चित्तग् । बाह्यः णस्य मिछितम् , क्षात्त्रियस्य पाणायामाः । वैश्वस्य घृतपाशनामिति । सोमपस्य विश्वेषो मनुना दर्शितः—

ब्राह्मणस्य सुरापस्य गन्धमाघ्राय सोमपः । पाणानप्सु त्रिराचम्य घृतं पाश्य विद्याध्यति ॥ इति । ब्राह्मणस्य रुजाकृत्यं घरातिरघरेयमद्ययोः । जैहम्यं पुंसि च मथुन्यं जातिसंकरकं स्मृतम् ॥ इति । जातिश्वंशकरं कर्ष कृत्वाऽन्यतमिष्च्छया । चरेत्सांतपनं कृष्कुं पाजापत्वमनिष्छया ॥

इति (च) मानवं भाण्डस्थायाः सुराया गन्धाघाणे ॥ ६ ॥

पूर्वैश्व दष्टस्य ॥ ७ ॥

पूर्वै: श्वापदादिभिर्दष्टस्य च प्राणायामा घृतपाद्यनं च प्रायश्चित्तम्

मनुस्तु-श्रमुगालखरैर्द्षो ग्राम्यैः कव्याद्गिरेव च । नराश्रोष्ट्रेवराहैश्व पाणायामेन गुध्यति ॥ इति । वासणाविषये वासिष्ठो विशेषः-

ब्राह्मणस्तु शुना दष्टो नदीं गत्वा समुदगाम् । माणायामञातं कृत्वा वृतं पाश्य विशुध्यति ॥ इति । जातूकण्यः-ब्राह्मणी क्षत्त्रिया ैश्या शुना च श्वापदैरापि । दष्टा सचैलमाप्लुत्य शुध्यतीति न संशयः ॥ इति ॥ ७ ॥ तप्ते लोहशयने गुरुतल्प ः शयीत ॥ ८ ॥

गुरुरत्र पिता।

निषकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविवि ।

संभावयति चान्येन स विषो गुरुरुच्यते ॥ इति पनुः ।

विपग्रहणं वर्णोपलक्षणम् । तल्परान्देन रायनवाचिना भार्या लक्ष्यते । तत्रापि जननी तत्सपत्नी च । तद्गाभी गुरुतल्पगः । छोहशयने कृष्णायसानीर्मेते तन्ते यथा मरणमेव भवति तथा तन्ते शयीत ॥ ८ ॥

मुधी वा श्लिष्येज्ज्वलन्ती 🗓 ॥ ९ ॥

लोहमयी स्त्रीपकातः सूर्मी । तां ज्वलन्तीमियवणां तप्तां सिष्येदापाणवि योगात्॥ ९॥

लिङ्गं वा सवृषणमुत्क्रत्याञ्जलाभाषाय दक्षिणा-प्रतीचीं व्रजेद्जिस्ममाश्ररीरनिपातात् ॥ १० ॥

सबीजं लिङ्गमुत्पाटच क्षुरादिना निकृत्य स्वस्याञ्जलो स्थापार्यत्वा नैर्ऋतीं दिशमाश्वरीरानिपाताद्वरजेदाजिलम् क्रूपाधपारिहरन्पत्रेव प्रतिहतस्तत्रेव तिष्ठेदापलयादिति वसिष्ठः ॥ १०॥

मृतः शुध्येत् ॥ ११ ॥

सर्वदेशकोऽयम् । पूर्वोक्तेषु प्रकारच्वन्यतमेन मृत एव गुरुतल्पगः शुध्येना -न्यथोति । त्रितयमप्येतज्जननीगयने स्वभार्यादिबुद्ध्याऽबुद्धिपूर्वे तत्सपत्न्यां च सवर्णायां बुदिपूर्वगमने-

पितृभार्यां तु विज्ञ य सवणा योऽभिगच्छति ।
जननीं वाऽप्यविज्ञाय नामृतः स विज्ञुष्यिति ॥
इति षट्त्रिंजान्मते दर्शनात् । जनन्यां कामकृते वासिष्ठम् —
निष्काल(मु)को वृताभ्यको गोमयाशिना पादमभृत्यात्मानमवदाहयेत् ।
इतिअकामतोऽभ्यासेऽप्येवमेव अकामतस्तु मातुः सपत्न्याः सवर्णाया उत्कृष्टा
याश्च गमनाभ्यासे शङ्खोकम्

अधःशायी जटाधारी पर्णमुखकलाशनः।
एककालं समश्वन्वै वर्षे तु द्वादशे गते॥
रुक्मस्तेयी सुरापश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः।
वरतेनैतेन शुध्यन्ति महापातिकेनस्त्विमे॥ इति।
सक्टद्गमन उभयोरिच्छातः प्रवृत्तौ मानवम्—

खट्वाङ्गी चीरवासा वा श्मश्रुलो विजने वने । प्राजापत्यं चरेत्लच्छुमब्दमेकं समाहितः ॥ इति ।

तथा मोत्साहितस्य स्वेन वा मोत्साहितायामौज्ञानसं पायश्चित्तद्वयं क्रमेण दृष्टव्यम्—गुरुतल्पगामी संवत्सरं ब्रह्मचारिञ्दतं षण्पासांस्तप्तकुच्छं चेति । एवमु त्तरेष्विपि पायश्चित्तेषु यद्गुरु तदात्मना मोत्साहितायां यस्रघु तत्त्वया पोत्साहि तस्य मध्यमं त्भयोरिच्छातः पवृत्ताविति दृष्टव्यम् । तत्र व्याघः—

छच्छं चैवातिछच्छ्रं च तथा छच्छ्रातिछच्छ्र म् । चरेन्मासत्रयं विषः क्षत्त्रियागमने गुरो: ॥ इति ।

इदं सक्ठद्गमनेऽबुद्धिपूर्वे । बुद्धिपूर्वाभ्यास एकवर्षम्—
पत्या गत्वा पुनर्भार्यां गुरोः क्षत्त्रसुतां द्विजः ।
वृषणवर्जितं लिङ्गमुत्कृत्य स मृतः शुचिः ॥ इति ।
कण्वः—चान्द्रायणं तप्तकृच्छ्रमतिकृच्छ्रं तथैव च ।
सक्ठद्रत्वा गुरोर्भार्यामज्ञानात्क्षत्त्रियां द्विजः ॥ इति ।
जात्कृण्यः-गुरोः क्षत्त्रसुतां भार्यां पुनर्गत्वो त्वकामतः ।
वृषणमात्रमुत्कृत्य शुद्धो जीव मृतोऽपि वा ॥ इति ।

कण्व:-तप्तरुच्छ्रं पराकं च तथा सांतपनं गुरोः ।

भार्यां वैश्यां सरुद्रत्वा बुद्ध्या मासं चेरद्द्विजः ॥ इति ।

होगाक्षि:-गुरोवेश्यां पुनर्गत्वा(सरुद्ध) गत्वा वाऽपि पुनः पुनः ।

हिङ्गाग्रं छेद्दित्वा तु ततः शुध्येत्स किल्विबात् ॥ इति ।

पजापतिः पञ्चरात्रं त नाश्चीयात्सप्ताष्ट्रो वा तथेव च ।

पजापतिः पञ्चरात्रं तु नाश्मीयात्सप्ताष्टी वा तथैव च । वैश्यां भार्यां गुरोर्गत्वा सक्टद्ज्ञानतो द्विजः ॥ इति ।

हारीत:-अभ्यस्य विशे वैश्यायां गुरोरज्ञानमोहितः ।

सपडङ्गः ब्रह्मचर्यं स चरेद्यावदायुषम् ॥ इति ।

जाबालि:—आतिकृष्ठुं तप्तकृष्ठुं पराकं च तथैव च । गुरो: शूदां सकदत्वा बुद्ध्या विपश्चरेत्तत: ॥ इति ।

उपमन्युः-पुनः शूदां गुरार्गत्वा बुद्ध्या विषः समाहितः । ब्रह्मचर्थमदुष्टात्मा द्वादशाब्दं समाचरेत् ॥ इति । दीर्वतपाः -पाजापत्यं सांतपनं सप्तरात्रोपवासनम् ।

गुरोः शूदां सक्टदत्वा चरेदज्ञानतो जनः ॥ इति । तत्रैवाभ्यासे मानवं द्रष्टव्यम्—

चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यस्येनियतेन्द्रियः ।
हिविष्येण यवाग्वा वा गुरुतल्यापनुत्तये ॥ इति ।
अत्र व्याद्रः--जात्युक्तं पारदार्यं च गुरुतल्यत्वमेव च ।
साधारणिस्त्रया नान्ति कन्याद्रपणमेव च ॥ इति ॥ ११ ॥
सन्दीसयोनिसगोत्राशिष्यमार्यास स्नुपायां

गवि च गुरुतल्पसमः॥ १२॥

सखी मित्रभूता । सयोनिर्भगिनी । सगोत्रैकगोत्रा । स्नुषा पुत्रभार्या । एतासु शिष्यभार्यायां गवि च मिथुनीमात्रे यावान्गुरुतलपदोषश्तावानस्योति ।

याज्ञवल्क्यः -सिवभार्याकुमारिषु स्वयोनिष्वन्त्यजासु च ।

सगोत्रासु सुतस्त्रीषु गुरुतत्पसमं स्मृतम् ॥ पितुः स्वसारं मातुश्च मातुलानीं स्नुषामपि । मातुः सपत्नीं भागेनीमाचार्यतनयां तथा ॥

. **b**

आचार्यपत्नीं स्वसुतां गच्छंस्तु गुरुतल्पगः । लिङ्गं छित्त्वा वधस्तस्य सकामायाः श्रिया अपि ॥ इति । नारदः- माता मातृष्वसा धश्रुमीतलानी पितृष्वसा । पितृव्यसिखिशिष्यस्त्री भगिनी तत्सखी स्नुषा ॥ दुहिताऽऽचार्यभार्या च सगोत्रा शरणागना । राज्ञी पन्रजिता धात्री साध्वी वर्णीचमा च या ॥ आसाभन्यतमां गच्छनगुरुतल्पग उच्यते । शिश्नस्योत्कर्तनात्तःत्र मान्यो दण्डो विधीयते ॥ इति । कात्यायनः--जनन्याश्च भागिन्याश्च स्वसुतायास्तथैव च । स्नुषाया गमनं चैव विज्ञयमतिपातकम्॥ आतिपाताकिनस्त्वेते पविशेषुर्हुताशनम् । बृहद्यमः -रेतः सिक्त्वा कुमारीषु स्वयोनिष्वन्त्यजासु च । सपिण्डास्वन्यदारेषु पाणत्यागा विधीयते ॥ इति । स एव- चाण्डार्टी पुल्कसीं म्लेच्छीं स्नुषां च भगिनीं सखीम् । मातापिःोः स्वसारं च निक्षिप्तां वारणागताम् ॥ मातुलानीं पन्रजितां सगोत्रां नृपयोषितम् । शिष्यभार्यी गुरोर्भार्यी गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ इति च॥ १२॥

अवकर इत्येके ॥ १३ ॥

एके मन्यन्ते सख्यादिगमनेऽवकरो दोषः । अत्र पायश्चित्तमण्यवकीणिंदरतं न गुरुतत्यवरतमिति । यान्यतानि सख्यादिगमनेऽनुक्रान्तानि पायश्चित्तानि तेषु मरणान्तिकानि सप्रत्ययानुबन्धात्यन्ताभ्यासविषयाणि । यानि पुनरत्यन्तल्ञघूनि तानि स्वभार्याबुद्ध्या पवृतस्य मध्ये ज्ञात्वा रेतःसेकादवाङ्गिवृत्ताविषयाणि । मध्ये मध्यानि कल्प्यानि । ' न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेव्ववान्थितम् । । इति मानवं तु मरणान्तिकयोग्यमहापातका।दिव्यतिरिक्तविषयम् ॥ ३६॥

अत्र पायश्वित्तमकुर्वतीनां स्त्रीणां दण्डमाह--श्वभिराद्येद्राजा निहीनवर्णगयने स्त्रियं प्रकाशम् ॥ १४ ॥

निहीनवर्णेन सह या मैथुनमाचरित तां पकार्शं सर्वेषामेव पश्यतां पर्वः तस्थानगतो राजा श्वभिरादयेरख।दयेत् । अत्र मनुः--

भर्तारं लङ्क्षयेद्या तु जातिस्त्री गुणगार्विता । तां श्वभिः खाद्येदाजा संस्थाने बहुभिः स्थितः ॥ इति ।

वसिष्टस्तु जातिविशेषेण विशेषमाह- शूद्रश्चेद्ब्राह्मणीमिश्रगच्छेनुणैर्वेष्टियित्वा शूद्रमश्ची प्रास्य ब्राह्मण्याः शिरिस वपनं कारियत्वा सार्पेषाऽभ्यज्य नश्चां खरमः रोप्य महापथमनुसंन्राजयेत्पता भवतीति विज्ञायते । वैश्यश्चेद्ब्राह्मणीमिश्रगच्छे छोहितद्भैवेष्टियित्वा वैश्यमश्ची प्रास्थेत् । ब्राम्हण्याः शिरिस वपनं कारियत्व सार्पेषाऽभ्यज्य नश्चां खरमारोप्य महापथमनुसंवाजयेत्पूता भवतीति विज्ञायते । राजन्यश्चेद्ब्राह्मणीमिश्रगच्छेच्छरपत्रैवेष्टियत्वा राजन्यमश्चो प्रास्येत् । ब्राह्मण्याः शिरासे वपनं कारियत्वा सार्पेषाऽभ्यज्य नश्चां खरमारोप्य महापथमनुसंन्राजयत्पूता भवतीति विज्ञायते । एवं वैश्यो राजन्यायां शूद्रश्च राजन्यविश्ययोरिति । अनुछोमेषु प्रतिछोमं गच्छत्सु न्याध्र आह--

वर्णानामनुलोमानां परस्परसमामभे । ब्युत्क्रमेण ततो राजा खादयेद्वानरैः स्त्रियम् ॥ ब्रागालैबुद्धिपूर्वं चेत्पुरुषो वधमहीति । अथमेवानुलोमानां स्वजातिब्युत्क्रमोष्विति ॥ इति ॥ १४ ॥ पुमांसं धातयेत् ॥ १५ ॥

अनन्तरोक्ते विषये गन्ता पुमानराज्ञा घातयितव्यः । वधमकारश्चानन्तरमेव वसिष्ठवचनेन दर्शितः ॥ १५ ॥

यथोक्तं वा॥ १६॥

डिङ्गोन्दार इत्यादि यथोक्तं वा दण्डपणयनं कर्तव्यम् । समत्ययामत्यया-भ्यासानभ्यासापेक्षोऽयं विकल्पः ॥ १६ ॥

गर्दभेनावकीणीं निर्ऋतिं चतुष्पथे यजेत् ॥ १७ ॥ अवकीणीं भवेद्गवा बसचारी तु योषितम् । इति याज्ञवल्क्यः । स चतुष्पथे गर्दभेन पशुना निर्ऋतिं यजेत् । अत्र मानवो विशेषः— अवकीणीं तु काणेन गर्दभेन चतुःपथे । पाक्यज्ञविधानेन यजेत निर्ऋतिं दिशि ॥ इति ।

4

विसष्ठस्तु—ब्रह्मचारी चेत्स्त्रियमुपेयादरण्ये चतुष्पथे लौकिकेऽश्लो रक्षोदैवतं गर्दभं पशुमालभेत, नर्कतं वा चरुं निविषेत्तस्य जुहुयात्कामाय स्वाहा, काम कामाय स्वाहा, निर्कृत्ये स्वाहा, रक्षोदेवेताम्यः स्वाहा । इति ॥१७॥

तस्याजिनमूर्ध्ववालं षरिधाय लोहितपत्रः

सप्त गृहान्मेक्षं चरेत्कर्माऽऽचक्षाणः॥१८॥

एवं गर्दभेनेष्ट्वा तस्यैव गर्दभस्याजिनमूर्व्यवालं परिधाय लोहितपातः पाकेन लोहितं मृन्मयं पात्रं हस्ते गृहीत्वा कर्माऽऽचक्षाणोऽवकीिंगे भिक्षां देहिति ब्रुवाणः सप्त गृहान्मैकं चरेत् । सप्तसु गृहेषु यावल्रब्धं तावदेवादानम् । अलाभ उपवासः ॥ १८ ॥

संवत्सरेण ड्राध्येत् ॥ १९॥

संवत्सरमेतद्बरतं चरेच्छुद्धा भवति । अत्र मनुः—

तेम्यो लब्धेन मैक्षेण वर्तयनैककालिकम् । उपस्पृशंस्त्रिषवणमब्देनैकेन शुध्यात ॥ इति ।

इदं च वार्षिकं श्रोत्रियस्य विषस्य वैश्यपत्न्यां दृष्टव्यम्। आहतुः राङ्ख-छि स्वितो गुप्तायां वैश्यायामवकीर्णः संवत्सरं त्रिषवणमनुतिष्ठेत्क्षत्त्रियायां द्वे वर्षे ब्राह्मण्यां त्रीणि वर्षाणीति । गुप्पायां चेच्छ्रोत्रियपत्नीत्वादिगुणशास्त्रिन्याम् । अङ्गिरा —

अवकीणिनिमित्तं तु ब्रह्महत्यान्रतं चरेत्।

चीरवासास्तु षण्यासांस्तथा मुच्येत किल्विषात् ॥ इति ।

तद्कामतो गौतमीयैक(यं काम विषयम् । पुनः शङ्खालिखितौ स्वैरिण्यां वृषल्यामवकीर्णः सचैलं स्नात उद्कुम्मं द्याद्ब्राह्मणाय । वैशायां चतुर्थकान् लाहारो ब्राह्मणान्मोजयेद्यवसभारं च गोम्यो द्यात् । क्षात्त्रयायां त्रिरात्रमुपोषितो घृत । त्रं व्यात् । ब्राह्मण्यां पड्रात्रमुपोषितो गां द्यात् । गोंव्ववकीर्णः पाजापत्य चरेत् । षण्ढायामवकीर्णः पलालभारं सीसमाषकं च द्यादिति । इदं चावकीर्ण- प्रायश्चित्तं सर्वेषामेव त्रेविणिकब्रह्मचारिणां समानम् । तथा च शाण्डिल्यः—

(3×)

अवकीणी दिजो राजा वैश्यश्वापि खरेण । इह्वा मैक्षाश्चनो नित्यं शुध्यत्यब्दात्समाहितः । इति ॥१९॥ रतः स्कन्दने अये रोगे स्वप्नेऽझीन्धनभैक्षचरणानि सप्तरात्रमकु (त्रं कृ)त्वाऽऽज्यहोमः समिधे। वा रेतस्याभ्याम् ॥ २०॥

भये रोगे स्वप्ने वा यदि बह्मचारिणो रेतः स्कन्देनतो रेतस्याभ्यां मन्त्राभ्यामाज्यहोनः कर्तव्यः । सिमधो वा । होम इत्युपसपत्तमपेक्ष्यते । एतत्तु भये रोग इत्यादि बह्मचारिक्यतिरिक्तस्यापि ! तथाऽश्रीन्धनं सिमिद्धानं भैक्षचरणं च सप्तरात्रमक्च (त्रं क्च) त्या पूर्ववद्धोमः । रेतस्ये ऋचौं "पुनर्मामोत्विन्द्रियम् " इति । "पुनर्मनः पुनरात्मा म आगात् " इत्येके । आश्रस्तायनेन तु "पुनर्मामेतिवान्द्रियम् " इति । " इमे येऽधिष्ठयासोऽसये " इति ।

भये रोगे तथा स्वमे सिक्तवा शुक्रमकामतः । आदित्यमर्चियत्वा तु पुनर्मामित्यृचं जपेत् ॥ इति । पाजापत्यं सक्तरसेकविषयम् । गौतमीयमभासाविषयम् । हारीतः यः कुर्यादुपकुर्वाणः कोमतोऽकामतोऽपि वा । तदेव द्विगुणं कुर्याद्वसचारी तु नैष्ठिकः ॥ इति ।

अत्र वसिष्ठ.-एतदेव रेतसः पयत्नोत्सर्गे दिवा स्वमे च व्रतान्तरेषु चैव-मिति । गर्दमं पशुमालभेत नैर्फतं वा चरुं निर्वेषेदिति पक्रतम् ।

वानप्रस्थां यतिश्चेव खण्डने साति कामतः ।

पराकत्रयसंयुक्तमवकि र्णिव्रतं चरेत् ॥ इति शाण्डिल्यः ।

पृति मेथुनमासेव्य यत्नोत्सर्गे च रेतसः ।

बस्नचारी यथाभ्यासं स्नात्वाऽथ हिनवा यजेत् ॥

गुंसि मेथुनमासाद्य वानप्रस्था यातिस्तथा ।

ऋच्छं चान्द्रायणं चैव कृत्वा शुध्यति किल्विनात् ॥इति । कण्वः।

गूर्यस्य त्रीन्तमस्कारान्स्वमे सिक्तवा गृही चरेत् ।

पतिश्चेव वनस्थश्च त्रिः कुर्यादघमर्षणम् ॥ इति काश्यपः ।

भथुनं तु समासाद्य पुंसि योषिति वा पुनः ।

गोयानेऽप्सु दिवा चैव स्वाप च स्नानमाचरेत् ॥ इति मानवम् ।

[३तृतीयपश्चे-

गृहस्थस्य-

ऋतौ तु गर्भशिङ्कित्वात्स्नानं मैथानिनः स्मृतम् । अनृतौ तु यदा गच्छेच्छोचं मूत्रपुरिषवत् ॥ इत्यङ्गिराः । वृद्धवसिष्ठः यस्तु पाणिगृहीतायामास्ये कुर्वीत मैथुनम् । तस्य रेतिस तं मासं पितरस्तस्य शेरते ॥ इति ॥ २० ॥ सूर्याभ्युदितो ब्रह्मचारी तिष्ठेदहरमु**झानोऽभ्यस्**त मितश्व रात्रिं जपन्सावित्रीम् ॥ २१ ॥

यस्तु सूर्य उदयति स्वापिति स सूर्याभ्युदितो ब्रह्मचारी सर्वमहरभुङ्मान-स्तिष्ठेत् ' अभ्यस्तिमितश्च रार्वि सर्वामासीत । तिष्ठेदहिन रात्रावासीतेति कृच्छ्रे दर्शनात् । जपन्सावित्रीमित्युभयत्र समानम् । ब्रह्मचारिय्रहणाद्गृहस्थादीनामन्य-त्पायश्चित्तम् । ' आतमितः पाणमायच्छेदिरवेके १ इत्यापस्तम्बीयं गृहस्थस्य । आह वसिष्ठ:-

> वनस्थश्च यतिश्चैव सूर्येणाम्युदितो यदि । ब्रह्मकूर्चाशिनौ भूत्वा जभेतां दुर्पदां त्वहः ॥ इति । अभ्यस्तामितयोरपीद्मेव । आह प्रजापति: -पालाञं पद्मपत्रं वा ताम्नं वाऽथ हिरणमयम् । गृहीत्वा साद्यित्वा च ततः कूर्चं समारभेत्। गायत्र्याऽऽदाय गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् । आप्यायस्वाति च क्षीरं दिधकान्णेति वै दाधि ॥ बुक्तमसि ज्योतिरसीत्याज्यं देवस्य त्वो कुद्योदकम् । चतुर्दशीमुपोष्याय पौर्णमास्यां समाचरेत्॥ गोमयाद्द्यिगुणं मूत्रं सर्पिर्देद्याचतुर्गुणम् । क्षीरमष्टगुणं देयं दिध पञ्चगुणं तथा॥ स्थापितवाऽथ दर्भेषु पालाशैः पत्रकैरथ । तत्समुद्धृत्य होतव्यं द्वताभ्यो यथाक्रमम् ॥ अग्ने चैव सोमाय सावित्या चैव मन्त्रत: । मणवेन तथा हुत्वा स्विष्टक्रत्मणवेन तु॥

एतद्ब्रह्मक्टतं कूर्चं पिवतं च तथव च ।

एवं हुत्वा ततः शेषं पापं ध्यात्वा समाहितः ॥

आलोडच प्रणवेनैव निर्मध्य प्रणवेन तु ।

उद्धृत्य प्रणवेनैव पिवेच प्रणवेन तु ॥

एतद्ब्रह्मकृतं कूर्चं मासि मासि चरेद्द्विजः ।

सर्वपापविशुद्धात्मा स्वर्गलोकं स गच्छाति ॥

यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे ।तिष्ठति देहिनाम् ।

बह्मकूचों दहेत्सर्वं प्रदीप्ताग्नारिवेन्धनम् ॥ इति ।

बुद्धिपूर्वेऽबुद्धिपूर्वे साधारणमिदम् । तथा च मनुः—

तं चेदम्युदियात्सूर्यः शयानं कामकारतः ।

निम्लोचेद्वाऽप्यविज्ञानाज्जपन्नुपवसोदिनम् ॥ इति ।

दिनामित्युपछक्षणं निम्छोचने रात्रिमुपवसोदीते । अभयरोगस्थ इति जावाछिवचनाद्भये रोगे च पायश्चित्तं न भवति ॥ २१ ॥

अञ्चाचिं दृष्ट्वाऽऽादित्यमक्षित प्राणायामं कृत्वा ॥ २२ ॥

अशुचिश्वण्डालादिः । तं दृष्वा पाणायाममेकं कृत्वा सूर्यमीक्षेत । जपा-दिनियमकाल इदं ब्रह्मचारिणः ।

> आचम्य प्रयतो नित्यं जपेदशुचिदर्शने । सौर्यान्मन्त्रान्यथोत्साहं पावमानीश्व शक्तितः ॥

इति मानवं नैष्ठिकादीनाम् । अशुनिदर्शने द्विजः पणवं जपेदिति जाबा-छिगृह्यवचनं गृहस्थविषयम् । अशुनिदर्शन आदित्यदर्शनं ब्राह्मणदर्शनं गवाम-भेर्वेत्यौश्चनसं नियमकालादन्यत्र । जावालिगृसे द्विजग्रहणाच्छ्दस्य न विधिनं प्रतिषेधः ॥ २२ ॥

अभे।ज्यभोजनेऽभेध्यप्राहाने वा निष्पुरीषीभावः॥ २३॥

नित्यमभोज्यं केशकीटावपन्नित्यारभ्याभोज्यान्युक्तानि । तानि च बहु-प्रकाराणि । जातिदुष्टानि छशुनादीनि । काछदुष्टानि पर्युषितादीनि । पारिष्रहदु-ष्टान्युत्मृष्टादीनामन्नानि । संसर्गदुष्टानि केशकीटाद्युपहतानि । कियादुष्टान्याचम-नोत्थानब्यपेतादी।नि । तेषामभोज्यानां भोजने च । मेध्यं पवित्रम् । अमेध्यमप-

4

gr.

रिशुदं स्थानपात्रपाकस्पर्शपदात्रादिना । तेषायमध्यानां पाशने च निष्पुरीषिभाव कार्यः । यथा निष्पुरीषमुद्रं भवति तथा कार्यम् ॥ २३॥ तत्कथम् –

त्रिरात्रावर[भ] भाजनम् ॥ २४ ॥

तिस्रो रात्रीर्न किंचिद्भुञ्जीत । न किंचित्वाद्येत । न किंचित्वित् । एवं निष्पुरीषीभावोऽवाष्यते । अवरग्रहणाच्चत्रात्रादेरापि भावः(लाभः) । परमेण सप्तरात्रम् । तथा चाऽऽपस्तम्बः--अभोज्यं भुक्त्वा नैष्युरीष्यं तत्तप्तरात्र गावाष्यत इति ॥ २४ ॥

सप्तरात्रं वा स्वयंशीर्णान्युपभुआनः फलान्यनातिकामन्

॥ २५ ॥

शुष्पतीति शेषः । अथवा नोपवसेतिकतु स्वयंशीणीनि स्वयंपतितानि फलानि भुज्जानोऽनतिकामन्त्रस्वादुफलोपलम्भे तद्विकमेण स्वयदुफलान्तरमहणार्थ-मगच्छन्सप्तरात्रमेवं कुर्वन्शुष्पति ॥ २५ ॥

प्राक्पञ्चनखेभ्यरछर्दनं घृतप्राहानं च ॥ २६ ॥

तत्रैवाभोज्यपकरणे पश्चनखाश्च शल्यकेत्यादिभिरष्टाभिः सूत्रैर्यं न्यभोज्या -न्युक्तानि तेभ्यः पाग्यान्यभोज्यानि नित्यमभोज्यमित्यादिभिरेकोनिर्विशतिस्त्रैरुः कानि तेषु भुकेषु च्छर्द्यित्वा घृतं पाश्य विशुध्यति । एवं च पूर्वकं पायश्चित द्वयं स्वभावदृष्टेषु पश्चनखादिष्वेवावतिष्ठते । अत्र विष्णुः मलानां मज्जानामन्यत -रस्य पाशने चान्द्रायणं कुर्याल्ञशुनपलाण्डुकगृञ्जनतज्जविड्वराह्यामकृक्कुटनरमां-सभक्षणे चै सर्वेष्वेतेषु द्विजातीनां पायश्चित्तं पुनः संस्कारः।

बृहस्पतिः — अलेहानामपेयानामभक्ष्याणां च भक्षणे । रेतोमूत्रपुरीषाणां शुद्धिश्चानदायणं समृतम् ॥

अङ्गिराः -अछेद्यानामधेयानाममध्याणां च भक्षणे ।

रेतोमूत्रपुरीषागामृषिक्ठच्छ्रो विशेष्वनम् ॥ पद्मोदुभ्वरविल्वानां कृशपर्भपछाशयोः । एतेषामुर्कं पीत्वा सक्षेत्रेव विशुध्यति ॥ ·B

काश्यप: - छत्रुनपलाण्डुगृङ्गनकुक्कुटभक्षणे मेदः त्रुक्तपानेऽयाज्ययाजनेऽमो व्यमोजनेऽमक्ष्यमक्षणेऽगम्यागमेन चैवं प्रायिधत्तं ब्राह्मणेश्या निवेद्य प्रात्रोपो पिनत्रधाणिन्ते पोच्यामुद्दिच्यां दिशि गत्वा यत्र ब्राम्यपशूनां शब्दो न श्रूयते तिस्प न्देशेऽग्निं पञ्चाल्य ब्रह्मासनमास्तीर्य तत्प्रणीतेन विधिना पुनःसंस्कारमहीति । सुमन्तु: - छत्रुनपलाण्डुगृङ्गनभक्षणे वीरश्राद्धे सूतिकामोज्याजमधुनांसमूत्ररेतोमेच्या भक्ष्यमक्षणे सावित्र्यष्टसहस्रेण पूर्टिन संपातानवनयेत् । एतान्येवाऽज्तुरस्य भिष विक्रयायामप्रतिषिद्धानि भवन्ति । यानि चान्यान्येवंप्रकाराणि तष्वप्यदोषः ।

पलाण्डुं लगुनं चैव गृञ्जनं कवकं तथा । चत्वार्यज्ञानतो जम्ध्वा तप्तकच्छ्रं चरेद्द्विजः ॥

() मनुस्तु-छत्राकं विइवराहं च छशुनं ग्रामकुक्कुटम् । पलाण्डुं गृद्धनं चैव मत्या भुक्त्वा भवेद्द्विजः ॥ अमत्यैतानि षड् जम्ध्वा क्रच्छ्रं सांतपनं चरेत् । यतिचान्द्रायणं वाजपि शेषेषूपवसेद्हः ॥ संवत्सरस्यैकमपि चरेत्कृच्छ्रं द्विजोत्तमः । अज्ञातभुकशुद्ध्यर्थं ज्ञातस्य तु विशेषतः

शातातपः-लगुनपलाण्डुगृञ्जनकुसुम्भशरकवकामेध्यभक्षणे तप्तक्रच्छः । विष्णुं:-वृन्ताककवकाश्चेन सांतपनम् । पैठीनासः-लशुनपलाण्डुगृञ्जनभक्षणे प्राजापत्यम् । देवलः-अभस्यभक्षणे कृच्छम् । पैठीनासः-

अभक्ष्यमक्षणे तप्तस्र चेष्ठ्रम् । संवर्तः—

अभोज्यभोजनं कृत्वा ब्रह्मक्षत्त्रविशां गणः ।

गोम्त्रयावकाहारः सप्तरात्रेण शुध्यति ॥ बृहस्पति:-पीत्वा शुक्छकषायाणि भुक्तवा चार्ने विगर्हितम् ।

भवेद्प्रयतो विपः कर्मणः स्याद्धोगतिः ॥

विष्णु:-द्धिवार्जितानि सर्वशुक्छानि चात्र माश्योपवसादिति पक्रतम् ।

शङ्खः-लोहितान्वृक्षनिर्यासान्त्रश्चनप्रभवांस्तथा ॥
भुक्तवा ऋबीसपक्कं च त्रिरात्रं तु वती भवेत् ।

() अयं स्होको ग. पुस्तके नास्ति ।

१ ग. पाच्यां दि। ४ क. ख. घ. पि यतिषू । ३ व्णु:-छत्राकक ।

शङ्खिलावितौ-सर्वासां द्विस्तनीनां क्षीरपाशनेऽजावर्जमेतदेव । अत्र षड्र त्रमभोजनं चान्द्रायणं चेति पळतम् । अनिर्दशाविगोक्षीरपाशने तदहरभोजन सचैलस्तानं च । शातातपः-

> उष्ट्रीक्षीरमविक्षीरमनं च मृतिसूतके । चोरस्यानं नवश्राद्धे भुकत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

पैठिनितिः --अविखरोष्ट्रमानुषदुग्धपाश्चने पुनरूपनयनं पाजापत्यं च । बोधाः यनः -अवे. पयःपाने स्टच्क्रोऽन्यत्र मन्यात् । गवि त्रिरात्रोपवासः । शङ्खः--

आनिर्देशाया गोः क्षीरमाजं माहिषमेव च । गोश्व क्षीरं विवत्सायाः स्यान्दिन्याश्च तथा पयः ॥ संधिन्यमेध्यमक्षायाः पीत्वा पक्षत्रतं चरेत् । क्षीराणि यान्यपेयानि हिद्दकाराशने वुधः ॥ सप्तरात्रवतं कुर्याद्यदेवत्परिकीर्तितम् ।

सुमन्तुः-एक शकोष्ट्रस्यन्दिन्यविस्त्रीक्षीरपाशन गोमहिष्यजानां चानिर्देशा हानां क्षीरपाशने त्रिरात्रं यावकिस्त्रवणं च । विष्णुः-गोजाविमहिषीवर्जं सर्वे त्री प्यांसि च तान्यप्यानिर्देशाहानि स्यन्दिनीसंधिनीविवत्साक्षीरं चामेध्यभुजश्च क्षीरं पाश्योपवसेदिति पक्टतम् । हारीतः-अनुकानां सत्त्वानां प्रक्षणेऽतिकृच्छ्रो ग्राम्याणां चान्द्रायणम् । यमः-

वराहैकशकानां च काककुक्कुटयोस्तथा । कव्यादानां च सर्वेषामभक्ष्या य च कीर्तिताः॥ मांसमूत्रपुरीषाणि पाश्य गोमांसमेव च । धगोमायुकपिनां च तप्तकुर्वेष्ठं विशोधनम् ॥ उपोष्य द्वादशाहं वा कूष्मण्डेर्जुहुयाद्घृतम् ।

वसिष्ठ:-धकुक्कुटयाम्यसूकरकाकगृधभासवायसपारावतमानुषकाकोलूका-नां मांसादने सप्तरात्रमुपवासो निष्पुरीषीभावो घृतपाशनं पुनः संस्कारश्च कार्यः।

विडालकाकास्वृच्छिष्टं जग्ध्या च नकुलस्य च । केशकीटावपनं च पिवेद्ब्रससुवर्चलाम् ॥ केशकीटावपनं च स्नाभिः खादंस्तथैव च । श्वीदक्याभ्यां च संस्पृष्टं पश्चगव्येन शुध्यति ॥

१ ग्रवेंषां भक्ष्या य च भकीर्तिताः।

यम:-माक्षिकं फाणितं शाकं गोरसं उवगं घृतम् । एतानि हस्तद्त्तानि भुक्त्वा सांतपनं चरेत् ॥ शङ्ख:-एकपङ्त्युपविष्टानां वित्रमं यः प्रयच्छति । यश्चैवाश्नात्ययं सर्वः कुर्याद्ब्रसहाण वतम् ॥ यमः ब्राह्मणक्षत्त्रयाविशां शूदाणां सहभोजनम् । पाजापत्यं तप्तरुच्छ्रपतिरुच्छ्रं तथैव च ॥ चान्द्रायणिनित मोकं मायश्चित्तं क्रमेण तु । शातातपः-योऽगृहीत्वा विवाहाग्निं गृहस्थ इति पन्यते ॥ अनं तस्य न भोकव्यं वृथापाको हि स स्मृतः । वृथापाकस्य भुक्तवाऽनं पायश्चित्तं चरेद्द्विजः॥ पाणायामं त्रिरभ्यस्य वृतं पाश्य विशुध्यति । आङ्गिराः-ब्रह्मक्षत्त्रविद्यां भुक्त्वा न दोषोऽस्त्याभिहीतिणाम् ॥ स्तके शाव आशौचे अस्थिसंचयनात्परम् । चाण्डालः थपचः क्षता सुतो वैदेहकस्तथा ॥ मागधायोगवा चैव सप्ते उन्त्यावसायिनः। अन्त्यावसायिनामन्त्रमश्रोयाद्यस्तु कामतः ॥ स तु चान्द्रायणं कुर्यात्तप्तरुच्छ्रमथापि वा । यमः-ब्राह्मणाचं ददच्छूदः शूदाचं ब्राह्मणो ददत् ॥

आकोशानृतहिंसासु त्रिरात्रं परमं तपः ॥ २७॥

उभावेतावभाज्यानौ भुक्तवा चादायणं चरेत् ॥ २६ ॥

महापातकोपपातकयुक्तादन्यत्राऽऽक्तोद्यो सताऽसता वा दोषेणातिवादे सा ध्यादिवषयादन्यत्रानृते तत्रोक्तत्वात् । पाणिभ्योऽन्यत्र हिंसायाम् । पाणिषूक-वात् । एतेषु निमित्तेषु परमं तपः परमेण तिरात्रमनशनं ब्रह्मचर्यं कर्तेव्यम् । परमग्रहणादेकरात्रादेरपि लाभः । तत्र ब्राह्मण आक्रोद्यो तिरात्रं, क्षत्त्रिये द्विरात्रं वैश्य एकरात्रं, त्राद्रेऽहरिति व्यवरथा । अनृतेऽप्येवम् । फलाफलाद्येपक्षयां ब्राह्मणादिस्वामिकेषु वृक्षादिषु हिंसा.यामप्येवम् । अत्र प्रजापतिः - अनृते सोमपः कुर्यात्तिरात्रं परमं तपः । पूर्णाहुतिं वा जुहुयात्सप्त ते अम्न इत्यूचा ॥ इति । अनृतोको छीवने च दन्तस्पर्शन एव च । पतितानां च संभाषे दक्षिण श्रवणं स्पृशेत् ॥ इति ।

इदं परिहासादिनिमित्तानृतविषयम् । हारीतः --

पत्याश्रुत्यानृतं ब्रूयान्मिथ्या सत्यमथापि वा । स तप्तरुच्छ्रसाहितं चरेच्चान्द्रायणवतम् ॥ पजापातिः—मांसं अक्त्याः वसचारी पुनः संस्कारमहीति ।

> अभ्यास ऐन्दवं चैव नैष्ठिको द्विगुंणं चरेत् ॥ वनस्थाक्षिगुणं कुर्याद्यतिः कुर्याचतुर्गुणम् । मांसाञ्जेऽनृतोको च शवानिर्हरणे तथा ॥ इति ॥ २७॥

आकोशे विशेष:—

सत्यवाक्ये दारुणीयानवीभिहींमः ॥ दैरद्॥

आकोशे सत्यवाक्ये साति वारुणीिमर्मानवीिभश्चाऽऽज्यहोमः कर्तव्यः विरात्रं परमित्येव । " यिंक्चेदम् " " इमं मे वरुण " " तत्त्वा यामि " " अवते हेड " इति वारुण्यः । अभिरुक्ये पुरोहित इत्यारम्याध्यायपरिस-माप्तेमीनव्य ऋच एकोनषिधर्मनुना दृशः । तास्वन्त्याश्चतस्रो मक्षू देववत इत्याद्याद्यातेनिरीयके सौमारौद्याभिष्टी धाय्यत्वेन निनियुक्ताः । असावादित्य इत्यस्मिन्ननुवाके मानवीऋची धाय्यं कुर्यादिति । सूत्रकारोऽज्याह —मानवीऋची धाय्यं मक्षू देववत इत्येतासां द्वे इति । तन्नान्याभिराभिश्चतम्भिहीम इत्येके । अन्ये तु ऋग्वेदपाठिताभिः सर्वाभिर्झांग्भारिति ॥ २८ ॥

विवाहमैथुननर्मार्तसंयोगेष्यदोषमेकेऽनृतम् ॥ २९॥॥ ॥ विवाहकाले कन्यावरयोरसत्स्वापि गुणेषु कथितेष्विदं ते दास्यामीति मितिश्रुत्यापदाने च न दोषः । तथा मैथुनसंयोग इदं ते दास्यामीत्युक्त्वा मैथुने क्लते तस्यादानेऽपि न दोषः । नर्भ परिहासस्तत्संयोगेऽनृतवचने न दोषः । तद्यथा मोकुकामं गृहमागतं श्यालादिकं पत्युच्यते—

एहि मन्य ओद्नं मोक्ष्यसे मुक्तः सोऽतिथिभिरित्येवंपाय म । आर्तसंयोग आर्तस्य दुःखोपश्चमायानृतवचने न दोषः । तनैतेषु निमित्तेष्वनृतवचनेषु न प्रायश्चित्तामिति ॥ २९ ॥

न तु खलु गुर्वर्थेषु ॥ ६० ॥ गुरुपयोजनेषु विवाहादिष्वप्यनृतं न वक्तव्यम् ॥ ३० ॥ कस्माद्यतः

> स्टन पुरुषानितश्च प्रतश्च हन्ति अनसाऽपि गुरोन्तं वद्त्रल्पेव्वप्यर्थेषु ॥ ३१ ॥

इत इत्यात्मानं निर्दिगति । आत्मानमारभ्य सप्त पुरुवानपुत्रपौत्रादीनपरतश्च सप्त पुरुवानिपृपितामहादीन्हन्ति पीडयति पापेन योजयतीति । मनसाऽपि गुरोरनृतं चिन्तयन्त्रलेष्वपि प्रयोजनेषु किमङ्ग महत्सु वाचा वद्गिति ॥ ३१ ॥

अन्त्यावसायिनीगमने कृच्छ्राब्दः ॥ ३२ ॥ अन्त्यावसायिनीनां गमने मैथुनाचरणे क्रच्छ्राब्दः पायिनं संवत्सरं पाजापत्यविधिनाऽवस्थानम् । बुद्धिपूर्वं इदम् ॥ ३२ ॥

अमत्या द्वाद्शरात्रः ॥ ३३ ॥

कृच्छ्रे प्रकृते द्वादशरात्रग्रहणं पराकोपसंग्रहणार्थम् । तथा च -अत्यजानां तु गमने भोजने च प्रमापणे । पराकेण विशुद्धः स्याद्भगवानिङ्गरा बेवीत् ॥ इति ।

इदमपि रेत:सेकात्पागेबोपरतस्य । ऊर्ध्वं तु वासिष्ठम्-द्वाद्शरात्रमन्भक्षो द्वादशरात्रमुपवसेदश्वमेधावभृथं वा गच्छेत् । एतेन चाण्डालीव्यवायो व्याख्यात इति ॥ ३३ ॥

उद्क्यागमने त्रिरात्र[श्विरात्रः] ॥ ३४ ॥

उदक्यागमने साति ब्रह्मचर्यानशादिना पायिश्वत्तेन विरावो गमयितव्यः। बुद्धिपूर्वे सक्टदमन इदम् । अभ्यासे मानवम्—

अमानुषीषु गोवर्जमुद्दक्यायामयोनिषु । रेतः सिक्रमा जले चैव कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ इति । अबुद्धिपूर्वे सरुद्रमने शातातपोकम् । अनुदक्मूत्रपुरिषकरणे च काक स्पर्शेने सचैलस्नानं महाव्याहातिभिर्होमध्य । रजस्त्रलागमने चैवमिति । अभ्यासे वासिष्ठम्—रजस्वलागमने शुक्लमृषभं दद्यात्क्रज्णीपिङ्गमिति । [द्विरुक्तिरुक्तार्था] ॥ ३४॥

इति श्रीगौतमीयवृत्तो हरदत्ताविराचितायां मिताक्षरायां तृतीयप्रश्ले पश्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः।

रहस्यं पायश्चित्तं वक्ष्यते-

रहर्यं प्रायाश्चित्तमविष्यातदोषस्य ॥ १ ॥

यस्य पापस्य दोषः परैर्न विख्यातस्तस्य नायश्चित्तं रहस्यं भवति । यथा परैर्ने ज्ञायते तथा कर्तव्यामिति यावत् । यैर्विना यत्पातकं कर्तुं न शक्यते तद्वचितिरक्तेर्ज्ञातत्वं निषिष्यते । तेन पारदार्ये पतिनर्ज्ञवासे च तर्ज्ञातत्वेऽपि वक्ष्यमाणं भवत्येव ॥ १ ॥

चंतुर्ऋचं तरत्समन्दीत्यप्स जपेदप्रतियासं प्रतिजिघृक्षन्प्रतिगृह्य वा ॥ २ ॥

जातिदृष्टस्य वा कर्मदृष्टस्य वा पुरुषस्य स्वभूतं स्वयंदृष्टं च रूष्णाजिना द्यमित्रयासम् । गत्यभावात्पितिजिष्टृक्षन्पतिमहीतुमिच्छंस्तरत्समन्दी धावतीति चतुर्क्तं स्कमप्सु जपेत् । नाभिद्घ्ने जले स्थित इत्येके । निमग्न इत्यन्ये । प्रतिगृह्य वा प्रतिमहात्पश्चाद्दा जपेत् । एवं तुल्यविद्वकल्पः । अन्ये प्रतिमहात्पू वैमेवापितिमाह्मामिति ज्ञाते पाग्जपः । पश्चाण्ज्ञाते पश्चाण्जप इति ।

अत्र मनु:-

पतिगृह्यापित्याद्यं भुक्तवा चान्नं विगिहितम्। जपंस्तरत्समन्दीयं मुच्यते मानवस्त्र्यहात् ॥ इति । प्रजापितः—जपादिपरणा कुर्यात्व्यातदोषो द्विजौत्तमः । रहः छतस्य दोषस्य तत्तदेवाम्यसेत्तथा ॥ इति । इदमभ्यासिवषयम् ॥ २ ॥ Ø:

अमोज्यं वुसुक्षयाणः पृथिवीयावपेत् ॥ ३ ॥

नित्यमभोज्यं केशकीटावपन्निमत्युक्तम् । यदि गत्य ति तदेव भोकुमिच्छति तदा पृथिवीमावपेनमृदं प्रक्षिपेत्ततो भुद्धीत ॥ ३ ॥

ऋत्वन्तरारमण उदकापस्पर्शनाच्छुद्धिमेके ॥ ४ ॥

ऋतुमध्य आरमण उद्क्यागमन उद्कोपस्पर्शनात्सचे उस्नानाच्छु द्विमाहु-॥के । उद्क्यागमने निरात्र इति प्रकाशिवषयम् । एकेय्रहणं परत्रापि संबध्यते ४ ॥

स्त्रीषु ॥ ५ ॥

एके स्वस्तीपूर कोपस्पर्शनमन्यत्र तिरातं मन्यन्ते । अपर आह-स्त्रीपु रूडवाद्यास्वापि गोवर्जं मैथुन आचरित उदकोपस्पर्शनाच्छुव्हिमेके मन्यन्ते ५४॥

अथ ब्राह्मणवधे रहस्यम्-

पयोनतो वा दशरात्रं घृतेन द्वितीयमद्भिस्तृतीयं दिवादिष्वेकभक्तिको जलाक्लिजवासा लोमानि नखानि त्वचं मांसं शो णितं स्नाय्वस्थि मण्जा-नामिति होषा आत्मनो मुखे मृत्योरास्य जहो-मीत्यन्ततः सर्वेषां प्रायश्चित्तं भ्रत्भहत्यायाः

11 8 11

म्ह्यणहत्या ब्रह्महत्या। तस्याः पायिश्वन्तिम् मुच्यते। आदित एकं दश रात्रं प्रयोवतः क्षिराहारः स्यात् द्वितीयं दशरात्रं घृतेन वर्तयेत्। तृतीयमत्द्विः वाशब्दाव्यविष्यभोजनो वा । शिकतो विकल्पः । एतेषु दिवसेष्वेकभिक्क पयः प्रभृति किमपि पूर्वोक्तं सक्ठदेवोपभुद्धोत । कदा दिवादिषु पातःकालेषु न। सायं न मध्याद्वे । जलक्लिन्नवासा एषु दिवसेष्वाद्वैवासाश्च स्यात्। तथा होमाश्चाष्टी पत्यहमाज्येन कर्त्रव्याः । तत्र मन्त्राः -लोमानि न वानि त्वचं मांस शोणितं स्नाय्वस्थि मज्जानामिति । तेषां सर्वेषामात्मनो मुखे मृत्योरास्ये जुहोमि स्वाहेत्यन्ते प्रयोक्तव्यम् । जुहोतिचोदना स्वाहाकारपदानिति वचनात् । तद्यथा । लोमान्यात्मनो मुखे मृत्योरास्ये जुहोनि स्वाहा, नखान्यात्मनो मुखे मृत्योरास्ये जुहोमि स्वाहेत्येवंपकारा होमाः ॥ ६ ॥

1

अथ भ्रूणहत्याया एवान्यत्पायश्चित्तमुच्यते-

उक्तो नियमः ॥ ७॥

पयोत्रतो वेत्यादिर्वक्ष्यमाणेऽपि वेदितव्यः ॥ ७ ॥ असे त्वं पारयेति महाव्याहृतिभिर्जुहुयात्कूष्माण्डैश्चाऽऽज्यम् ॥ ८ ॥

अमे त्वं पारयेत्यूचा महाव्याहातिभिर्भूराादिभिः कृष्माण्डैर्थदेवा देवहेडन मित्यादिभिश्च क्रमेण सक्टदाज्यं जुहुयात् ॥ ८ ॥

> तद्वत एव व। ब्रह्महत्यासुरापानस्तेयगुरुतल्पेषु प्राणायामैस्तान्तोऽघमर्पणं जपन्सममश्वमेधाव

भृथेनेदं च प्रायश्चित्तम् ॥ ९॥

तद्वत एव वा तेनैव पयावता वेत्यादिना व्रतेनोपेतश्चतुर्षु ब्रह्महत्यादिषु पापेषु पायश्चित्तं कुर्यात् । पाणायामैस्तान्तो म्लानो. याविद्धः पाणायामैस्तान्तो भवति ताविद्धः कुर्याद्घमर्षणम् । अघमर्षणेन ऋषिणा दृष्टमृतं च सत्यं चेत्या-दिनाऽघमर्षणम् । तच्चाश्वमेधावभूश्येन समं तुल्यन् । जगनिति वर्तमानपयोगण पत्यहमेव विश्वदात्रं वतं कुर्यात् । अत्र मनुः—

यथाऽधमेधः ऋतुराट् सर्वपापमणाद्यनः । तथाऽघमर्षणं सूकं सर्वपापमणाद्यनम् ॥ ९ ॥ सावित्रीं वा सक्ष्मकृत्व आवर्तयन्पुनीते हैवाऽऽत्मानम् ॥ १० ॥

तद्वत एवेत्यनुवर्तते । प्राणायामैस्तान्त इति च । सावित्रीं सहस्रक्रत्व आवर्तयाचिति जप्यपात्रं भिद्यते । अन्यत्समानम् । एवं कुर्वचात्मानं पुनीते बस्रहत्यादिभ्यश्चतुभ्यः शोधयति । हेति प्रसिद्धौ । एवेत्यवधारणे । ततश्चा न्येष्विप पापेषु सावित्र्यभ्यासः शुद्धिहेतुः । तथा च वसिष्ठः—

सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् । शुद्धिकामः प्रयुद्धीत सर्वेपापेष्वपि स्थितः ॥ इति । Ø.

व्याघरोऽण्याह-न सावित्रासमं जप्यं न व्याहतिसनं हुतम् । नान्नतायसमं दानं न चाहिंसासमं तपः ॥ इति ॥ १०॥ मायश्चित्तान्तरमाह-

> अन्तर्जले वाऽघमर्पणं त्रिरावर्तयन्सर्वपापेश्यो विमुच्यते (विमुच्यते)॥ ११॥

तद्वत एवोद्कस्यान्तानिमप्तास्त्रंशदात्रमघमपणं त्रिरभ्यस्य सर्वस्मात्पापा ज्ज्ञानकृताद्ज्ञानकृताच मुच्यते । दिरुक्तिश्च व्याख्याता ॥ ११ ॥

> इति श्रीगौतमीयवृत्तौ हरदत्तविरचितायां मिताक्षरायां तृतीयप्रश्ले षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ।

उक्तानि महापातकेषु रहस्यमायाश्चित्तानि । अथोपपातकेषु वक्ष्यन्भथममव-कीर्णिनः पायश्चित्तं वकुं तस्य निन्दाातिशयपदर्शनाय श्रुतिभुदाहराति -

तदाहुः कतिधाऽवकीणी प्राविशतीति ॥ १॥

तदिति वाक्योपन्यासः । कतिधाऽवकीणीं कितिभिः पकारैः किं किं पविदातीि ब्रह्मवादिन आहुः॥ १ ॥

अत्रोत्तरम्-

मरुतः प्राणेनेन्द्रे बलेन बृहरूपातं ब्रह्मवर्चसेनाञ्जिबिवेतरेण सर्वेणेति

॥ २॥

पाणेन पश्चवृत्तिना मरुतो वायून्प्राविश्वाति । इन्द्रं बलेन प्रविश्वाति । वत्तस्वाध्यायसंपद्ब्रह्मवर्चसेन बृहस्पतिः । इतरेण सर्वेण चक्षुरादिनेन्द्रियवर्गेणा -
िष्ठमेव प्रविश्वाति । एवमल्पायुर्निरुत्साहो ब्रह्मवर्चसहीनश्चक्षुरादिहीनश्चावकी गर्धि
भवति । अतश्चारितव्यं प्रायश्चित्तम् ॥ २ ॥

तदानीमाह-

17

सोऽमावास्यायां निश्यक्षिष्ठपसमाधाय प्रायश्चित्राज्याहुतीर्जुहोति ॥ ३ ॥

सोऽवकीण्येमावास्यायां निश्यर्धरात्रे गृद्योक्तेन मार्गेणाार्धे पतिष्ठाण्योपस्य माधायाऽऽज्यभागान्ते पायश्चित्तरूपा आज्याहुतीर्जुहोति ॥ ३ ॥ तत्र मन्त्री—

> कामावकीणींऽस्म्यवकीणोंऽस्मि कामकामाय स्वाहा । कामाभिदुग्धोऽस्म्यभिदुग्धोऽस्मि कामकामाय स्वाहेति समिधमाधायानुपर्युक्ष्य यज्ञवास्तु कृत्वोपोत्थाय समानिञ्जत्वित्येतया त्रिरुपतिष्ठेत ॥ ४ ॥

होमान्त एकां सामिधं तूष्गीमाघायादितेऽन्वमः स्था इत्यादिभिराग्निमनुपर्युं -क्षाति । ततो यज्ञास् करोति । अत्र च्छन्दोगानां गृक्षे स्विष्टकतोऽनन्तरं पठचते—सामिधमाधाय दर्भानाच्ये हविषि च त्रिरवधायाग्रमध्यमूछान्यकं रिहाणा वियन्तु वय इत्यम्युक्ष्याभावनुपहरेद्येः ? (यो) भूतानामधिपती रुद्रैस्तन्तिचरो वृषा पत्रानस्माकं मा हिंसीरेतदस्तु हुतं तव स्वाहेति तद्यज्ञवास्तु सर्वत्र कृपादिति । तदेतद्यज्ञवास्तु क्रत्वोपोत्थायाग्रिसमोपे स्थित्वा समासिञ्चतु इत्येतया च त्रिराग्न-मुपतिष्ठेत ॥ ४ ॥

विरुपस्थानस्यार्थवादः-

त्रय इमे लोका एषां लोकानामभिजित्या अभिकान्त्या इति ॥ ५ ॥

त्रयो हि छोका भूभवः स्वरिति । तेषामिभाजितिभाँगयोग्यतापाद्तम् अभिकान्तिस्तत्रैवाऽऽधि त्येनाविष्ठायावस्थानम् । तद्रथेमेवं कर्तःयामिति संबन्व।। ५ ॥

१ ग, रेद्यः पशूना । २ ग, दस्त इति च।

७सप्तमोऽध्यायः]

ያ

एतदेवैकेषां कर्माधिकृत्य योऽप्रयत इव स्यात्स इत्थं जुहुयादित्थमनुभन्त्रयेतं वरो दक्षिणेति प्रायाश्चित्तमाविशेषात्॥ ६॥

योऽपूतं इव स्यादन्योऽप्यात्मानमपूतिभव मन्यते न केवलमवकीणीं सोऽ-प्येतदेवोक्तं कर्माधिक्रत्येत्थं जुहुयादित्थमनुमन्त्रयेत होममुपस्थानं चवं कुर्यात् । वरो दक्षिणा । गोर्वे वरः । सा स्वयंकर्तृकत्वाद्ब्रह्मणे देयेति श्रवणाविशेषात् । अविशेण सर्वेषामुपपातिकनामिदं प्रायित्वत्तमित्येकेषां मतम् ॥ ६ ॥

अनार्जवपैशुनप्रतिषिद्धाचारानाद्यप्राश्नेषु शूद्रायां च रेतः सिक्त्वाऽयोनौ च दोववति च कर्मण्यपि संधिपूर्वेऽन्लिङ्गामिरप उपस्पृशेद्वारुणीभिरन्येवां पवित्रैः॥ ७॥

अनार्जवं शाठयम् । पैशुनं परदोषसूचनम् । पतिषिद्धाचारो निषिद्धानुष्ठानम् । अनाद्यमभक्ष्यं तस्य पाश्चनम् । एतेषु शूद्धायां रेतः ि दाऽयोनै
चाऽऽस्यादिषु वा रेतः सिक्त्वा, दोषवाति कर्माणि परपिडता रितेयात्मके च
संधिपूर्वे बुद्धिपूर्वे, अपिशब्दाद्युद्धिपूर्वे क्रतेऽिक्छङ्गामरापो हि ष्टा मयोभुव इति
तिसृभिर्हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका इति चत्रमाभः, वारुणीभिर्याद्धिंचदिममं म
वरुण तत्त्वा याम्यव ते हेड इत्येताभिरन्येवा पवित्रेः पवमानः सुवर्जन इत्यादि
भिरप उपस्पृशेत्पूर्वं स्नात्वा पश्चादञ्जिलना मूर्विन मन्त्रेरतेरपः क्षिपेत् । यद्यव्य
नाद्यपाश्चनपि पतिषद्धाचारस्तथाऽपि पृथगुपादानात्तेषु बहुभिर्मार्जनमनाद्यपाश्चन
यथासंभवं दष्टन्यम् ॥ ७॥

प्रतिषिद्धवाद्धानसापचारे व्याहृतयः पश्च सत्यान्ताः

11 6 11

214

पातिषिद्धविषये यो वाङ्मनसयोरपचारः कुत्सिता प्रवृत्तिस्तत्र व्याह्तय-पश्च जप्या भूरादयः सत्यान्ताः पथमेऽध्याय उक्ताः। वाङ्मनसोरिति पाठोऽ स्मभ्यं न राचते । अचतुरेति समासान्तिविधिपसङ्गात् । प्रतिषिद्धग्रहणस्य च दुरन्वयत्वात् ॥ ८ ॥ सर्वास्वपे वाऽऽचामेदहरच माऽऽदित्यश्च ष्नात्विति प्राता रात्रिरेच मा वरुणरुच पुनात्विति सायम् ॥ ९॥

सर्वासु पापाकियास्वनार्जवादिव्वाभ्यां मन्त्राभ्यामपोऽभिमन्त्र्याऽऽचामेदहश्चेति पातः पिबेदात्रिश्चेति सायं पिबेत् .. ५ ॥

> अष्टो वा समिध आदध्याद्देवकृतस्योति हृत्वैव सर्वस्मादेनसी मुच्यते (युच्यते)॥ १०॥

अथवा देवळतस्यत्यादिभिर्म-नैरष्टो सामिध आद्ध्याज्जुहुयात् । हृत्वेव सर्वस्मादेनसो न केवलमनार्जवादिध्यः किंत्वयाज्ययाजनादेरप्येनसो मुच्यते । अस्य हामस्य मुख्यत्वपद्र्शनार्थमेवकारः । हृत्वेवान्यद्रक्तवेति । ततश्च साति संभव इद्मेव ज्यायः । देवळतस्यैनसोऽवयजनमास स्वाहेत्याद्योऽष्टो मन्त्राः (दिरुक्तिरुक्तार्थां)॥ १०॥

इति श्रीगौतभीयवृत्तौ हरदत्तविरचितायां मिताक्षशयां तृतीयप्रश्ने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्ट्रमोऽध्यायः ।

छच्छ्र।तिच्छ्रौ चान्द्रायणभित्युक्तम् । तत्र क्रमेण छच्छ्रादिस्वरूपमाह-

अथातः कृच्छ्रान्व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

अथशब्दोऽधिकारार्थः। अतःशब्दो हेतौ । य एत आख्याता न शक्यन्ते कर्तुमतः स्टब्छान्व्याख्यास्याम इति ॥ १ ॥

हिन्यान्त्रातराञ्चान्भुकत्वा तिस्रो रात्रीनांश्वीयात् ॥ २ ॥
याज्ञयैर्वरकादिव्यातिरिक्तीनिव्यादितान्घृतादिसंयुक्तान्कारस्रवणवाणितान्मातः
राज्ञान् । अश्न(त्य)न्त इत्याज्ञा यासाः । दिवा भोज्यान्यासान्भुक्तवा ।
अथापरं त्र्यहमिति वक्ष्यमाणत्वाद्त्रापि त्र्यहमिति गम्यते । तिस्रो
रात्रीनांश्नीयादिति तिसंगस्त्रवहे रात्र्यज्ञनमितिष्व श्रुत्यनुसारेण स्तरः ।

ø

पुनरयं वक्तव्यः । कथम्-सायं पातर्द्विजातीनामशनं श्रुति वोदितिमिति परिसंख्या -नाद्द्विरेव भोजनं प्राप्तम् । तत्र पातराशान्भुक्त्वेत्युक्ते परिसंख्यानात्सिद्धा रात्रावशननिवृत्तिर्थथोत्तरत्र दिवा भोजननिवृत्तिः॥ २ ॥

अथापरं ज्यहं नक्तं युक्तीत ॥ ३ ॥

एवं दिवा हविष्यभोजनेन ज्यहं नीत्वाऽनन्तरं ज्यहं नक्तेषव भुज्जीत । हविष्यानित्येव ॥ ३ ॥

अथापरं व्यर्ह न कंचन याचेत ॥ ४ ॥

अथ न कभोजनन्यहानन्तरमपरं न्यहं न कंचन बन्धुमपि याचेत । या-च्ञापतिषेधोऽयम् । स्वद्रव्यस्य वाऽयाचितल्रब्धस्याप्रतिषेधः । एवमुके हविष्य-निवमो न पामोति । कालविशेषाश्रवणाद्दिभोंजनं च पामोति । न याचेतेत्य-त्रापि हविष्यानित्येवानुवर्तते । अयाचि । छब्धेऽपि सक्टदेव ।सिद्धम् । कुतः । अथापरामिति वचनस्य पूर्वेण सदृशार्थत्वात् । तत्तु दिश नकं वा यथेच्छम् । अन्ये तु त्र्यहमयाचिव्रत इत्यापस्तम्बीये दर्शनाद्याचितल्ब्धेनैव त्र्यहं वृत्तिन स्वद्रव्येण । नापि याचि । लब्धेनेति वर्णयन्ति । अनुष्टानमप्येव मेव ॥ ४ ॥

अथापरं त्र्यहमुपबसेत् ॥ ५ ॥

स्पष्टम् । एवमयं द्वादशाहसाध्यः कृच्छ्रः । वसिष्ठन प्रकारान्तरमापि द्शितम्-

अहः पातरहर्नकमहरेकमयाचितम् । अइश्रोपवसेदेकमेवं चतुरही परी ॥ अनुग्रहार्थं विपाणां मनुर्धर्भभृतां वरः । बालवृद्धःतुराणां च शिशुक्रच्छ्रमुशाच ह ॥ इति ।

भरद्वाज:-पाजापत्यं चरन्विपो यद्यशको दिने दिने । विपान्पश्चावराञ्बाद्धान्भोजयेत्सम्यगर्चितान् ॥ इति ।

यास्मिन्दिने ध्वाकिस्तत्रैवं, दिनान्तरेषु पूर्ववत् । तत्राप्यवाको ब्राह्मणभो-जनमुपयासदिने राश्चको वा बालगमीज रं ह्ना हविष्यानसम्यम्भुञ्जीत ॥ ५ ॥ अथ कच्छ्रेस्य गुणविधिः—

तिष्ठेदहानि रात्रावासीत क्षिप्रकामः । ६॥

यः कामयेत क्षिमं शुध्येयामिति स तिष्ठनेवाहर्नयेत् । भोजनाद्याविरोधेन रात्रावासीत । स्वापोऽप्यासीनस्यव । वसिष्ठस्तु क्षिप्रकामस्य प्रकारान्तरमाह-

अथ चेत्त्वरते कर्तुं दिवसं मारुताश्चन: । रोत्रो चैव जले तिष्ठेत्पाजापत्येन तत्समम् ॥ सावित्र्यष्टसहस्रं तु जप्यं कृत्वोत्थिते रवी । मुच्यते पातकैः सर्वैर्यदि न म्ह्यणहा भवेत् ॥ ६ ॥

सत्यं वदेत् ॥ ७ ॥

सत्यं यथादृष्टम् । विवाहादिविषयेऽपि सत्यमेव वदेत् ॥ ७ ॥ अनार्येर्न संभाषेत ॥ ८ ॥

दिजातिन्यतिरिक्तैर्छिङ्गस्याविवाक्षितत्वात्तत्त्वीभिरापि न संभाषेत ॥८॥ रौरवयौधाजपे नित्यं प्रयुक्षीत ॥ ९ ॥

रौरवयौधाजपे सामनी । पुनानः सोमधारयेत्यस्यामृत्वि गीते । नित्यं पत्यहं पयुद्धीत गायेत् । अपर आह-नित्यं पुनः पयुद्धीतेति ॥ ९॥

> अनुसवनमुद्कोपरूपर्शनमापो हि हे।ति तिसाभिः षवित्रवतीभिमीर्जयीत हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका इत्यष्टाभिः॥ १०॥

उदकोपस्पर्शनं स्नानम् । तद्नुसवनं तिषु सवनेषु कर्तव्यम् । तद्नन्तरं च मार्जनमापो हि छेत्यादिभिः । पवमानः सुवर्जन इत्यनुवाके या ऋचस्ताः पवि-त्रवत्यः । लिङ्गन्समवायात् । ताभिश्च तैत्तिरीये पश्चमे काण्ढे षष्ठे पश्चे हिरण्यवणिः युचयः पावका इत्याद्या ऋचः पठचन्ते । ता दश भवन्ति । तत्राष्टाभिः । यदि तु शास्तान्तरं क्विद्षावेव पठचन्ते ततस्ता एव श्रासाः ॥ १० ॥

अथोद्कतर्पणम् ॥ ११॥

अथ मार्जनानःतरमुदक्तेन तर्पणं कर्तव्यम् ॥ ११॥

१ क. ख. घ. त्री दिवी ज।

तत्र मन्त्राः-

नमोऽहमाय मोहमाय महमाय धन्वते तापसाय पुनर्वसवे नमः । नमो मौञ्ज्यायोव्याय वस्तवि-न्दायं सार्वविन्दाय नमः । नमः पाराय सुपाराय महापाराय वारयिष्णवे नमः । नमो रुद्राय पशुपतये महते देवाय त्र्यम्बकायैकचरायः धिपतये हराय शर्वायेशानायोग्राय बान्रिणे घृणिन कप-दिने नमः। नम सूर्यायाऽऽदित्याय नमः 🖁 निमो नीलञ्जीवाय शितिकण्ठाय नमः । नमः कृष्णाय पिङ्गलाय नमः । नमो ज्येष्ठाय वृद्धायेन्द्राय हरिकेशायोध्वरेतसे नमः। नमः सत्याय पावकाय पावकवर्णाय कामाय कामरूपिणे नमः । नुमो दीप्ताय दीप्तरूपिण नमः। नमस्तीक्ष्णाय तीक्ष्ण-क्तिपणे नमः । नमः सोभ्याय सुपुरुषाय महापुरु-षाय मध्यमपुरुषायोत्तमपुरुषाय ब्रह्मचारिणे नमः। नमञ्चन्द्रललाटाय कृत्तिवाससे नमः॥ १२॥

नायमेको मन्त्रः । एताश्चाऽऽज्याहृतय इति बहुव वनिर्देशात् । किं वाहिँ। त्रयोदशैते मन्त्राः । नमस्कारादयो नमस्कारान्ताश्च सर्वे । तत्र मथमे चतुष्टर्यन्तानि षड् देवस्य नामानि । द्वितीये चत्वारि । तथा तृतीये । चतुर्थे त्रयोदश । महो देवायोति महादेवपदमेव व्यस्तमुक्तम् । पश्चमादिषु त्रिषु द्वे । अष्टमे षट् । नवमे पश्च । दशमे द्वे । तथैकादशे । दादशे षट् । तयोदशे द्वे । इति षट्पश्चाशहे - वनानानि । एभिर्मन्त्रेस्तर्शणमनुसवनम् ॥ १२ ॥

एतदेवाऽऽदित्योपस्थानम् ॥ १३ ॥

आदित्य उपस्थीयते येन तदादित्योपस्थानम् । एतेन क्रत्स्नेन मन्त्रे-

4

7-15 J

णाऽऽदित्य उपस्थेय इत्युक्तं भवति . एतद्प्यनुसवनं प्रत्यहम् । सक्टदित्यन्ये । पृथग्योगकरणात् । अन्यथाऽथोद्कतपैणमादित्योपस्थानं चत्येकमेव योगमकरिष्यत् ॥ १३ ॥

एता एवाऽऽज्याहुतयः ॥ १४ ॥

ण्ता इति मन्त्रमपि परामृशंति । एतच्छ ब्द्स्याऽऽहुतिसामानाधिकरण्या-त्स्त्रीछिङ्गता । एतेरेव त्रयोदशिभिभैन्त्रैराज्यमपि होतव्यमिरयुक्तं भवति । तत्र " जुहोतिचोदना स्वाहाकारपदाना " इति स्वाहाकारान्तेहोम प्रत्यह सक्टत्कर्तव्यः ॥ १४ ॥

> द्वादशरात्रस्यान्ते चरं श्रपयित्वैताभ्यो देवताभ्यो जुहुयात् ॥ १५ ॥

एवमुक्तेन मकारेण द्वादशरात्रं नीत्वा तदन्ते त्रयोदशेऽहानि गृह्योक्तेन मार्गेण चर्च श्रपयित्वैताभ्यो वक्ष्यमाणाभ्यो द्वताभ्यो जुहुयात् ॥ ५५॥

ता आह-

अक्षये स्वाहा सोथाय स्वाहाऽक्षीपोभाभ्यामिन्द्राः क्षिभ्यामिनद्राय विश्वेभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मणे प्रजाः पत्रयेऽक्षय स्विष्टकृत इति ॥ १६॥

स्विष्टकता सह नवाऽऽहुतयः । द्विः स्वाहाकारपाठोऽनुषङ्गःपकारदर्शनार्थः सर्वे एव स्वाहाकारान्ताः [इत्यर्थः] ॥ १६ ॥

ततो ब्राह्मणतर्पणम् ॥ १७ ॥

ततो होमानन्तरं ब्राह्मणास्तर्भियतव्या भोजनादिभिः । शुचीन्मन्त्रवतः सर्वेक्टत्येषु भोजयोदित्यापस्तम्बः॥ १७॥

एतेनैवातिकृच्छ्रो व्याख्यातः॥ १८॥

स्पष्टम् ॥ १८ ॥ यस्त्वस्य विशेषस्तमाह-

यावत्सकृदाददीत तावदश्नीयात् ॥ १९ ॥ एकेन पाणिना यावत्सकृदादातुं शक्नुयात्तावदेवाश्नीयात् । ह्विष्यं दिवा नक्तमयाचितमुपवास इति विशेषाः स्थिता एव । अत्र मनु:-- एकैकं ग्रासमश्नीयात्त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् । त्र्यहं चोपवसेदन्त्या शित रूच्छः स उच्यते ॥ १९ ॥ अन्मक्षस्तृतीयः स कृच्छातिकुच्छः ॥ २० ॥

294

पूर्वोक्तेष्वेव भोजनकालेषु केवलमुद्कमेव पिवेत्स एष तृतीयः रुच्छाति. रुच्छो नाम वेदितब्यः । अत्रोपवासदिनेष्वाचमनव्यतिरेकेणोदकपानमपि न भवति । त एते त्रयः रुच्छा उक्ताः ॥ २०॥

तेषु -

प्रथमं चारित्वा शुन्तः कर्भण्यो भवति ॥ २१ ॥

र प्रथमं पाजापत्यं चरित्वा शुन्तः 'संध्याहीनोऽशुन्तिर्यमनर्हः सर्वकर्मसु

इत्यादिना विहिताकरणिनिमेत्तेन दोषेण हीनः। पूरः पितिषिद्धाचरणजन्येनाधर्मेण
॥हितः । कर्भण्यः कर्मसु योग्यश्य भवति । कर्मण्य इति वचनाद्मज्ञातद्षेषस्यापि

कच्छानुष्ठान।देवानादिष्टेषु कर्मसु योग्यतेति ज्ञाप्यते ॥ २१ ॥

द्वितीयं चरित्वा यात्किचिदन्यन्महापातकेभ्यः पापं कुरुते तस्मात्त्रमुच्यते॥ २२॥

द्वितियं छच्छ्रातिछच्छ्रं चरित्वा सर्वस्मान्महापातकाद्प्येनसोऽनाभिसांधिछ-तान्मुच्यते ॥ २३ ॥

एवं व्यरतानां फलमुक्तवा समस्तानामाह-

अथैतांस्नीन्कृच्छांश्चरित्वा सर्वेषु वेदंषु स्नातो भवति सर्वेदेंवैज्ञांतो भवति॥ २४॥

य एतांस्नीन्कृच्छ्रानन्यवधानेनानुतिष्ठाते तस्य सर्वान्वेदानधीत्य स्नातस्य यत्करुं तत्तुल्यं फलं भवति । सर्वेषां देवानां लोका जितास्तेन ॥ २४ ॥ अथ विदुषः पशंसा—

[३तृतीयपश्चे-

यश्चैवं वेद (यश्चैवं वेद) ॥ २५ ॥

यश्रीतान्कृच्छ्रान्स्वरूपेणोतिकर्तव्यतया फलेन विजानाति सोअपि सर्वेषु वेदेषु स्नातो भवति । सैंवेर्देवेर्ज्ञातो भवति । एवं ज्ञानं प्रशस्तामित्यर्थः । (द्विर-किरुक्तार्था) ॥ २५ ॥

इति श्रीगौतमीयवृत्तौ हरदत्ताविरचितायां मिताक्षरायां तृतीयप्रश्चेऽ मोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः।

अथातश्चान्द्रायणम् ॥ १ ॥

पूर्ववद्व्यारूपेयम् । चन्द्रमाप्तिनिमत्तमूतं कमं चान्द्रायणम् । तथा चान्ते वस्यति - चन्द्रमत्तः सलोकतःमामोतीति ॥ १ ॥

तस्योक्तो विधिः कृच्छ्रे ॥ २ ॥

तिश्वेदहनीत्यादिको यो विधिः कृच्छ उक्तः स चान्द्रायणस्यापि दृष्टव्यः ॥ २ ॥

यस्तु विशेषः स उच्यते-

वपनं ब्रतं चरेत् ॥ ३॥

ब्रतमिति पायिश्वत्तभाह । ' एतेर्द्विजातयः शोध्या वर्तेराविष्कृतैनतः इत्यादो दर्शनात् । यदि पायिश्वत्तार्थं चान्द्रायणं कियते तदा वपनमपि कर्तव्यम्। अविशेषेअपि पुरुषाणामेय । तदेव स्त्रियाः केशवशनवर्जिमिति बौधायनस्मरणम् । चान्द्रायणे वपनविधानात्कृच्छ्रे पायिश्वनार्थेअपि न भवति । व्रतं चरेदिति वच' नाददृष्टार्थे कर्मण्यतार्थे च चान्द्रायणे न वपनम् ॥ ३ ॥

श्वोभूतां पौर्णभासिमुपवसेत् ॥ ४॥

धः पौर्णमासी भवितेत्यवगम्य पूर्वेद्यश्चतुर्दश्यामुपवसेत् । उपवासो भोजनलंशः

आण्यायस्व सं ते पर्यासि नवो नव इति चैताभिस्तर्पणमाज्यहोमो हाविषश्चानुमन्त्र णमुपस्थानं चन्द्रभसः॥ ५॥

आप्यायस्वेत्यादिभिर्मन्त्रेर । पंणादीनि चत्वारि कर्माणि कर्तव्यानि । वैष-म्याद्यथासंख्यं न भवति । तत्र तर्पणहोमौ पतिमन्त्रं भवतः । अनुमन्त्रणमुपस्थानं च समुच्चयेनै । क्रच्छ्रविध्यातिदेशादौदेण य उदकतर्पणादयः पाप्तास्तेषां च समुच्चय इत्येके । उपदिष्टेरातिदिष्टानां बाध इत्यन्ये ॥ ५ ॥

यदेवा देवहेडनामिति चतस्रभिर्जुहुयात् ॥ ६ ॥

यद्देवा देवहेडनिमत्यनुवाक आदितश्चतमृश्विकांग्भिरनादेशादाज्यं जुहुयात् । पूर्वाभिस्तिसुभिश्चेति सप्ताऽऽज्याहुतयः ॥ ६ ॥

देवकृतस्येति चान्ते समिद्धिः ॥ ७ ॥

आज्यहोमान्ते देवळतस्येत्यादिभिः पूर्वोक्तैरष्टभिर्मन्तैः सामिद्धिहोमः कर्तव्यः। उपदेशक्रमादेव सिद्धेऽन्तग्रहणं पाप्तानुवादः । अन्ये पुनश्चान्द्रायणान्त इति व्याचक्षते । तेषां चश्चव्दो न संगच्छते ॥ ७ ॥

÷ॐ भूर्भवः स्वस्ति सत्यं यशः श्रीक्तिगिंडौज रूतेजो वर्चः पुरुषो धर्मः शिव इत्येतैर्वासानुम न्त्रणं प्रतियन्त्रं धनसा ॥ ८ ॥

पणवादयः पश्चद्दा मन्त्रास्तेषामेकैकेन मन्त्रेणैकैकस्य ग्रासस्य मनसाऽनुम-न्त्रणं कर्तव्यम् । अनुमन्त्रणक्रमेण भोजनम् यदा तु न्यूना ग्रासास्तदा यावाद्ग्रा-समादितो मन्त्रा ग्राह्माः । अन्ततो लुप्यन्ते । ग्रासानुमन्त्रणमिति वचनानिते भोजनमन्त्राः । ततश्च प्राणाहुतिमन्त्राणामानिवृत्तिः । यदा चत्वारो ग्रासास्तदा द्वाभ्यां पूर्वं यदा त्रयो द्वाभ्यां द्वाभ्यां पूर्वो यदा द्वी द्वाभ्यां पूर्वमुत्तरं निभिः । सर्वेरेकम् । हविषश्चानुमन्त्रणामिति पूर्वोक्तिमह तु ग्रासानुमन्त्रणामिति प्राणाहु-

Q.

7.2

[÷] मुदितयाज्ञवल्क्स्मृती तु—ॐ श्रू: ॐ भ्रुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ सत्यं तथा च ॐ तपः ॐ पुरुष इति पाठान्तरं दृश्यते ।

१ क. ख. घ. त्यं श्री। २ क. ख. घ. स्तेज, पु।

तिमन्त्राश्च स्थिताः । तत्र पयोगः - सर्व भोज्यं पात्रे निधायाऽऽप्यायस्वेत्यादिभि रनुमन्त्र्य यासान् वृत्वा पणवादिभिः क्रमणानु पन्त्र्य पागाहुतीः कृत्वा पाशनीयादिति ॥ ८॥

नमः स्वाहेति वा सर्वाव ॥ ९॥

अथवा सर्वानेव यासान्त्रमः स्वाहेत्यनुपन्त्रयेत् । नमः स्वाहेत्यनयोर्विकर्षः। समुदितो मन्त्र इत्यन्ये ॥ ९ ॥

श्रासप्रधाणमास्याविकारेणं ॥ १०॥

यावत्ममाणे यासे यस्यमान आस्यमाविकृतं भवेति तावत्तस्य पमाणम्

चरुमैक्षसक्तकणयावकशाकः योदाघिष्टतम्लैंकेंलेदिक ।नि हवींष्युत्तरोत्तरं प्रशस्तौनि ॥ ११॥

हिविष्येरुपकालिपनी नवस्नावितो विश्वद्रसिखीदनश्चरः । भेक्षं ब्रह्मचारिण् शिष्पादिना स्वयमानीतम् । गृहस्थस्य भिक्षाचरणानिषेधात् । चूर्णिकृता लाजाः सक्तवः । कणाः फलीकरणानि । यावकः पूर्वमुक्तः । अन्यानि प्रसिद्धानि । द्वादशैतानि हवीषि । तेषु च पूर्वस्मात्प्वस्मादुत्तरमुत्तरं प्रशस्तम् । तत्र द्रवागां पत्रपुटादिना ग्रासकलाना । तपांसि चैनःसु गुरुषु गुरूणि लघुषु लघूनि ॥ ११ ॥

पौर्णशास्यां पश्चद्श श्रामान्भुक्त्वैकापचयेनाप्रपक्षमञ्जीयात्।। १२ ॥

एवं चतुर्दश्यामुपोष्यापरेद्युः पश्चद्रश्यां पश्चद्रश यासानशित्वा तत परमेकापचयेन द्विचेचने सत्यर्थः स्पष्टो अवित पत्यहंभेकैकापचयेनेति सर्वमेवापरपक्षमश्नीयात् । तिथिहासे कमपाप्ते नवमीओजने यदा पात पश्च नाडचो नवमी, अपरेद्युश्च द्वामी नास्ति तदा पूर्वेद्यरागतायामेव नवभ्यां नव ग्रासान्भुकत्वाऽपरेद्युरेकाद्शीमामानेकाद्श ग्रासान्भुक्जीत । दशमी पाप्तानां दश्यासानां छोपः । एवं तिथिवृद्धावेकादशीयासे पाप्ते यदा पह्रविश्रातिनाडिका दिवा दशमी चतस्त्र एकादशी, अपरेद्यू रात्राविष कियत्य ďΣ.

प्यकादशी तदा पूर्वेद्युरेकादश्यां प्रनिविष्टायामेकादश यासान्भुक्तवाऽपरेद्युरि तानेवैकादश भुद्धीत । तस्यापरेद्युदीदशेति प्रयोगः ।

> यथाकथंचित्पिण्डानां तिस्रोऽशोतीः समाहितः । मासेनाश्नन्हाविष्यस्य चन्द्रस्यैति सलोकताम् ॥

इति मानवे चान्द्रायणान्तरं विधीयते । न पुन पचयापचयरूप उर्क चान्द्रायणे विण्डसंख्यानियमः । तथा च याज्ञवलक्षेत स्पष्टगुक्तम् –

> यथाकथांचित्पिण्डानां चत्वारिंशच्छत् यम् । मासेनैकेन भुङ्जीत चान्द्रायणमथापरम् ॥ इति ॥ १२ ॥ अम्रावास्यायानुपोष्येकोपचयेन पूर्वपक्षम् ॥ १३ ॥

एवमेकापचयेन ग्रस्यमानेषु चतुर्दश्यामको ग्रातो भवति । अमावास्यायामुपवासः । अमावास्यायामुपोष्य पूर्वपक्षपतिपद्येकं ग्रासावित्वेकैकोपचयेनैकैकग्रासवृद्ध्या क्रत्स्नमेव पूर्वपक्षमश्नीयात् । पौर्णमास्यां पञ्चद्वा भवन्ति । तदेतत्तननुमध्यत्वास्पिपाछिकामध्यं चान्द्रायणम् ॥ १३ ॥

विपरीतमेकेषाम् ॥ ५४ ॥

एकेषामाचार्याणां मतेनेद्मेव विधानं विपरीतं भवति । अमावास्यायामुपो-ध्यैकोपचयेन पूर्वपक्षमशित्वा कृष्णपनि । द्मारम्येकापचयेनापरपञ्चमश्रतिया चतुर्दे श्यामेको यासो भवति । अमावास्यायामुपवासः । तद्तत्स्थू अपध्यत्वाद्यवमध्यं चान्द्रायणम् ॥ १४ ॥

एवं चान्द्रायणी मानः ॥ १५॥

एवं मासताध्यं चान्द्रायणं तद्योग देव मासश्वान्द्रायणः । यद्यव्यक्ते प्रकारे पुर्पाछिकामध्ये द्वार्त्रिशद्हानि यवमध्ये चैक्षत्रिशत्तयाशपि न वैक्ष्नासरेगोति न्यायनेष मास इत्युक्तम् ॥ ५ ॥

एवमाप्त्वा विपापो वियापमा मर्वमेनो हन्ति ॥ १६ ॥

एवमेवंविधं चान्द्रायणं मासमाप्त्वा माससाध्यमेतद्वतं छत्व विवापो विहिताकरणजन्यपापहीनो भवति । विवाप्मा निषिद्धाचर णभवपापहीनः । सर्वेषेना हन्ति यचान्यज्जन्मान्तसार्जितं सूक्ष्ममेनस्तद्पि सर्वे हन्ति ॥ १६ ॥

> दितीयमाण्त्वा दश पूर्वान्दश परानात्मानं चैकविंशं पङ्क्तिं च पुनाति ॥ १७ ॥

द्वावाप्त्वेति वक्तव्ये द्वितीयामिति वचनं नैरन्तर्यार्थे ।द्वितीयं मासं निरन्त-रमाप्त्वेति । कथं पुनर्नेरन्तर्यस्य संभवः । यावता पिणीलिकामध्ये श्वोभूतां पौर्णमासीमुपवसेदित्युकं पौर्णमास्यां पञ्चद्वा प्रासान्भुक्त्वेति च तथाऽमावास्या-यामुपोष्येककोपचयेन पूर्वपक्षमश्नीयादिति तद्द्वितीयपौर्णमास्यन्तः स प्रयोगः । वद्यन्त्तरं द्वितीयस्याऽऽरम्भे चतुर्दश्यामुपवासः । पञ्चदश्यां पञ्चद्वा प्रासानिति च नोपपद्यते । तस्मादेवमत्र वक्तव्यम्—नात्र द्वयोश्चान्द्वायणयोर्विधानम् । किं तिहि । मासद्वयसाध्यपेकं चान्द्रायणम् । तस्येष कलिविधः । तस्याऽऽदी च पुर्दश्यामुपवान सस्तृतीये पौर्णमास्यन्तश्च प्रयोगः । मध्ये यथोक्त्राः । द्वितीयाः च पौर्णमासी तन्त्रेण प्रथमस्यान्त्या द्वितीयस्याऽऽद्या । एवं यवमद्ये द्वितीयाऽमावास्या । एतेन संवत्सरं चाऽऽप्त्वेति व्याख्यातम् ॥ ५७॥

संवत्सरं चाऽऽप्त्या चन्द्रम्सः सलोकतामाप्रोति सलोकतामाप्रोति॥ १८॥

यस्तु संवित्सरमञ्यवधानेन चान्द्रायणवर्तं चरति स चन्द्रमसः सालोक्य-मामोति । द्विरुक्तिर्व्याता । अत्र मनुः-

अष्टावष्टौ समश्नीयात्पिण्डान्मध्यांदिने स्थिते । नियतात्मा हविष्यस्य यतिचान्द्रायणं चरन् ॥ चतुरः पातरश्नीयाद्द्विजः पिण्डान्समाहितः । चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचान्द्रायणं चरन् ॥ इति । ययाकथंचित्पिण्डानापिति च ॥ १८ ॥

इति श्रीगौतमीयवृत्तौ हरदत्तविरचितायां भिताक्षरायां वृतीयप्रश्ले नवमोऽध्यायः॥ ९॥

अथ दशमोऽध्यायः।

अथ द्विभागः-

ऊर्ध्वं पितुः पुत्रा रिक्थं भजेरन् ॥ १ ॥

ऊर्ध्व पितुः पितिर मृते तद्यां रिक्थं स्वगृहक्षेत्रदासगवाश्वस्वर्गादिकं पुत्रा भजेरन्पुत्रास्तत्र भागिनः । पुत्राणां त्रस्वगमित्वामित्युकं भवति । ऊर्ध्वं पितुरिति वचनाज्जीवित तिस्मिन्न तत्र पुत्राणां स्वाध्यम् । तथा च मृतः—

ऊर्ध्वं पितुश्च मातुश्च समेत्य भ्रातरः सह ।

भजेरन्पैतृकं रिक्थमनीशास्ते हि जीवतोः ॥ इति ।

ितृश्चन्दस्य संबन्धिशन्द्रत्वादेव सिद्धे पुत्रग्रहणं नियमार्थम् । तेन पितृरुध्वै विभजतां माताऽप्यंशं समं हरेदित्यादिवचन्जा मानार्थस्याभिनैतं न भवति । पुत्रा एवं सर्वे धनादिकं गृहीत्वा मानरं यथावद्गेयुरिति मन्यते श्रूयते च-तस्मात्स्त्रियो निरिन्दिय। अदायादा इति । मनुरप्याह-

> पिता रक्षांति कौमारे भर्ता रक्षांति यौवने । पुत्रास्तु स्थिविरीभावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमहीत ॥ इति ॥ ९ ॥ निवृत्ते रजिस सातुर्जीविति चेच्छति । २ ॥

अथवा जीवत्यापि पितरि पुत्रा रिक्थं भजेरिति । इच्छिति सिति । तदनुज्ञयेत्यर्थः । तस्य कालः —

निवृत्ते रजित मातुः । उपरतर गरुकायां निवृत्त । सवाया भित्युक्तं भवति ॥ २ ॥

सर्वे वा पूर्वजस्वेतरान्तिभयात्पितृवत् ॥ ३ ॥

ज्येष्ठ एव सर्वं धनं स्वीकृत्य गृहीत्वतरान्क्रानिष्ठान्विभृयात् । तेऽपि तस्मिन्पुत्रवद्भेशरन् ॥ ३ ॥

विभागे तु धर्मवृद्धिः॥ ४॥

तुश्चः पक्षं व्यावर्तयाति । नैतर्देवं जेष्ठ एव बिभूयादिति । यदुक्तं विभाग एव ज्यायान्यतस्तत्र धर्मवाद्धः । यथाऽऽह बृहस्पतिः-

b

एकपाकेन नसतां पितृदेवदिजार्चनम् ।
एकं भवेदिभक्तानां तदेव स्याद्गृहे गृहे ॥ ४ ॥
अधुना पितुरूर्ध्वं जीवति च तस्मिन्विभागपकारपाह—
विंशतिभागो ज्येष्ठस्य मिथुनमुभयतोद्युक्तो
रथो गोवृषः ॥ ५ ॥

सर्वस्मात्पितृधनािद्वंशितितमो मागः, मिथुनं गवािद्यु स्त्रीपुंसयोधुंग्नम् । उभयतेादन्ता अश्वाश्वतरगर्दभास्तेषामन्यतमान्यां युक्तो रथः, गोवृषः पुगवः । अयमुद्धारो ज्येष्ठस्य ॥ ५ ॥

काणसोरकूटवणेटा भध्यभस्यानेकाश्चेत् ॥ ६ ॥

काण एकनेत्रः । विकलाङ्ग इति यावत् । खोरो वृद्धः । खोट इति पाठे विकलपादः । कूटः वृङ्गहीनः । वणेटो विकलवालिः । गवाश्वादिषु य एवंरूपः स मध्यमस्योद्धारः । स च काणादिर्यद्यनेको अवति । इतरेषामप्यास्ति चेदिति ॥ ६ ॥

अविर्धान्यायसी गृहमनायुक्तं चतुष्पदां चैकैकं यनीयसः॥ ७॥

अवीर्ह्मणायुः । जातावेकवचनम् । यावन्तोऽवयः । एकस्य चतुष्पद् चकेकिमित्यव सिद्धत्वात् । अपर आह यद्यपि पितुरेक एवाविस्तथाऽपि स यवीयसः । चतष्पदां चकेकिमिति तु बहुविषयमिति । धान्यं बीह्यादि । अय आयसं दात्रादि । धान्यमयश्चेति धान्यायसी । एतदुभयं याविकिचिद्गृहे गृहं यत्राऽप्यते । अनः गकटं युक्तं वाह्याम्याम् । चतुष्पदां च गवादीनामिक मिष्टं गृह्णीयात् । अयं कनीयस उद्धारः । अयं च सर्वकनीयसः । इतरेषामुद्धारो यो मध्यमस्य ॥ ७॥

समधा चेतरत्मर्वम् ॥ ८ ॥

इतरदुखृतशिष्टं सर्वं सर्वे समया गृह्णीयुः समामित्यर्थः । द्विधा बहुधे त्यादी दृष्टी धामत्ययः पयुक्तः ॥ ८ ॥

एकौकं वा धनरूपं काम्यं पूर्वः पूर्वो लभते ॥ ९ ॥ कल्पान्तरेषु बहुषु क्षेत्रादिष्वेकैकं धनरूपं ज्यष्ठानुपूर्व्याद्गृहणीयुः । १ ०दशमीऽध्यायः] हरदत्तकृतामेताक्षरावृत्तिसहितानि । २२३

काम्यं यस्य यादेष्टं स तद्गृह्णीयादिति । सर्वेदिवृष्टं ज्येष्ठस्तद्रहितेदिवृष्टमनन्तर इति । अयमुद्धारः सर्वेषाम् ॥ ९ ॥

अत्रैव पशुषु विशेष:-

द्शकं प्रानाम्॥ १०॥

द्रशावयवा अस्य द्राकः । पशूनां गवादीनां मध्ये द्राकं द्राकं पूर्वी लभते न त्वेकमिति " १०॥

अस्यापवाद:---

नैकशफादिपदाय्॥ ११॥

एकशफानामधादीनां द्विपदां दास्यादीनां च दशकं न गृहणीयुः। किंतु पूर्वोक्तमैकैकमेवेति । द्विपदानामिति पारे पादशब्देन समानार्थः पदशब्दः। एवमेकमातृकाणां सोखारो विभाग उक्तः॥ ११॥

अथानेकमातृकाणामाह -

ऋषभोऽधिको ज्येष्ठस्य ॥ १२॥

उत्तरसूत्रे ज्यैष्ठिनेयस्येति वचनाद्यं ज्येष्ठः कानिष्ठिनेयः । यदि कनीयस्याः पुत्रो भवति तदा तस्य ऋषभ उद्धारः । समग्व्यत् ॥ १२ ॥

ऋषभषोडशा ज्यैष्ठिनेयस्य ॥ १३ ॥

ज्येष्ठस्योति वर्तते । ज्येष्ठायाः पुत्रश्च भवति यो ज्येष्ठश्च भवति तस्य पश्चदश गाव ऋषभश्चेक उद्धारः । सममन्यत् ॥ १३ ॥

अथ ऋषभोऽधिको ज्येष्ठस्येत्यस्यापवादः-

समधा वाडन्यैष्टिनेयेन यवीयसान् ॥ १४ ॥

ज्येष्ठस्योति वर्तते । तच्चाज्येष्ठिनेयेनेत्यनेन सामानाधिकरण्याचृतीयान्तं संपद्यते । अज्यैष्ठिनेयेन कानेष्टायां जातेन ज्येष्ठेन सह यवीयसां ज्येष्ठिनेयानां समो वा विभागः । एकस्य जन्मतो ज्येष्ठग्रमन्येषां मातृत इति ॥ १४ ॥

अतिसातृ वा स्वस्ववर्गे भागाविशेषः ॥ ५५ ॥

विंशतिभागे। ज्यष्ठस्येत्यादिर्थं उक्तो भागविशेषः स पतिमातृ वा स्वे स्वे विशेषः कर्तव्यः । एतः कं भवति -यावत्यो ् मातरः

3,

त्यस्तावता विभक्ते धन एकस्या यावन्तः पुत्रास्तेषां भागानेकीकृत्य तत्र तत्र वर्गे यो यो ज्येष्ठस्त स्य विञ्ञतिभागो ज्येष्ठस्येत्यादिभागविशेष इति । एवं पुत्रवतो विभाग उक्तः ॥ १५ ॥

अथापुत्रस्याऽऽह -

पितोत्सृजेत्पुत्रिकामनपत्योऽभ्रिं प्रजापतिं चेष्ट्वाऽस्यदर्थमपत्यामिति संवाद्य ॥ १६ ॥

पिता नाम तामुत्सृजेइद्यात् । भाविसंज्ञानिर्देशोऽयम् । यथा यूपं छिन-त्तीति । पुनिकां भाविष्यन्तीं दुहितरमनपत्योऽपुत्रोऽाधीं मजापातिं चेष्ट्वाऽसये स्वाहा मजापतये स्वाहेत्याज्यभागानन्तरमापासन आज्येन हुत्वाऽस्मद्र्यमपत्य-मिति सवाद्य यस्नै ददाति तेन संवादं कारियत्वा । तत्र मकारो वासिष्ठेन दिशित:—

> अभातृकां पदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकताम् । अस्यां जनिष्यते पुत्रः स भ पुत्रो भवेदिति ॥

एवं दत्ता सा पुत्रिका तस्यां जाता मातामहस्यै। पुत्री नीत्पादियतुः अत एव मनुः-

मातुः पथमतः पिण्डं निर्वपत्पुत्रिकासुतः ।

द्वितीयं तु पितुस्तस्यास्तृतियं तु भितुः पितुः ॥ इति ।

एवं सर्वे गर्भाः पुत्रिकाऽप्येषा पितुः पुत्रपतिनिधिः । ' ईवे पाते हतौ संज्ञायां किनति । सेद च रिक्थयाहिणी । तथा च मनु. -

पुत्रिकायां कतायां तु यदि पुत्रोऽनुजायते ।

समस्तत्र विभागः स्याज्ज्येष्ठता नास्ति हि स्त्रियाः ॥ इति ।

गोत्रापि तस्याः पितुरेव गोत्रम् । भर्तुस्तु केवलं धर्भेषु सहचारिणी रितिफला च । पुत्रार्थे तु विवाहान्तरं कर्तव्यं स्वकुलसंतानार्धमन्यथा दोषः ॥ १६ ॥

अभिसंधिमात्रात्पुत्रिकेत्येकेषाम् ॥ १७ ॥

एके मन्यन्ते पदानसाये वितुर्योऽभिसाधिरियं मे पुत्रिकाऽस्तिवाति ताव नमात्रकादेव दुहिता पुत्रिका भवति न हामसेवादनाद्यपेक्षोति ॥ १७ ॥ ततश्च--

तत्संशयास्त्रोपयच्छेदश्चातृकाम् ॥ १८ ॥
तत्संशयादिभसंधिसंशयात्पृत्रिकासंशयाद्वा । मनुरप्याह—
यस्यास्तु न भवेद्धाता न विज्ञायेत वा पिता ।
नोपयच्छेत तां पाज्ञः पुत्रिकाधमशङ्कर्या ॥ इति ॥ १८ ॥
विण्डगोत्रिधंसंयन्धा रिक्थं भजरन्स्ति वाऽनपत्यस्य ॥१९॥

यस्य पुत्रिकारूपमप्यपत्यं नाहित सोऽनपत्यः । तस्य रिक्थं पिण्डादिसंबन्धाः भजेरन्स्री वा । पिण्डसंबन्धाः सापिण्डाः । गोत्रसंबन्धाः सगोत्राः । हारातस्य ह रीत इतिवत् ऋषिंबन्धाः समानप्यरा हरितकृत्सिपशङ्गशङ् बद्भेहैभगवाः परस्परम् । एवमन्यत्रापि । तत्र सापिण्डाद्याः पत्यासित्तक्रमेण गृहणीयुः । तथा चाऽऽपस्तम्बः—पुत्राभावे यः पत्यासन्नः सापिण्ड इति । तद्यथा पिता माता च सोदर्थस्तत्पुत्रा भिन्नोदरा भ्रातरस्तत्पुत्राः पितृव्य इत्यादि । सापिण्डाभावे सगोत्रा-स्तद्भावे समानप्यराः । स्त्री तु सर्वेः सगोत्राादिभिः समुच्चीयते । यदा सपिण्डा-द्यो गृहणन्ति तदा तैः सह पत्न्य यक्षमंशं हरेत् । तथा—

पितुरूर्ध्वं विभजतां माताऽप्यंशं समं हरेत् । इति । अत एव स्त्री पृथङ्निर्दिष्टा । सपिण्डाइयः समानेन । पत्नीदायस्त्वाचार्यस्य पने न भवति । मनुरपि –

निरिन्दिया अदायादा स्त्रियो नित्यमिति स्थितिः। इति ।

अत्र सिण्डाद्यभावे बृहस्पति:-

अन्यत्र ब्राह्मणारिक तु राजा धर्मपरायणः । तत्स्त्रीणां जीवनं दद्यादेष दायविधिः स्मृतः ॥ अन्तार्थं तण्डुलपस्थमपराह्णे तु सेन्धनम् । वसनं त्रिपणक्रांतं देयमेकं त्रिमाडतः ॥ एतावदेव साध्वीनां चोदितं विधिनाऽशनम् । इति ।

तदेवं मनुबृहस्पतिभ्यां पत्नीदायस्यात्यन्ताभाव उक्तः । याज्ञवल्क्येन तु पत्नीदायः स उक्तः-पत्नी दुहितरश्चेत्यादि । अत्र व्यासः-

द्विसहस्रपणो दायः पत्न्ये देयो धनस्य तु । यच्च भर्ता धनं दत्तं सा यथाकाममाप्नुयात् ॥ इति । आचार्येण तु सपिण्डादिसमांश्रयहणमुक्तम् । तत्र सर्वभव धनं सपिण्डाद्या गृहीत्वा स्त्रियो यावण्जीव रक्षेयुरिति मुख्यः कल्पः । तर्संभवेऽश्रनवसनयोः पर्याप्तं धनक्षेत्रादिकमंश्रत्वेन व्यपोह्य शेर्षं गृह्णीयुः । तथा च बृहस्पातिना पत्नी । यं प्रतिषिष्धान्त उक्तम्—

> वसनस्याशनस्यैव तथैव रजास्य च । तथं व्यपोस तिच्छक्षं दायादानां प्रकल्पयेत् ॥ धूमावसारिकं द्रव्यं सहायास्तानतः पुरा । तथैवाश्चनवासांसि विगणय्य धने मृता । इति ॥ १९॥ विजं वा लिप्सेत ॥ २०॥

अथवा स्त्री सापिण्डादिभ्यो बीजं छि सेत । अपत्यमुत्पादयेदित्युक्तं भवति अस्मिन्पक्षे तु न सापिण्डाद्या धनं गृह्णीयुरेष्यतोऽपत्यस्यार्थाय रक्षेयुः ॥२०॥ अस्मिन्पक्षे विशेषः—

देवरवत्यामन्यजातमभागम् ॥ २१ ॥

देवरे विद्यमाने यद्यन्यतो बीजं लिप्सेत ततस्तस्यां जातमपत्यमभागं भागरिहतम् । न तस्य धनग्रहणमस्ति । असाति तु देवरेऽन्यतो जातमप्यपत्यं सभागमेव ॥ २१ ॥

स्त्रिधनं दुहितॄणामप्रत्तानामप्रतिष्ठितानां च ॥ २२ ॥ पितृमातृसुतभ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतम् ।

आधिवेदानिकाद्यं च स्त्रीधनं परिकीर्तितम् ॥ इति याज्ञवल्क्यः । तत्स्त्रीधनं तस्यां मृतायां दुहितॄणामप्रतानां भवति । यदि सर्वा अपि पत्ता अपितिष्ठितानां भवति । पत्तासु प्रतिष्ठिताः काश्चित्काश्चिद्पतिष्ठिताः । पत्ता-पत्तासम्वायेऽपत्ति गृह्णाति । पतिष्ठितापतिष्ठितासम्वायेऽपतिष्ठिता गृह्णाति । यदा प्रमृतादिधनं तदा सर्वांसां भवति । एषां मातुरू व्वं जीवन्त्यां पितृकुल-लब्धस्य स्त्रीधनस्य गतिः । तथा च मनुः—मातुस्तु यौतकं यत्स्यात्कुमारीभाग एव सः ।

वासेष्ठश्य-मातुः पारिणेयं स्त्रियो विभजेरान्तिति । यतु शङ्खांछालिता-भ्यामुक्तम्-समं सर्वे सोद्यां मातृकं दृव्यमहाः स्नाकुमायश्चिति । तद्भनुंकुठछब्धे: प्रतासु दुहितृषु । तत्र पत्ताविषये प्रभूततमे मानवम् -

जनन्यां संस्थितायां तु समं सर्वे सहोदराः । भजेरन्मातृकं रिक्थं भगिन्यश्च सनाभयः ॥ यास्त्वासां स्युर्दुहितरस्तासामपि यथाईतः । मातामहा धनातिंकचित्पदेयं पीतिपूर्वकम् ॥ इति ।

तत्रैवाल्पे धने बाईस्पत्यम् -

स्त्रीधनं तदपत्यानां दुहितूणां तदाशिनी । अपत्ता चेत्समूढा सा छमेत तु समातृकम् ॥ इति ॥ ः २ ॥ भागिनीञ्चल्कः सोदर्याणामूर्ध्वं मातुः ॥ २३॥

भगिनीपदानानिमित्तं पित्रा यद्गृहीतं द्रव्यमासुरार्षाविवाहयोस्तास्मिन्मृति तस्या भागिन्या एव सोद्या श्रातरस्तेषां भवाते । तच्च मातुरूध्र्वं जीवन्त्यां मातरि तस्या एव न तु मृतस्य पिनुरेतत्स्विभिति । तत्र ये भागिनो भिन्नोद्ररा भातरी मातृसपत्नी चेति ते सर्वेऽशं न गृहणीयुारिति । यत्र निवाहसमये मर्ता -दिकुलेन भगिन्याद्ये दत्तमाभरणक्षेत्रादिकं तत्तस्या एव । मृतायां च तस्यामपजाति याज्ञवल्क्येनोक्तम्-

बन्धुदत्तं तथा शुल्कमन्वाधेयकभेव च । अप्रजायामतीतायां बान्धवास्तदवाप्नुयः ।।

येन यहत्तं स तद्वान्नुयादिति । सत्यां तु प्रजायां सैव गृहगोषादिति ॥ २३ ॥

पूर्व चैके ॥ २४ ॥

पागपि मातुर्मरणाद्भागिनीशुल्कं सोद्यांणां भवतीत्येकं मन्यन्ते। तस्या वृत्तापेक्षो विकल्पः ॥ २४ ॥

असंसृष्टिविभागः प्रेतानां ज्येष्ठरूय ॥ २५ ॥

असंसृष्टिनो विभक्तभातरः । विभक्तव्यो विभागः । असंसृष्टिनां विभा-गोऽसंसृष्टिविभामः । भेतानापित्येतदुवसर्जनी पूतानामप्यसंसृष्टिनां विदेशवणम् । अनपत्यस्य चंति वर्तते । असंसृष्टिनां विभक्तानापनपत्यानां भ्रातॄणां पेतानां यो विभागो विभक्तन्यो धनादिः स ज्येष्ठस्य आतुर्भवति ने रेषां अत्वृणां नापि पत्न्या न च पित्रोरित्याचार्यस्य पक्ष । तथा च शङ्खिखितपैठीनसी-अपुत्रस्य स्वर्यातस्य भातृगामि द्रव्यं तद्बावे मातापितरी हरेतां पत्नी वा ज्येष्ठा सगोत्रशिष्यस्य त्रसचारिणश्चेति । मनुस्तु -

पिता हरेदपुत्रस्य रिक्थं भातर एव च । इति ।

देवल्रश्चः ततो दायमपुगस्य विभजेरन्सहोदराः ।

सकुल्या दुहिता वाऽति धियमाणः पिताऽपि च ॥ इति ॥२५॥ संसृष्टिनि प्रेते संसृष्टी रिक्थमाक् ॥ २६॥

भात्रादिभिः संसुर्वं धनं यस्य स संसुष्टी साधारणधनोऽविभक्तो विभज्य संसुष्टश्च ।

विभक्तो यः पुनः पित्रा भात्रा वेकत्र संवसत्।

पितृब्येणाथवा भीत्या स तत्संसृष्ट उच्यते ॥

इति बाईस्पत्ये दर्शनात् । अनपत्यस्योति वर्तते । संसृष्टी(ष्टिनी)त्यनपत्ये मेते तस्य रिक्थं संसृष्टी भजे । तनापि सोदर्भेणातार्येण व संसृष्टे सोदर्भे यो) भजेत् । सोदरस्य तु सोदर इति याज्ञवल्क्यदर्शनात् । तदेवं विभक्तं भ्रातर्यनपत्य मृते तद्धनं ज्येष्ठस्य । असित ज्येष्ठ इतरेषां भ्रातृणाम् । अविभक्ते तु मृते तदंशः सर्वेषां भ्रातृणामिति ॥ २६ ॥

विभक्तजः ित्रयञ्जेव ॥ २०॥

यस्तु विभागादृध्वै जातः पुत्रस्तस्यायन्यस्यां वा भायीयां स पित्र्यमेव गृह्णीयात् । विभागादूध्वै पित्रा यदार्जितं विभागकाले वा गृहीतं तदेव भजेदल्प प्रभूतं वा । अत्र बृहस्पतिः –

> पुत्रैः सह विभक्तेन पित्रा यत्स्वयमितितम् । विभक्तजस्य तत्सर्वमनीशाः पूर्वजाः स्मृताः ॥ इति ।

यदा तु ितुर्न किंचिदस्ति तद। वैष्णवम्-पितृविभक्ता विभागोत्तरोत्पवस्य भागं दद्यारिति।

याज्ञल्क्योऽप्याह—

विभक्तेषु सुतो जातः सवर्णायां विभागभाक् । दृश्याद्वा तद्दिभागः स्यादायव्ययाविशोधितात् ॥ इति ।

Ÿ.

अत्र मनुनारशौ-

कर्ध्व विभागाज्जातस्तु पित्र्यमेव हरे द्वनम् ।
संमुष्टास्तेन वा येऽस्य विभजेत स तैः सह ॥ इति ॥२७॥
स्वयम्पर्जित अवैद्येश्यो वैद्यः कामं न द्यात् ॥ २८ ॥

विद्यानधीत इति वैद्यः । स्वयमर्जितं विद्यारहितेभ्या भ्रातृभ्यः कापं न द्यात् । अदानेअपि न पत्यवायो नाने त्वभ्युदय इति ॥ २८ ॥

अवैधाः समं विभनेरन् ॥ २९ ॥

यदा तु सर्वे भातरो मूर्ाः कृष्यादिनोपार्जययुस्तदा समं विभजेरन् । वैद्येनापि कृष्यादिना यदार्जितं न विद्यया लब्धं यदि पितृद्वन्याविरोधि तत्र साम्यमेव । तत्र सूत्रद्वयमपि चैतद्भातृविषयमेव । पितारे तु जीवित विदुषाऽवि - दुषा वाऽविभक्तेनार्जितं पितुरव ।

भायां पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाधनाः स्मृताः । यत्ते समधिगच्छन्ति यस्येते तस्य तद्धनम् ॥ इति मनुः ॥ २९ ॥ आचार्येण पुत्रा रिक्थं भजेरिक्तत्युक्तं तत्रीरसा एव पुत्रा इति संपत्ययो मा भूदित्याह

पुत्रा औरसक्षेत्रजद्त्तक्वत्रिमगृहोत्पन्नापाविद्धा

रिकथभाजः ॥ ३०॥

औरसो धर्मपत्नीज । अत्र याज्ञवल्क्यः-

अपुत्रेण परक्षेत्रे नियोगीत्पादितः सुतः।

उभयोरप्यसौ रिक्थी पिण्डदाता च धर्मतः ॥ इति । अयमेवोत्पादयितुर्न बीजिनश्च भर्तुः । दत्तविषये वसिष्ठः —

न ज्येष्ठं पुत्रं द्यात्पातिगृहणीयाद्वा स हि संतानाय पूर्वेषाम् । न स्त्री पुत्रं द्यात्पातिगृहणीयादाऽन्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुः । पुत्रं पतिग्रहीष्यन्वन्यूनाहूय राजनि चाऽऽवेद्य निवेशनस्य मध्ये व्याहति।सहैत्वाऽदूरे बान्थवंसंनिक्छभेव पतिगृहणीया दिति । स दत्तः । स्त्रिमिविषये मनु.—

सदृशं तु पकुर्याद्यं गुणदोषविवर्जितम् । पुत्रं पुत्रगुणेर्युक्तं स विज्ञेयस्तु क्रात्रिमः ॥

4

2

उत्पद्यते गृहे यस्य न च ज्ञायेत कस्यचिम् । स गृहे गृढ उत्पन्नस्तस्य स्याद्यस्य तल्पजः ॥ मातापितृभ्यामुत्सृष्टं तयोरन्यतरेण वा । यं पुत्रं प्रतिगृहणीयादपविद्यस्तु स स्मृतः ॥ इति । पडेते रिक्थभाजः पुत्राः ॥ ६० ॥ कानीनसहोद्व-गैनर्भवषुत्रिकापुत्रस्वयंद्त्तकीता गोत्रभःजः

11 89 11

पितृवेश्मानि कन्या तु यं पुत्रं जनयेदिह । तं कानानं वदेच्यामा वोढुः कन्यासमुद्भवम् ॥ इति । अत्र वसिष्ठः अपत्ता दुहिता यस्य पुत्रं विन्देत तुल्यतः ।

पौत्री मातामहस्तेन द्द्यात्पिण्डं हरेष्ट्रनम् ॥ इति । याज्ञवल्क्यः-कानीनः कन्यकाजातो मातामहसुतो मतः ॥ इति । तत्रापत्तायामेव मृतायां मातामहस्य पुत्रः पौत्रो वा । ऊढायां वोढुः । अत्र मनुः-या गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताऽज्ञाताऽपि वा सती ।

वोदुः स गर्भो भवति सहोढ इति चाच्यते ॥ या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया।

उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते ॥

पुत्रिकापुत्रः पूर्वमेवोक्तः । मनुः-

मातापितृविहीनो यस्त्यको वा स्यादकारणात् । आत्मानं स्पर्शयद्यस्मै स्वयंदत्तम्तु स स्मृतः ॥ कीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं मानापित्रोर्थमन्तिकात् ।

स कीतकः सुतस्तस्य सहयोः सहयोऽपि वा ॥ इति ।

एते तु गोत्रभाजो गोत्रमेव केवलं भजन्ते न रिक्थम्। पूर्वे तु रिक्थभाजो गोत्रभाजश्रीरसेन उहाभिधानात्। सर्वे चैते सजातीयाः।

सजानीयेष्वयं पोक्तस्तनयेषु मया विधि:।

इति याज्ञवल्क्ययचनात् ॥ ३१॥

चतुर्थांशिन औरसायभावे ॥ ३२ ॥

अथवा नैते कानीनाइयो न रिक्थभाजः किंतु चतुर्थीशिनः । वितृधनस्य चतुर्थमंशं भजेरन् । पूर्वीकानां वण्णामीरसादीनामभि । भावे त त एव भजेरन् । चतुर्थीशब्धानिरिक्तं च सविण्डा गृहणीयुः । यद्

पुनिकापुत्रस्यौरसाद्यभावेऽपि चतुर्थांशमाक्तवमुक्तं तदप्रष्टष्टपुत्रिकापुत्रविषयम् । यो हीनवर्णाया भार्याया दुहितरं पुत्रिकां कराति तत्राप्यभिसंधिमात्रेण तत्पुत्राविषय-मित्यर्थः । अत्र मनुः-

> पुत्रिकायां कतायां तु यदि पुत्रोऽनु जायते। समस्तत्र विभागः स्याज्जेष्ठता नास्ति हि स्त्रियाः ॥ इति । षष्ठं तु क्षेत्रजस्यांशं पदद्यात्पैतृकाद्धनात् । औरसो विभजन्दायं पित्रयं पश्चममेव वा॥ औरसक्षेत्रजौ पुत्रौ पितृरिक्थस्य मागिनौ । दशापर तु कमशो गोत्रास्क्थांशभागिनः ॥ इति च ।

अत्र दत्तपुत्रग्रहणानन्तरं वसिष्ठ .-- यस्मिश्चेत्पतिगृहीत औरसः पुत्र उत्पद्यते चतुर्थभागभागी स्यादिति । अत्र कात्यायनः-

उत्पने त्वौरसे पुत्रे तृतीयां शहराः सुनाः । सवर्णा असवर्णास्तु यासाच्छाद्नभागिनः ॥ इति । अत्र बृहस्पति:-एक एवौरसः पित्र्ये धने स्वामी पकीर्तितः। तत्तुल्यः पुत्रिकापुत्रो भर्तव्यास्त्वपरे स्मृताः॥ क्षेत्रजाद्याः सुतास्त्वन्ये पश्चषट्सप्तभागिनः ॥ इति ।

हारीत:-विभाजिष्यमाण एकविंशं कानीनाय दद्याद्विंशं पौनर्भवायेकोन-विंशं द्वचामुष्यायणायाष्टादशं क्षेतरजाय सप्तदशं पुत्रिकापुत्रायेतरानौरसायेति ।

याज्ञवल्क्यो द्वाद्श पुत्राननुक्रम्याऽऽह-

पिण्डदों वाहरश्रेषां पूर्वाभावे परः परः । इति । मनुरपि-श्रेयसः श्रेयसोऽभावे यवीयान्रिक्थमहीते । इति । नारदो पि-क्रमांद्ते पवर्तन्ते मृते पितरि तद्धने !

ज्यायसो ज्यायसोऽभावे जवन्यस्तद्वाप्नुयात् ॥ इति । विसष्ठोऽपि-यस्य तु पूर्वेषां चे न कश्चिद्दायादः स्यादेते तस्य दायं हरेयु।रिति ।

अत्रीरसः पुरिरकापुत्रः क्षेत्रजः कानीना गुढोत्पन्नोऽपविद्धः पोनर्भवो दत्तः स्वयमुपागतः कृतकः क्रीत इति क्रमेण पुत्रानिभधाय देवल: -

गौतसप्रणीतधर्मसूत्राणि -

एते द्वादश पुररास्तु संतत्यर्थमुदाहताः। आत्मजाः परजाश्चेव छन्धा याद्यच्छिकास्तथा ॥ तेषां षड् बन्धुदायादाः पूर्वं ये पितुरेव षट्। विशेषश्चापि पुत्राणामानुपूच्याद्विशिष्यते ॥ सर्वेऽप्यनारसस्येते पुत्रा दायहराः स्मृताः। औरसे पुनरुत्पन्ने तेषु ज्यष्टयं न गच्छति ॥

तेषां सवर्णा ये पुत्रास्ते तृतीयांशभागिनः। हीनोः समुपजीवेयुयासाच्छादनसंध्रताः॥ इति ।

बन्धुदायादा इति बन्धूनां सापिण्डानामप्येते दायं हरेयुर्न केवलं पितुरेव । इतरे पितुरेवे ते । एष एष स्मृत्यन्तरेष्विप बन्धुदायादशब्दस्यार्थः । तदेवम् –

औरसः पुत्रिका बीजिक्षेत्रिणौ पुत्रिकासुनः । पौनर्भवश्व कानीनः सहोहे गृहसंभवः ।।

दत्तकीतस्वयंदत्ताः ऋत्रिमश्रापविद्यक ।

यतर क्व चोत्पादितश्च पुत्राख्या दश पश्च च ॥

अनेनैव कमेणेषां पूर्वाभावे परः परः ।

भिण्डदोंऽश्रहरश्रोति युक्ता गुणवशा स्थितिः ॥ इति ॥ ३२ ॥ उक्तः सवर्णपुत्राणां विभाग अथ क्रमविवाहेष्वसवर्णापुत्रेषु विशेष

षमांह -

ब्राह्मणस्य राजन्यापुत्रो ज्येष्ठो गुणसंपन्नस्तुल्यभाक्

॥ ३३ ॥

ब्राह्मणस्य राजन्यायां जातः पुत्रो यदि गुणसंपन्तो ज्येष्ठश्च भवाते तदां ब्राह्मणीपुत्रेण यवीयसा तुल्यभाक् । एकस्य वयसा ज्येष्ठचभपरस्य जात्येति ॥ ३३॥

ज्येष्ठांशहीनमन्यत् ॥ ३४ ॥

विश्वतिभागो ज्येष्ठस्येत्यादिर्य उद्धारः पूर्वम्कस्तद्वचितिरिक्तमन्यद्विभजेतेति प्रकरणादम्यते । गुणहीने ज्येष्ठे च राजन्यापुत्रे मानवम् – सर्वे वा रिक्थजातं तद्दशयाऽत्र विभज्य तु । धर्म्ये विभागं कुर्वीत विधानेन तु धर्मवित् ॥

१ क. ख. घ. नाः स्वमु ।

चतुरोंऽशान्हरेद्दिपस्तानंशान्क्षातियासुतः । वैश्यापुत्रो हरेद्द्वयंशमेकं शूदासुतो हरेत् ॥ इति ॥ ३४ ॥ राजन्यावैश्यापुत्रसमवाये यथा स ब्राह्मणीपुत्रेण ॥ ३५ ॥

यदा ब्राह्मणीपुत्रस्तु नाऽऽस्ते तदा राजन्यापुत्रो ब्राह्मणीपुत्रेण समवाये यथा तुल्यभाक् , एंवे क्षात्त्रियापुत्रेण वैश्यापुत्रस्तुल्यभाक् ॥ ३५॥

क्षात्रियाच्चेत् ॥ ३६॥

चेच्छब्रश्चराब्द्स्यार्थे । क्षत्तियाच्चोत्पनयोः पुत्रयोः समवाये वैश्यापुत्रो ज्येष्ठो गुणसंपन्नः क्षत्तियापुत्रेग यवीयसा तुल्यभाक् । एवं वैश्यादुत्पनस्य शूद्रापुत्रस्याप्येके मन्यन्ते द्रष्टव्यामिति । नेत्यन्येऽनुक्तत्वात् ॥ ३६ ॥

शूद्रापुत्रोऽण्यनपत्यस्य शुश्रूषुश्र्वेछ्नभेत वृत्तिमूल-मन्तेवासिविधिना ॥ ३७ ॥

बासणस्येति वर्तते । अनपत्यस्याविद्यमानाद्दिजातिपुत्रस्य बासणस्य श्रूद्रापुत्रोऽपि वृत्तिमूळं छभेत । याविता छुष्यादिकर्भसमर्थो भवति तावछभेत । स यद्यन्तेवासिविधिना शुश्रूषुभैवति । यथा शिष्य आचार्य शुश्रूषते तथा शुश्रू-षुश्चेदिति । एवं क्षत्तियवैश्ययोरपि श्रूद्रापुत्रो वृत्तिमूळं छभेत ॥ ३७ ॥

सवर्णापुत्रोऽप्यन्याय्यवृत्तो न लभेतैकेषाम् ॥ ३८ ॥

यस्त्वन्याय्यवृत्तोऽधर्मेण द्रव्याणि प्रतिपाद्यति वेश्यादिभ्यः प्रयच्छाति
[स] सवर्णापुत्रोऽप्यपिशब्दाज्ज्येष्ठोऽपि दायं न स्रभेतेत्येकेषां मतम् । तथा
चाऽऽस्तम्बः—पस्त्वधर्मेण द्रव्याणि प्रतिपाद्यति ज्येष्ठोऽपि तमभागं कुर्वतिति
॥ ३८ ॥

श्रोत्रिया ब्राह्मणस्यानपत्यस्य रिक्थं भजेरन् ॥ ३९ ॥ अपत्यग्रहणं पिण्डगोत्रिषंबन्धादेरुपलक्षणम् । अनपत्यस्याविद्यमानधनः भाजो ब्राह्मणस्य श्रोतिरया हि रिक्थं भजेरन् ॥ ३९ ॥

राजेतरेषाम् ॥ ४० ॥

इतरेषां क्षत्तिरयादीनां रिक्थमनपत्यानां राजा भजेत ॥ ४० ॥

[३तृतीयपश्चे -

जडक्कीबौ भर्तव्यौ ॥ ४१ ॥

जडो नष्टित्तः । क्रुविस्तृतीयापक्रतिः । एतावशनाच्छादनदानेन भर्तव्यौ ।

मनुस्तु-अनंशो क्लीबपतिती जात्यन्धबधिरी तथा।

उन्मत्तजडमूकाश्च ये च केचिक्तिरिन्द्रियाः ॥ इति ॥ ४१ ॥

अपत्यं जडस्य भागाईम् ॥ ४२ ॥

यदि तु जडस्यापत्यं भवति तदा तद्भागाई भवति । तस्मै स भाबो देयः स्तात्पतुः । अतर मनुः—

यद्यार्थिता तु दारै: स्यात्क्वीबादीनां कथंचन ।

तेषामुत्पन्नतन्तूनामपत्यं दायमहंति ॥ इति ॥ ४२ ॥

रूद्रापुत्रवत्प्रतिलोमास्तु ॥ ४३ ॥

पातिलोम्येन जातानां सूतादानामपि गुणोत्लष्टानां शूदापूर्वद्वृतिमूलं दातन्यामिति ॥ ४३ ॥ उदक्योगक्षेमक्तान्नेष्वविभागः ॥ ४४ ॥

उदकं कृपादि । योगक्षेमाविष्टापूर्ते । तथा च छोगाक्षिः—

योगः पूर्त क्षेम इष्टा इत्याहुस्तत्त्वद्धिनः। अविभाज्ये तु ते मोक्ते शयनं चान्त्रमेव च॥ इति।

कृताने तूरसवादिषु कल्पिते मभूतेऽपि । एतेषु विभागो न कर्तःयः । यथावस्थितेष्वेव सादर्यानुरूपेण भोगः ॥ ४४ ॥

स्त्रीषु च संयुक्तासु ॥ ४५ ॥

याश्य स्त्रियो दास्यो भ्रात्रादिषु केनचित्संयुक्ता उपभोगपरिगृहति।स्तास्त स्येव । यद्यन्याः सन्त्यन्यत्रान्येषां भागः । यदि न सन्ति तदा द्रव्येण सान्य - मापादनीयम् । यदा पुनरेकेव दास्यसंयुक्ता च तदा पर्यायेण कर्म करोतु

11 28 11

अनाज्ञात दशावरैः शिष्टैरूहाविद्धिरलुब्धैः प्रशस्तं कार्यम् ॥ ४६॥

ज्ञायत इवाऽऽज्ञातम् । तदिपरीतमनाज्ञातम् । योऽथो यथावदविज्ञात

संदिग्धो वा तत्रानाज्ञाते दशावरेर्दशम्योऽन्यूनैः शिष्टेः । धर्मेणाधिमतो यस्तु वेदः सपारिवृंहणः ।

ते शिष्टा बासणा ज्ञेयाः श्रुतिपत्यक्षहेतवः ॥

इति मनुनोकैः । ऊहाविद्धिरूहापोह कृशस्तैः । असुन्येक्तकोचादिषु निःस्पृहैः । एवंभूतैर्बासणियत्। शस्तं स्तुतिमदमत्र युक्तमिति तत्कार्यं कर्नुं युक्तम् ॥ ४६ ॥ के पुनस्ते दशावरास्तानाह-

> चत्वारश्चतुर्णी पारगा वेदानां प्रागुत्तमात्त्रय आश्रमिणः पृथग्धर्मविदस्त्रय एतान्दशावरा-न्परिषदित्याचक्षते ॥ ४७॥

चतुर्णां वेदानां पारगाः साङ्गानामध्येतारोऽर्धज्ञाश्च । एवंभूताश्चत्वारो न चातुर्वेद्य एकः । आश्रमिणस्तृतीयेऽध्याय उक्ता ब्रह्मचारी गृहस्यो भिक्षुर्वेत्वानस इति । तेषूत्तनाद्वेत्वानसात्पूर्वे त्रय आश्रमिणः । पृथम्धर्मज्ञास्त्रविद्स्तयः । पृथम्य -हणमेकमेव धर्मज्ञास्त्रं विदुषां त्रयाणां ग्रहणं मा भूदिति । तानेतान्द्यावरान्पार्ष-दित्याचक्षते धर्मज्ञाः ॥ ४७ ॥

असंभवे त्वेतेषां श्रोत्रियो वेदविच्छिटो विप्रतिपत्तौ यदाह ॥ ४८ ॥

एतेषां व्यस्तानां सेमस्तानां च बहूनामसंभवे श्रोतियः साङ्गन्स्य वेदस्या-ध्येता । वेदवित्तदर्थज्ञः । शिष्टः स्वधर्मानिरतः । एवंभूत एकोऽप्रिः विपातिपात्ति-विषये यदाहेदमत्र युक्तिमदं कार्यामिति तत्कार्यम् । तथा च मनुः—

एकोऽपि वेदविद्धर्मै यं न्यवस्येत्समाहितः । स धर्मः परमो ज्ञेयो नाज्ञानागुदितोऽयुतैः ॥ इति ॥ ४८ ॥ कस्मात्पुनरेकस्यापि श्रोतियस्य वेदविदः । शिष्टस्य वचनं कर्तन्यमित्यत आह-

यतोऽयमप्रभवो भूतानां हिंसानुत्रहयोगेषु ॥ ४९ ॥

प्रभवत्यस्मादिति प्रभवः कारणम् । तन्न विद्यते यस्य सोऽप्रभवः । यस्माद्यं भूतानां हिंसानुग्रहयोगेषु दण्डपायश्चितादिष्वगृद्धमाणकारणः केवछं शास्त्रनेत्रस्त-स्मादेकस्यापि वचनमनुष्ठेयमिति । अपर आह-प्रभवनं प्रभवः प्रभुत्वं तद्यस्य नास्ति सोऽप्रभव । न हासो शास्त्रनिरपेक्षः स्वतन्त्रः किंचिद्नुगृह्णाति निगृहणाति वा । तस्मातस्य वचनमनुष्ठेयमिति ॥ ४९ ॥

[३तृतीयपश्चे-

२३६

सांपतं ये केवलं धर्ममनुतिष्ठन्ति तेम्यो ज्ञात्वाऽनुतिष्ठन्विशिष्ट इत्याह— धर्मिणां विशेषेण स्वर्गे लोकं धर्मविदाप्रोति ज्ञानाभिनिवेशाभ्याम् ॥ ५०॥

धार्मिणो धर्मवन्तो धार्मिकाः । तेषां मध्ये यो धर्मविद्धमेशास्त्रं यावतोऽर्थ-तांऽधीत्य धर्मं तत्त्वतो वेत्ति सः । ज्ञानाभानिवेशाम्याम् । ज्ञानं समर्थावगतिःअ भिनिवेशस्तात्पर्येणानुष्ठानम् । ज्ञानेनाभिनिवेशन च केवळानुष्ठातृभ्यो विशेषेण स्वर्गं छोकपाप्नोति ॥ ५० ॥

इति धर्मी धर्मः ॥ ५१ ॥

सोऽयमादितो वेदो धर्ममूछिमित्यारभ्येवमन्तो धर्म उक्तः । द्विरुक्तिः शास्त्र-परिसमाप्त्यर्था ॥ ५१ ॥

> गौतमोक्ते धर्मशास्त्रे हरदत्तकताविह । अष्टाविंशोऽयमध्यायो वृत्तौ दायः समापितः ॥

इति श्रीगौतमीयवृत्ता हर्यत्त्वितियां मिताक्षरायां वृत्तीयप्रश्ले दशमोऽध्यायः॥ १०॥

समाप्तांऽयं यन्थः॥